श्री श्री

कल्किपुराण ।

महर्षि वेदव्यास प्रणीत ।

संस्कृत मूल एवं अविकल भाषानुवाद सहित ।

श्रीभारत धर्म्म महामण्डल संरक्षित श्रीनिगमागम पुस्तकभण्डारके
प्रबन्धसे प्रकाशित ।

काशी

श्री धर्म्मामृत प्रेसमें मुद्रित ।

सम्वत् १९६३

श्री श्री

कल्किपुराण ।

महर्षि वेदव्यास प्रणीत ।

संस्कृत मूल एवं अविकल भाषानुवाद सहित ।

श्रीभारतधर्म महामण्डल संरक्षित श्रीनिगमागम पुस्तकभाण्डारके
प्रबन्धसे प्रकाशित ।

काशी

श्रीधर्म्मामृत प्रेसमें मुद्रित ।

संवत् १९६३

भूमिका।

—:०:—

धर्म्मप्राणमय हिन्दू जातिका आधार एकमात्र सनातन धर्म्म है। इसी सनातन धर्म्मके प्रबल प्रभावसे किसी दिन यही हिन्दू जाति भूमण्डलकी समस्त जातियोंमें शिरोमणि हो रही थी, इसी सनातन धर्म्मके एक प्रकार अभावसे यही हिन्दू जाति आज भूमण्डलकी प्रायः समस्त जातियोंमें अधः पतितसी प्रतीत हो रही है और इसी सनातन धर्म्मके प्रबल बलसे यही हिन्दू जाति किसी दिन भूमण्डलकी समस्त जातियोंको चकितकर पुनः अपने उसी उच्चासनपर आसीन होगी' इसमें सन्देह नहीं है। सो हिन्दू सन्तानमात्रको समझ लेना चाहिये, कि हिन्दू जातिकी उन्नति और किसी आधारपर नहीं, किन्तु केवल एक सनातन धर्म्मकी उन्नतिपर निर्भर है।

सनातन धर्म्मकी उन्नति वर्णाश्रम धर्म्मकी उन्नतिके आश्रित है। वर्णाश्रम धर्म्मकी उन्नति सनातन हिन्दू धर्म्म ग्रन्थोंके अन्तर्गत है। धर्म्म ग्रन्थोंका प्राप्त होना सहज नहीं है। कहना नहीं होगा, कृष्ण भगवानके वैकुण्ठ निवासको जानेके पश्चात महाराज विक्रम, धर्म्मात्मा भोजराजके समयतक सनातन हिन्दू धर्म्मकी रक्षा हुई। आगे कोई सनातन धर्मका रक्षक नहीं रहा। रक्षककी कौन कहे, सनातन धर्मके विनाश करनेवालोंका समय समयपर इतना अधिक प्रताप चमका, कि एकबार हिन्दू सन्तानको अपने धर्म्मसे निराश हो जाना पड़ा था। उस दारुण विपत्तिका इतिहास कहकर हिन्दुओंके हृदयको विदीर्ण किया नहीं चाहते। तब इतना अवश्य कहना पड़ेगा, कि सनातन-धर्म्म ग्रन्थोंका उस भयङ्कर उत्पातके समय एक भांति लोपसा हो गया था। कहीं कहीं, किसी किसी धर्म्मप्रेमी हिन्दू सन्तानने अपने प्राणोंका मोह छोड़कर धर्म्म-ग्रन्थोंकी रक्षाकी थी। इसके अतिरिक्त कुछ ग्रन्थोंकी रक्षा अन्य अनेक उपायोंसे हो सकी थी। यह सब वृत्तान्त इस स्थानमें कहनेकी आवश्यकता नहीं है। जो हो, हिन्दू जाति, सनातन हिन्दू धर्म्म, हिन्दू धर्म्मग्रन्थ ईश्वरको भी परम प्रिय हैं। इसी जाति, इसी धर्म्म, इन्हीं ग्रन्थोंकी रक्षाके लिये स्वयं परब्रह्म भगवानने समय समयपर अवतार धारण किया है। जब ईश्वर अनुकूल हैं, तब हजार दुराचार होनेपर भी हिन्दू-धर्म्म-ग्रन्थोंका विनाश कैसे हो सकता था! हां एक बात अवश्य हुई, कि ग्रन्थोंकी कम संख्या रक्षित होनेके कारण सर्व्व साधारणको अनेक ग्रन्थोंका दर्शन होना भी दुर्लभ हो गया। ग्रन्थ दर्शन दुर्लभ होनेके कारण सनातन धर्म्मकी रक्षा केवल स्मरण द्वारा मुखाग्र कथा वार्ताओंमें रह गई। मौखिक कथा वार्ता पुस्त दरपुस्त कहते श्रवण करते क्रमशः धर्म्ममें बल पड़ गया है। अधिक क्यों अधिकांश मनुष्य अपने धर्म्म ग्रन्थोंके नामतक नहीं जानते। जाननेकी कौन कहे वेद कितने हैं और कौन कौन हैं, शास्त्र

कितने हैं और कौन कौन हैं, एवं पुराण उपपुराण कितने हैं और कौन कौन हैं, इसका उत्तर मिलना दुस्तर हो गया है ! इसी कारण हिन्दु जाति अपने धर्म्ममें दृढ़ रहने-पर भी निर्बल हो गई है । यह निर्बलता धर्म्म-ग्रन्थ प्राप्तकर उनके पुनः पठन पाठनसे अपने धर्म्माचरणको पूर्व्ववत ठीक कर लेनेसे अल्पकालमें ही दूर हो सकती है। आगे धर्म्माचरण विधिवत होनेपर सनातनधर्म्मका पुनरोदय हो सकता है । सनातनधर्म्मका उदय होते ही हिन्दू जातिकी उन्नति होना सर्व्व प्रकार निश्चय है।

पहले कह चुके हैं, कि हिन्दू जातिकी उन्नति सनातन धर्म्मकी उन्नतिपर निर्भर है। सनातन धर्मकी उन्नति कलियुग क्या प्रत्येक युगमें होना संभव है। कारण, जिस प्रकार एक ग्रहकी दशामें अन्य सब ग्रह अन्तर प्रत्यन्तर दशासे भोग करते हैं, उसी प्रकार प्रत्येकयुगमें सब युग अन्तर प्रत्यन्तर दशासे भोग करते हैं और अपने अपने भोगके समय अपना अपना फल देते हैं। सो इस कलियुगमें भी सत्य त्रेता, द्वापर प्रभृति चारोंयुग क्रमशः एक दूसरेमें अन्तर प्रत्यन्तर दशासे भोग कर रहे हैं और जिस प्रकार अन्तर प्रत्यन्तर दशाके ग्रह अपना अपना शुभ फल देते हैं, उसी प्रकार हजार पापपुञ्ज कलियुग होनेपर भी सत्य, त्रेता, द्वापर प्रभृति युग इस कलियुगमें भी अपना अपना शुभ फल दिखलाते हैं। तभी कहते हैं, घोर कलियुग होने पर भी सनातन धर्म्मके प्रेमी हिन्दू सन्तानको अपने धर्म्मसे जरा भी नहीं हटना चाहिये। हिन्दू सन्तानको भली भांति समझ लेना उचित है, कि धर्म्मसे ही हमारी उन्नति है । सो धर्म्मको ही खूब दृढ रूपसे ग्रहण करना हमारा कर्तव्य है ।

ऊपरकी बातको स्पष्ट करनेके लिये इस स्थानमें यह कह देना उचित है, कि सनातन हिन्दू-धर्म्मकी रक्षार्थ हिन्दू जाति चार वर्ण और चार आश्रमोंमें विभक्त है। इन चारों वर्ण और आश्रमोंकी रीति नीति, आचार बिचार आदिका वर्णन अष्टादश महापुराण, अष्टादश पुराण एवं अष्टादश उपपुराणोंमें भलीभांति वर्णित है। इन महा-पुराण, पुराण एवं उपपुराणोंको बिना पठन पाठन किये सनातन धर्म्मकी रक्षा करना एकंबारही असम्भव है। क्या वेद, क्या शास्त्र, और क्या नाना प्रकारके मंत्र यंत्र बिना महापुराण, पुराण एवं उपपुराण पढ़े अथवा श्रवण किये सभीका वास्तविक मर्म्म जानना दुस्साध्य है। हिन्दू कौन है, हिन्दुओंका क्या कर्तव्य है, हिन्दू जाति, हिन्दू देश, हिन्दुओंका पूर्व्व ऋषियोंके साथ सम्बन्ध, कहांतक कहें सृष्टिके प्रारम्भसे सृष्टिके अन्ततक एवं मृत्युलोकसे स्वर्ग, पातालादि लोकोंतक और समस्त जीव चराचरका इन पुराणोंमें भलीभांति वर्णन है। हिन्दुओंके घरमें नित्यही कथा, वार्ता, संयम, नियम, व्रत, पूजन, तिथि त्योहारादि होते रहते हैं, उन सबका वृत्तान्त इन पुराणोंमें शुद्ध रीतिसे मिलता है। हिन्दू सन्तानको एक बार इन समस्त पुराणोंको देखकर अपने समस्त नित्य कर्म, गृहकर्म्मोंको ग्रन्थानुसार जान लेना उचित है। विधिवत करनेसे तुरत फलप्राप्ति होती है। फिर कहते हैं, विधिवत धर्म्म कर्मकर धर्म्मको दृढ़ रूपसे ग्रहण करना हम सब हिन्दू सन्तानका कर्तव्य है ।

धर्म्मको दृढ़रूपसे ग्रहण करनेके लिये धर्मग्रन्थोंको घरमें रखना हमारा प्रथम

कार्य है। धर्म्मग्रन्थ घरमें रखनेके निमित्त ईश्वरने हिन्दू सन्तानके लिये अच्छा सुसमय सत्ययुग, त्रेता, द्वापरकी भांति उपस्थित किया है। भगवानकी प्रेरणासे हिन्दूजाति, सनातन हिन्दूधर्म्म, हिंदूधर्म ग्रंथोंकी रक्षाही कर्त्तव्य मानकर भारतधर्म महामण्डल सभाका आविर्भाव हुआ है। इस सभाका प्रधान कार्य्यालय हिन्दुओंकी पवित्रपुरी काशीजीमें स्थापित किया गया है। काशीस्थ श्रीभारतधर्ममहामण्डल सभा द्वारा सनातन धर्मका बड़ाभारी उपकार हानेवाला है।

भारतवर्षमें काशीपुरी वेद वेदाङ्गादि धर्म ग्रंथ और धर्म ग्रंथोंकी शिक्षाके लिये प्रसिद्ध है। वास्तवमें, भारतमेंही नहीं किंतु भूमण्डलमें काशीधाम संस्कृत शिक्षाके लिये परम्परासे प्रसिद्ध होता चला आया है। कालक्रमसे समय समय पर सनातन धर्मपर आघात हुआ, सनातन धर्मके अनुपम ग्रन्थोंका लोप हुआ, हिन्दू जातिका अनुचितरूपसे अनादर हुआ, किन्तु फिर भी जो कुछ रहा, वह काशीपुरीमें ही रहा।

इसी पवित्र स्थानसे सदैव सनातन धर्मज्योतिका उत्थान हुआ और आगे उसी धधकती हुई धर्मज्योतिने विशाल ज्वालानल स्वरूप धारण किया। योंही धर्म ज्वालानल प्रवाहसे समय समयपर सम्पूर्ण देश उज्वल हुआ। आज वही धर्मोत्थान, वही धर्मज्योति, वही विशाल धर्मज्वाल फिर उत्तेजित हुई है। सम्पूर्ण भारतवर्षमें सनातनधर्मका अनुराग बढ़ानेके लिये स्थान स्थानपर सनातनधर्म सभाएं खोली जा रही हैं; सम्पूर्ण भारतवर्षमें सनातन धर्मज्योतिको प्रज्वलित करनेके लिये स्थान स्थानपर उपदेशक, महोपदेशक, महामहोपदेशक, भेजे जा रहे हैं सम्पूर्ण भारतवर्षमें सनातनधर्मकी पुस्तकोंका प्रचार बढ़ानेके लिये काशीपुरीमें एक सुविशाल पुस्तकालय तय्यार किया जारहा है। इस पुस्तकालयसे समस्त धर्म ग्रंथ अर्थात सर्व्वाङ्ग सम्पूर्ण चतुर्वेद, षडशास्त्र, समग्र स्मृतियां, अष्टादशमहापुराण एवं समस्त पुराण, उपपुराण संस्कृत मूल तथा भाषानुवाद सहित यथा साध्य कम मूल्यपर क्रमशः घर बैठे प्राप्त किये जा सकेंगे। बड़े खर्च तथा बड़े सुप्रबंधके साथ इस पुस्तकालयका कार्य्य संचालित किया जारहा है। भारतवर्षके सभी यंत्रालयोंसे लिखा पढी करके तथा अन्य नाना अनुसन्धानों द्वारा ग्रंथ संग्रह किये जारहे हैं।

ग्रंथ प्रकाश होना प्रारम्भ हो गया है। कलिका राज्य है, सो पहले पहले इस कलिराजके विनाशकर्ता कल्किजीका महात्म्य प्रकाशित करना उचित समझा गया है। कल्किपुराण खूब स्वच्छ सुन्दर अक्षर और कागजमें संस्कृत मूल एवं भाषानुवाद सहित प्रकाशित हुआ है। पहले कह चुके हैं, वेदव्यासादि प्राचीन ऋषिप्रणती अष्टादश महापुराण, अष्टादश पुराण, एवं अष्टादशउपपुराण इस प्रकार समस्त ५४ पुराण हैं। यह कल्किपुराण भी एक पुराण है। इसके पश्चात अन्य ५३ पुराण क्रमशः प्रकाशित होंगे। प्रति कलियुगमें विष्णुभगवान कल्कि अवतार धारणकर सनातनधर्म द्रोही, बौद्ध, म्लेच्छ, यवन, पाखण्डी और नास्तिकोंका संहारकर, धर्मात्मा पुरुषोंका राज्य स्थापनकर, सनातन वैदिक-धर्मकी रक्षाकर पुनः सत्ययुगका आविर्भाव करते हैं। पुराणमें होनहार भविष्य बातोंको अतीत सम-

यकी घटना जैसे लिखा है। इसके सम्भवतः दो कारण हैं, एक तो प्रतिकलियुगमें कल्कि अवतार होनेके कारण गत अवतारकी वार्ता कहकर भविष्य अवतारकी सूचना देना है. द्वितीय भविष्यवार्ताको अतीतमें लिखनेकी सर्वत्र धर्मग्रन्थोंकी प्राचीन प्रणाली है। जो हो, जिस समय विकरालरूपसे कालिका प्रादुर्भाव होगा, जिस समय सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि एवं राहु यह आठों ग्रह एक राशिपर होंगे, जिस समय अधर्मियोंके उत्पात द्वारा सनातनधर्मपर असह्य आघात पहुंचेगा, उस समय भगवान विष्णुजी अवश्य कल्कि अवतार धारणकर सनातनधर्मकी रक्षा करेंगे। सनातनधर्मावलम्बी हिन्दूमात्रको धैर्यके साथ अपने धर्ममें तत्पर रहना उचित है।

शेषमें श्रीयुक्त पण्डित दामोदरजी शास्त्री तथा श्रीयुक्त पण्डित महादेव प्रसादजी द्विवेदी महाशयगणको बारम्बार धन्यवाद देकर भूमिका समाप्तकी जाती है। आप दोनों महाशयोंने बड़े परिश्रम और बड़े उत्साहके साथ संस्कृत मूल संशोधन एवं भाषानुवाद कार्यमें सहायता दी है। इस सरल भाषाको साधारण मनुष्य भी भलीभांति समझ सकता है। प्रति श्लोकके नीचे भाषानुवाद है। स्थान स्थानपर गूढ़ शब्द एवं प्राचीन स्थान और नामोंकी टिप्पणी देकर समझा दिया है।

अंतमें सर्व्व सज्जनोंसे प्रार्थना है, कि ग्रंथमें यदि किसी प्रकारकी त्रुटि रह गई हो, तो क्षमा करें। कारण धर्म प्रचारके निमित्त प्रथमही यह ग्रंथ प्रकाशकर सर्व्वसाधारणकी सेवामें उपस्थित कर रहे हैं। प्रथम कार्यमें बहुत कुछ त्रुटि रह जाना संभव है। ग्रंथ अवलोकनकर यदि कोई महाशय उचित सम्मति देंगे, तो उस पर ध्यान दिया जायगा। केवल ध्यान ही नहीं दिया जायगा, किन्तु धन्यवादके साथ दूसरी बार उस त्रुटिको दूर करनेकी पूर्ण चेष्टा की जायगी।

मनेजर।
श्रीनिगमागम पुस्तकभाण्डार।
धर्मनिकेतन,
काशी।

निवेदन ।

—:०:—

वर्त्तमान समयमें क्या धनवान, क्या निर्द्धनी, क्या राजा, क्या रय्यत, क्या सेठ, क्या साहुकार, क्या बाबू जमीन्दार, क्या ब्राह्मण क्षत्री और क्या वैश्य कोई भी एक साथ द्रव्य ख़र्चकर सम्पूर्ण ग्रन्थ संग्रह नहीं कर सकता। सम्पूर्ण ग्रन्थोंको संग्रह करना असम्भव भी है। कारण लाखों रुपया खर्च करके भी सम्पूर्ण ग्रन्थ कोई यों एकत्र किया चाहे तो मिलना दुर्लभ है। श्रीभारत-धर्ममहामण्डल सभाने बड़े प्रबन्धसे अहर्निशि धर्म कार्यको ही अपना कर्तव्य समझकर इन ग्रन्थोंके संग्रह करनेका प्रबन्ध किया है। फिर यह ग्रन्थ बहुत कम मूल्यपर क्रमशः सर्व्व साधारणको दे सकनेका प्रबन्ध भी शीघ्रही किया जा रहा है। इस समय भारतवर्षभरमें हिन्दू सन्तानके घर घर ग्रन्थ पहुंचानेके अभिप्रायसे प्रतिष्ठित मनुष्य भेजे जा रहे हैं। इन सज्जनोंके स्थान स्थान जाने आनेमें अधिकांश खर्च पड़ रहा है। इसी कारण मूल्य आजसे ही कम नहीं करसके। कुछ समयके पश्चात जब समस्त हिन्दूसन्तान धर्म ग्रन्थ अपने आप मंगाने लगेंगी, तब हिन्दुओंकी सनातन धर्म भूमि पवित्र काशीपुरीसे "ग्रन्थ लीजिये ! ग्रन्थ लीजिये !" की चेतावनी देनेके लिये आदमी नहीं भेजना पड़ेगा। तब इस धर्म ग्रन्थ प्रचार कार्यालयका अधिकांश खर्च कम हो जायगा। उस अवस्थामें ग्रन्थ खूब सस्ते कर दिये जांयगे। जो ग्रन्थ लाखों हजारों एवं सैकडों रुपयेमें मिलना कठिन हो गया है, वह ग्रन्थ नाम मात्र मूल्यपर हिन्दू सन्तानके घर घर पहुंच सकेगा। अभी जो ग्रन्थ तथ्यार हो रहे है वह भी अन्यत्र दूने तिगुने मूल्यपर प्राप्त होते हैं। थोड़ेही कालने ग्रन्थोंका मूल्य इतना सस्ता किया जायगा, कि लोग, उस सस्तेपनको देखकर चकित हो जांयगे। कारण भारतधर्ममहामण्डल सभाका उद्देश्य हिन्दू सान्तामात्रके घर घर ग्रन्थ पहुंचा देनेका है। आज कल भारतवर्षकी दशा जैसी वर्तमान है, उसको अपना स्वार्थ छोड़-कर देखनेसे ही मालूम होता है, कि आज अधिकांश सनातनधर्म प्रेमी हिन्दूगण परिवार सहित वर्षमें मासमें सप्ताहमें कौन कहे एक शाम नहीं दिनके दिन पेटमें बिना कुछ अन्न दिये भूखे रह जाया करते हैं। उनके छोटे छोटे बालक बालिका भूखके मारे बारम्बार माता पिताके मुंहकी ओर ताका करते है। बड़े बड़े कठोर परिश्रमसे आजकल भोजन प्राप्त होता है। साल साल अकाल एवं प्लेग हैजा आदिसे भारतवर्ष चूर्ण हो रहा है। बड़े बड़े गृहस्थ तवाह हो रहे हैं। ऐसे समयमें भविष्यकी आशापर धैर्य रख अधिक रुपया खर्च करके ग्रन्थ संग्रह करना बहुत दुर्लभ है। पर बिना ग्रन्थ संग्रह किये धर्ममें तत्पर होना कठिन है। धर्ममें बगैर तत्पर हुए हिन्दू सन्तानकी उन्नति होना असम्भव है। उन्नतिके लिये धर्मपर दृढ़ होनाही होगा। यही सब समझ बूझ कर जिस प्रकार गरीबसे गरीब हिन्दू भी अपने जीवनाधार सनातन धर्म ग्रन्थ खरीद सके उसका प्रबन्ध किया जा रहा है।

शक्तिके माफिक बहुत कम खर्चमात्र मूल्य लेकरही ग्रन्थ हिंदूमात्रके घर घर पहुंचनेका उपाय किया जारहा है। धर्म्मके प्रेमीको हजार कष्ट होनेपर भी सालमें एकबार अधिकसे अधिक रुपया दो रुपया देना कठिन नहीं मालूम हो सकता। कारण जहां सब खर्च है, वहां धर्मके निमित्त प्रति मास आना दो आना चारे आना पैसा भी बचाता जाय, तो सालमें एक ग्रंथ अथवा ग्रंथ का कुछ अंश जरूर संग्रह हो जाय। इसी प्राकार धीरे धीरे सब ग्रंथ प्राप्त हो जांय। कुछ दिनके पश्चात ग्रथोंका मूल्य सस्ता होनेसे कोई कोई ग्रंथ आधिक मूल्यका होनेपर आधा चौथाई तथा अन्य ग्रंथ पूर्ण भी भेजे जा सकेंगे ! जिसमें किसीको खले नहीं और घरमें धर्म ग्रन्थ सम्पूर्ण एकत्र होजांय वही उपाय हो रहा है !

एक बात और हम हिन्दुओंके बड़े मतलबकी है। हिन्दूके घरमें जन्म लेकर सभीने एक न एकबार श्रीमद्भागवत, शिवपुराण इत्यादि कथायें श्रवणकी होंगी। दूर नहीं तो निकटके तीर्थ भी किये होंगे। कुछ नहीं किया होगा, तो गङ्गास्नान तो प्रायः हिन्दू सन्तानमात्रने कभी न कभी कियाही होगा। कहनेका मतलब यह है, कि जिसने कुछ भी नहीं किया उसने भी काशीमहात्म तो अवश्य सुना होगा। काशीमहात्म सम्पूर्ण नहीं सुना होगा, तो इतना तो अवश्य जानता होगा, कि यदि धोखेमें भी एकबार काशीका नाम मुंहसे निकल जावे तो हजार पापी होनेपर भी सहजमेंही यमराजके फन्देमें पड़ना कठिन होजाय। फिर

यदि समय समयपर काशीपुरीका स्मरण किया जाय, तो मनुष्यको समस्त पापोंसे छुटकारा मिले, इसमें क्या सन्देह है। यही समझ बूझकर श्रीभारतधर्म्म महामण्डल सभाने सर्व पाप विनाशी काशीमें अपना प्रधान कार्यालय स्थापितकर धर्म ग्रन्थोंके प्रचार करनेका प्रबन्ध किया है। हिन्दुओंके पवित्रधाम काशीधाममें मुद्रितकर, श्रीविश्वनाथकी छाप मारकर, हिन्दुओंके प्राणाधार मर्यादा पुरुषोत्तम राम कृष्णादि लीलाओंसे पूर्ण धर्म-ग्रन्थोंको काशीपुरीका प्रसादवत् हिन्दुमात्रके घर घर पहुंचानेका विचार किया है। काशीकी साधारण वस्तु लोग प्रसादमें लेजाकर पुस्त दरपुस्ततक रक्षितकर गृहको पवित्र रखते हैं। इसी काशीके, पुराण, शास्त्र, स्मृति एवं वेद हिन्दु गृहकी शोभा बढ़ावेंगे। जो ग्रन्थ स्वयं पवित्र है, वह काशीके होनेपर धर्म जिज्ञासु हिन्दुओंको कैसे प्यारे होंगे। एकबार कमलासन लगा, आंख मूंद, धर्मरूप हो श्रीकाशीविश्वनाथका स्मरण करतेही इस पवित्रपुरीकी समस्त महिमा नेत्रोंके सामने नाचने लगेगी। तभी मालूम होगा, कि हिन्दू सन्तान निर्बल नहीं है, किन्तु वह धर्महीन होनेपरही अपने प्राक्रमको भूल रही है। धर्मकी ओर पीठकर घोर निद्रा आलस्यके अन्धकारमें निमग्न हो रही है! अपने तेजोमय धर्मकी ओर मुख करतेही समस्त अन्धकार विनप्रयाश दूर हो जायगा। सो हे हिन्दू सन्तान! अब सचेत हो! अब अन्धकारमें रहनेका समय नहीं रहा। तुम्हारी काशीपुरीमें तुम्हारे धर्मका डङ्का बजाया जा रहा है. इस डङ्केकी चोप श्रवण करो! शीघ्र शीघ्र "धर्म ग्रन्थ हम लेंगे, धर्म ग्रन्थ हम लेंगे" कहकर पता समेत अपने अपने नाम ग्राम काशीपुरीमें धर्म-प्रचार-ग्रन्थ खातेमें लिखा दो। साथही साथ यह भी लिखा दो, कि सालमें तुमको कितने रुपयेतकके ग्रन्थ खरीद सकनेकी शक्ति है। तुम्हारी शक्तिके भीतरही ग्रन्थ भेजे जाया करेंगे। शक्तिके माफिकही तुम ग्रन्थ पहुंचनेपर रुपया दे दिया करना।

खुलासा यह कि यदि कोई महाशय केवल रुपया सवा रुपयाही सालमें धर्म ग्रन्थ खरीदनेके लिये खर्च कर सकते हैं, इतनेसे अधिक खर्च करनेकी उनको समाई नहीं है, तो उनको रुपया सवा रुपया अथवा सवा रुपयेसे कम मूल्यका ग्रन्थ होनेपर रुपया सवारुपया अथवा कमपरही भेज दिया जायगा। ग्रन्थ यदि बड़ा हुआ और मूल्य भी रुपया सवा रुपयेसे अधिक हुआ तो रुपया सवा रुपयेके अन्दाजसे ग्रन्थका कुछ अंश पहले भेज दिया जायगा पीछे बाकी अंश भेजा जायगा। कहनेका मतलब यह है कि जिस तरह सुभीता हो सकेगा ग्रंथ अमीर गरीब सबको पहुंचा दिये जांयगे। जो महाशय अधिक द्रव्य खर्चकर सकते हैं, वह दो चार ग्रन्थ एक साथ भी मंगा सकेंगे। कोई धर्मात्मा महाशय ग्रन्थ खरीदकर गरीब मनुष्योंको मुफ्त देनेका विचार करेंगे तो और भी उपकार होगा। उनको श्रीभारतधर्म्म महामण्डलकी ओरसे उचित सम्मान मिलेगा। योंही हाथों हाथ सब लोगोंका मिलजुल चेष्टा करके एकबार भारतवर्षको हिन्दु रीति नीतिसे धर्म ग्रन्थों द्वारा अभिज्ञ कर देना उचित है।

एक बात और खूब ध्यान देनेकी है। आजकल हिन्दूसन्तान निर्बल, भाग्यहीन, सर्व्व प्रकार हीन क्यों होती है? इसका कारण केवल एक है। आजकल क्या धनवान, क्या गरीब, क्या ब्राह्मण, क्या क्षत्री और क्या वैश्य किसीके घरमें भी शास्त्रोक्त रीतिसे संस्कार नहीं होता। संस्कारविहीन सन्तान अवश्यही सर्व्व प्रकार हीन होगी। संस्कार करनेमें विशेष खर्च अथवा विशेष परिश्रम नहीं है, किन्तु बिना जाने कोई कैसे करे! जाननेके लिये ग्रन्थ दरकार है। सो ग्रन्थोंका अबतक अभाव था, अब ईश्वरेच्छासे ग्रन्थ प्रचारका प्रबन्ध धूमधामसे होरहा है। यदि हिन्दू सन्तानके भाग्योदयका समय आगया है, यदि श्रीभारतधर्ममहामण्डलका उद्देश्य पूर्ण रीतिसे सम्पन्न होने वाला है, यदि हिन्दुसन्तानने निश्छल रूपसे अपने धर्मका प्रेम किया है, तो अब घर घर ग्रन्थ पहुंचनेमें सन्देह नहीं रहा। एकबार बोलो श्री काशी विश्वनाथकी जय! सनातन हिन्दू धर्मकी जय! और फिर कहो समस्त हिन्दू सन्तानकी जय!

मैनेजर, श्रीनिगमागम पुस्तकभण्डार

धर्म्म निकेतन, बांसका फाटक,

काशीजी।

॥ श्रीः ॥

कल्किपुराणम् ।

—:*:—

प्रथम-अंश-प्रथम-अध्याय ।

सेन्द्रा देवगणा मुनीश्वरजना लोकाः सपालाः सदा
स्वं स्वं कर्म्म सुसिद्धये प्रतिदिनं भक्त्या भजन्त्युत्तमाः ।
तं विघ्नेशमनन्तमच्युतमजं सर्व्वज्ञसर्व्वाश्रयं ।
वन्दे वैदिकतान्त्रिकादिविविधैः शास्त्रैः पुरोवन्दितम् ॥१॥

(१) इन्द्र सहित देवतागण, महर्षिगण एवं लोकपालगण स्वकार्य साधना हेतु भक्तिपूर्व्वक जिनकी सर्वदा उपासना करते हैं; पूर्वकाल में जो वैदिक तांत्रिकादि अनेक शास्त्रोंसे आराधित हुए हैं; उन सर्वज्ञ सर्व्वाधार विघ्ननाशकर अनन्त अच्युत अजन्म श्री विष्णुभगवानकी मैं वन्दना करता हूँ ।

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ २ ॥

(२) नारायण नरोत्तम नर तथा सरस्वती देवीको नमस्कार करके जय उच्चारण करना उचित है ।

यद्दोर्दण्डकरालसर्पकवलज्वालाज्वलद्विग्रहाः
नेतुः सत्करवालदण्डदलिता भूपाःक्षितिक्षोभकाः ।
शश्वत् सैन्धववाहनो द्विजजनिः कल्किः परात्मा हरिः
पायात्सत्ययुगादिकृत्स भगवान्धर्म्मप्रवृत्तिप्रियः ॥ ३ ॥

नर नारायणकी उत्पत्ति । पृथ्वीका उद्धार हो जानेपर महादेवजीने शरभरूप धर विष्णु भगवानकी नरसिंह मूर्तिके दो खण्ड किये । उन दो खण्डोंसे दो ऋषि उत्पन्न हो गये । नर खण्डसे नर हुए । सिंह खण्डसे नारायण ।

युगोंकी अवधि । सत्ययुगकी १७२८००० वर्ष, त्रेताकी १२९६००० वर्ष, द्वापरकी ८६४००० वर्ष और कलियुगकी ४३२००० वर्ष अवधि है ।

(३) भयङ्कर अत्याचारसे पृथ्वीकी शान्तिको नाश करनेवाले राजागण जिनके भयङ्कर भुज भुजङ्ग विषज्वालसे भस्म होंगे; जिनकी भयङ्कर तीक्ष्ण खड्गधारसे अत्याचारी राजाओंके शरीर दलित होंगे; ब्राह्मण वंशोत्पन्न सिन्धुदेशास्वारोहि सत्यादि युगोंके अवतारणकर्त्ता धर्म्मप्रवृत्तिप्रिय, भगवान, कल्कि, परमात्मा हरि तुम्हारी रक्षा करें।

इति सूतवचः श्रुत्वा नैमिषारण्यवासिनः ।
शौनकाद्या महाभागाः पप्रच्छुस्तं कथामिमाम् ॥ ४ ॥

(४) नैमिषारण्यवासी शौनकादि उदार चरित्र महर्षिगण श्रीमहर्षि सूतजीके यह वचन सुनकर उनसे पूछते भये।

हे सूत! सर्व्वधर्म्मज्ञ! लोमहर्षणपुत्रक! ।
त्रिकालज्ञ! पुराणज्ञ! वद भागवतीं कथाम् ॥ ५ ॥

(५) हे सर्व्व धर्म्मपरायण! त्रिकालकेज्ञाता! पुराणाज्ञ! लोमहर्षण पुत्र! सूतजी! भगवानकी कथा कहो!

कः कलिः? कुत्र वा जातो जगतामीश्वरः प्रभुः ।
कथं वा नित्यधर्म्मस्य विनाशः कलिना कृतः? ॥ ६ ॥

(६) कलि कौनहै? उसने कहां जन्म लिया? वह किसप्रकार पृथ्वीका स्वामी हुआ? और आगे, किस प्रकार उस कालिने नित्यधर्म्मका नाश किया? हे प्रभु! सो सब आप हमसे कहो!

इति तेषां वचः श्रुत्वा सूतो ध्यात्वा हरिं प्रभुम् ।
सहर्षपुलकोद्भिन्नसर्व्वाङ्गःप्राह तान्मुनीन् ॥ ७ ॥

(७) महर्षिगणके इस प्रकार विनीत वचन सुनकर सूतजीने विष्णुभगवानका स्मरण किया। विष्णु भगवानका स्मरण करतेही उग्रश्रवाजी सहर्ष पुलकिताङ्ग उन मुनीश्वरगणसे बोले।

सूत उवाच ।

शृणुध्वमिदमाख्यानं भविष्यं परमाद्भुतम् ।
कथितं ब्रह्मणा पूर्व्वं नारदाय विपृच्छते ॥ ८ ॥

नैमिषारण्य। इस आरण्यमें भगवान विष्णुजीने एक निमेषमें दैत्योंका संहार किया था। इसी कारण इस आरण्यका नैमिषारण्य नाम हुआ।

(८) पूर्व्वकालमें ब्रह्माजीने नारदजीके पूछनेपर अत्यन्त अद्भुतभावी उपाख्यानको कहा था । हे महर्षिगण ! आप लोग आज उसी उपाख्यानको सुनिये !

नारदः प्राह मुनये व्यासायामिततेजसे ।
स व्यासो निजपुत्राय ब्रह्मराताय धीमते ॥ ९ ॥

(९) प्रथम नारदजीने महा तेजस्वी व्यासजीके निकट इस इतिहासको वर्णन किया आगे धीरबुद्धि व्यासजीने अपने पुत्र ब्रह्मरातजीसे उसी उपाख्यानको कहा ।

स चाभिमन्युपुत्राय विष्णुराताय संसदि ।
प्राह भागवतान्धर्मानष्टादशसहस्रकान् ॥ १० ॥

(१०) पुनः ब्रह्मरातजीने अभिमन्युपुत्र विष्णुरातके समीप सभामध्य उसी भागवत धर्म्मको १८००० श्लोकों में कीर्तन किया ।

तदा नृपे लयं प्राप्ते सप्ताहे प्रश्नशेषितम् ।
मार्कण्डेयादिभिः पृष्टः प्राह पुण्याश्रमे शुकः ॥ ११ ॥

(११) उस समय प्रश्न पूर्ण नहीं होते नहीं होते राजा विष्णुरातजीने एक सप्ताह बीतने पर अपनी लोकयात्राको शेष किया । तदपश्चात् मार्कण्डेय आदि महर्षिगणके प्रश्न करनेपर पुण्याश्रममें भगवानशुकदेवजीने उसी भागवतधर्म्मके शेष अंशको कहा ।

तत्राहं तदनुज्ञातः श्रुतवानस्मि याः कथाः ।
भविष्याः कथयामीह पुण्या भागवतीः शुभाः ॥ १२ ॥

(१२) पुण्याश्रममें भगवान शुकदेवजीके मुखारविन्दसे मैंने जो भावी उपाख्यान सुना है, उसी शुभ भागवत धर्म्मको आप लोगोंके प्रति वर्णन करता हूं ।

ताः शृणुध्वं महाभागाः समाहितधियोऽनिशम् ।
गते कृष्णे स्वनिलयं प्रादुर्भूतो यथा कलिः ॥ १३ ॥

(१३) भगवान श्रीकृष्णजीके वैकुण्ठ चलेजानेपर कलिकी उत्पत्ति जिस प्रकार हुई है, आप लोग निरन्तर सावधान होकर सुनें, मैं उसका वर्णन करता हूं ।

प्रलयान्ते जगत्स्रष्टा ब्रह्मा लोकपितामहः ।
ससर्ज्ज घोरं मलिनं पृष्ठदेशात स्वपातकम् ॥ १४ ॥

(१४) जगत्स्रष्टा लोकपितामह पद्मयोनि ब्रह्माजीने प्रलयकाल बीतनेपर अपनी पीठसे अपने घोर मलिन पातकको उत्पन्न किया ।

मार्कण्डेय । मृकण्ड मुनिके पुत्रका नाम मार्कण्डेय हुआ । यह चिरजीवी है ।

स चाधर्म्म इति ख्यातस्तस्य वंशानुकीर्त्तनात ।
श्रवणात्स्मरणाल्लोकः सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १५ ॥

(१५) पद्मयोनि ब्रह्माजीकी पीठसे उत्पन्न हुआ पातक अधर्म्मनामसे प्रसिद्ध हुआ। उस अधर्म्मवंशका श्रवण, कीर्तन एवं स्मरण करनेसे प्राणीमात्र समस्त पापोंसे मुक्ति पाते हैं।

अधर्म्मस्य प्रिया रम्या मिथ्या मार्जारलोचना ।
तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी दम्भः परमकोपनः ॥ १६ ॥

(१६) बिल्लीके जैसे नेत्रवाली अत्यन्त रमानेवाली मिथ्या नाम्नी उस अधर्म्मकी भार्या हुई। आगे मिथ्या और अधर्मके संयोगसे अत्यन्त तेजस्वी, अत्यन्त क्रोधी दम्भ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

स मायायां भगिन्यान्तु लोभं पुत्रञ्च कन्यकाम् ।
निकृतिं जनयामास तयोः क्रोधः सुतोऽभवत् ॥ १७ ॥

(१७) उसी अधर्म्म और मिथ्यासे माया नाम्नी एक कन्या उत्पन्न हुई। इस अपनी बहन मायासे दम्भने लोभपुत्र और निकृति नाम्नी कन्या उपजाई। आगे भाई बहिन लोभ और निकृतिके संयोगसे क्रोध नामक एक पुत्रका जन्म हुआ।

स हिंसायां भगिन्यान्तु जनयामास तं कलिम् ।
वामहस्तधृतोपस्थं तैलाभ्यक्ताञ्जनप्रभम् ॥ १८ ॥

(१८) क्रोधके हिंसा नाम्नी एक बहन जन्मी। हिंसाके गर्भमें क्रोधके शुक्रसे कलिका जन्म हुआ। कलिने वाम करमें उपस्थको धारण किया। तैल मिश्रित अंजनराशिके सदृश इन कलि महाराजके शरीरकी काली कान्ति हुई।

काकोदरं करालास्यं लोलजिह्वं भयानकम् ।
पूतिगन्धं द्यूतमद्यस्त्रीसुवर्णकृताश्रयम् ॥ १९ ॥

(१९) इन काकोदर कराल चञ्चल जिह्वावाले भयानक दुर्गन्धित शरीरधारी कलि महाराजका जुआ, मद्य, स्त्री और सुवर्ण में वास हुआ।

भगिन्यान्तु दुरुक्त्यां स भयं पुत्रञ्च कन्यकाम् ।
मृत्युं स जनयामास तयोश्च निरयोऽभवत् ॥ २० ॥

(२०) कलिने अपनी बहन दुरुक्तिके गर्भसे भयानक नाम पुत्र और मृत्यु नाम्नी

कन्या उत्पन्नकी। मृत्युने अपने भाई भयके शुक्रसे निरय नाम पुत्रको जना।

यातनायां भगिन्यान्तु लेभे पुत्रायुतायुतम्।
इत्थं कलिकुले जाता बहवो धर्म्मनिन्दकाः॥ २१॥

(२१) निरयके यातना नाम्नी एक भगिनी पैदा हुई। इस यातना भगनीके गर्भसे निरयने कई हजार पुत्र उत्पन्न किये। एवं कलिकुलमें बहुतसे धर्म्मनिन्दकोंका जन्म हुआ।

यज्ञाध्ययनदानादिवेदतन्त्रविनाशकाः।
आधिव्याधिजराग्लानिदुःखशोकभयाश्रयाः॥ २२॥

(२२) ये धर्म्म निन्दक आधि, व्याधि, जरा, ग्लानि, दुःख, शोक, भयका आश्रय लेकर यज्ञ, स्वाध्याय, दानादि धर्म्मकार्य एवं वेद तंत्रादि धर्म्मशास्त्रोंके विनाश करनेवाले हुए।

कलिराजानुगाश्चेरुर्यूथशो लोकनाशकाः।
बभूवुः कालविभ्रष्टाः क्षणिकाः कामुका नराः॥ २३॥

(२३) लोकविनाशी यूथके यूथ कलिराजानुगामी अनुचरगणने चलायमान, क्षणभंगु, कामुक मनुष्य शरीरको धारण किया।

दम्भाचारदुराचारास्तातमातृविहिंसकाः।
वेदहीना द्विजा दीनाः शूद्रसेवापराः सदा॥ २४॥

(२४) यह अत्यन्त दम्भी, दुराचारी, मातापिताहिंसक अनुचरगण ब्राह्मण योनिमें जन्म लेकर वेदशास्त्रसे विमुख अत्यन्त दरिद्र सदा शूद्र जातिके उपासक हुए।

कुतर्कवादबहुला धर्म्मविक्रयिणोऽधमाः।
वेदविक्रयिणो व्रात्या रसविक्रयिणस्तथा॥ २५॥
मांसविक्रयिणः क्रूराः शिश्नोदरपरायणाः।
परदाररता मत्ता वर्णसङ्करकारकाः॥ २६॥

(२५-२६) धर्म्मविक्रयिता, वेदविक्रयिता, रसविक्रयिता, मांस विक्रयिता,

---

व्रात्य। गर्भसे आठवें वर्ष ब्राह्मणका, ग्यारहवें वर्ष क्षत्रीका एवं बारहवें वर्ष वैश्यका उपनयन संस्कार होना उचित है। किसी विशेष कारणसे उक्त समय संस्कार न होनेपर ब्राह्मणका सोलहवें वर्ष, क्षत्रीका बाइसवें वर्ष एवं वैश्यका चौबीसवें वर्ष उपनयन संस्कार करनेसे भी चल सकता है। इस समयके बीतजानेपर उपनयन संस्कारकी विधि नहीं है। इतनी आयुमें संस्कार नहीं हुआ मनुष्य व्रात्य कहलाता है। उसकी नीच संज्ञा हो जाती है।

संस्कारहीन, अत्यन्त कुतर्कवादी, शिश्नोदर परायण, उन्मत्त परपत्नीरत अधम वर्णसङ्कर उत्पन्न करनेवाले मनुष्य हुए।

ह्रस्वाकाराः पापसाराः शठा मठनिवासिनः ।
षोडशाब्दायुषः श्यालबान्धवा नीचसङ्गमाः ॥ २७ ॥

(२७) यह ह्रस्वाकार, पापपरायण, शठ, मठवासी, षोडश वर्षीय आयुकालवाले कलिके अनुचर भार्यावन्धुको वन्धुमान नीचप्रसङ्गप्रिय हुए।

विवादकलहक्षुब्धाः केशवेशविभूषणाः ।
कलौ कुलीना धनिनः पूज्या वार्द्धुषिका द्विजाः ॥२८॥

(२८) विवाद कलहमें क्षुब्ध, केशवेशमें आसक्त, धनी कुलीन और व्याजग्राही ब्राह्मण कलिमें पूज्य हुए।

सन्यासिनो गृहासक्ता गृहस्थास्त्वविवेकिनः ।
गुरुनिन्दापरा धर्म्मध्वजिनः साधुवञ्चकाः ॥ २९ ॥

(२९) सन्यासी गृहस्थधर्म्मानुरागी हुए, गृहस्थ विचार शक्तिहीन हुए, सकल मनुष्य गुरुजन निन्दक हुए एवं धर्म्मध्वजाधारी साधु वञ्चक हुए।

प्रतिग्रहरताः शूद्राः परस्वहरणादराः ।
द्वयोः स्वीकारमुद्वाहः शठे मैत्री वदान्यता ॥ ३० ॥
प्रतिदाने क्षमाशक्तौ विरक्तिकरणाक्षमे ।
वाचालत्वञ्च पाण्डित्ये यशोऽर्थे धर्म्मसेवनम् ॥ ३१ ॥

(३०-३१) शूद्र दान प्रतिग्रह एवं दूसरेका सर्वस्व हरण करने लगे। स्त्री पुरुषकी सम्मतिही विवाह हुई। लोग शठप्रिय हुए। मनुष्य प्रतिदान में दान शीलताका परिचय देने लगे। न्यायकर्त्तागण अपराधियोंको दण्ड देनेमें असमर्थ होकर क्षमाशील हुए। लोग दुर्बलके प्रति विरक्ति प्रगट करनेलगे। बहुत बोलनेवाले पण्डित हुए लोग यशप्राप्तिकी इच्छासे धर्म्म प्रचार करने लगे।

धनाढ्यत्वञ्च साधुत्वे दूरे नीरे च तीर्थता ।
सूत्रमात्रेण विप्रत्वं दण्डमात्रेण मस्करी ॥ ३२ ॥

(३२) धनवान पुरुषही साधु हुए, दूरदेशका जलही तीर्थ हुआ, यज्ञोपवीत मात्र मेंही ब्राह्मणत्व रहा एवं केवल दण्डही सन्यासीका चिन्ह रहगया।

अल्पशस्या वसुमती नदीतीरेऽवरोपिता ।
स्त्रियो वेश्यालापसुखाः स्वपुंसा त्यक्तमानसाः ॥ ३३ ॥

(३३) पृथ्वी थोड़ा अन्न उपजाने लगी, नदी किनारे वहने लगी, स्त्रियां वेश्यालाप-सुख अनुभव करने लगीं, पत्नियोंका निज पतिसे अनुराग जाता रहा।

परान्नलोलुपा विप्राश्चण्डालगृहयाजकाः ।
स्त्रियो वैधव्यहीनाश्च स्वच्छन्दाचरणप्रियाः ॥ ३४ ॥

(३४) परान्नलोलुप ब्राह्मणगण चण्डालगृहमें यजन करने लगे। स्त्रियां वैधव्यहीन स्वच्छन्द आचरणप्रिय हुईं।

चित्रवृष्टिकरा मेघा मन्दशस्या च मेदिनी ।
प्रजाभक्षा नृपा लोकाः करपीडाप्रपीडिताः ॥ ३५ ॥

(३५) मेघोंने खण्ड वृष्टि करना आरम्भ किया, पृथ्वी मन्द अन्न उपजाने वाली हुई, राजा प्रजाको भक्षण करने लगे और प्रजा करके बोझसे पीडित हो गई।

स्कन्धे भारं करे पुत्रं कृत्वा क्षुब्धाः प्रजाजनाः ।
गिरिदुर्गं वनं घोरमाश्रयिष्यन्ति दुर्भगाः ॥ ३६ ॥

(३६) अभागी प्रजा कष्टसे अत्यन्त कातर हो स्कन्धमें बोझ, हाथमें पुत्र लेकर दुर्गम पर्वत एवं गहनबनका आश्रय ग्रहण करने लगी।

मधुमांसैर्मूलफलैराहारैः प्राणधारिणः ।
एवं तु प्रथमे पादे कलेः कृष्णविनिन्दकाः ॥ ३७ ॥

(३७) मधु, मांस, मूल, फलाहार प्राण धारणका आधार हुआ। कलियुगके प्रथम चरणमें मनुष्योंकी यह दशा हुई। उस समय साधारणजन श्रीकृष्ण भगवानकी निन्दा करने लगे।

द्वितीये तन्नामहीनास्तृतीये वर्णसङ्कराः ।
एकवर्णाश्चतुर्थे च विस्मृताच्युतसत्क्रियाः ॥ ३८ ॥

(३८) कालिके दूसरे चरणमें श्रीकृष्णभगवानका नामतक लोग नहीं उच्चारण करने लगे, एवं तीसरे चरणमें वर्णसङ्करोंकी उत्पत्ति हुई, आगे चतुर्थ चरणमें मनुष्य जाति मात्र एक वर्ण हो गई। इस समय ईश्वराधनको लोग भूल गये।

निःस्वाध्या-स्वधा-स्वाहा-वौषडोंकार-वर्जिताः ।

देवाः सर्व्वे निराहाराः ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ ३९ ॥

(३९) स्वाध्याय, स्वधा, स्वाहा, वषट्, ओंकारादि लुप्त होनेपर समस्त देवता-गण आहारसे पीड़ित होकर ब्रह्माजीकी शरण ग्रहण करते हुए।

धरित्रीमग्रतः कृत्वा क्षीणां दीनां मनस्विनीम् ।
ददृशुर्ब्रह्मणो लोकं वेदध्वनिनिनादितम् ॥ ४० ॥

(४०) समस्त क्षीण, दीन देवतागण चिन्ताशील वसुन्धराको आगे कर ब्रह्मलोकमें गये। वहां उन्होंने ब्रह्मलोकको वेदध्वनिसे परिपूर्ण देखा।

यज्ञधूमैः समाकीर्णं मुनिवर्य्यनिषेवितम् ।
सुवर्णवेदिकामध्ये दक्षिणावर्त्तमुज्ज्वलम् ॥ ४१ ॥
वह्निं यूपाङ्कितोद्यान-वन-पुष्प-फलान्वितम् ।
सरोभिः सारसैर्हंसैराह्वयन्तमिवातिथिम् ॥ ४२ ॥
वायुलोललताजालकुसुमालिकुलाकुलैः ।
प्रणामाह्वान-सत्कार-मधुरालापवीक्षणैः ॥ ४३ ॥

(४१-४२-४३) यज्ञधूम समाकीर्ण, महर्षिगणनिसेवित, सुवर्ण वेदिका म[illegible] उज्वल दक्षिणाग्नि विराजित, यज्ञस्तम्भाङ्कित उद्यान वन पुष्प फलान्वित, पवन झक[illegible] जोरकर कुसुमलताजाल वीच अलिकुलआकुल एवं सरोवरस्थ सारस हंस समू[illegible] विचलित मानो मधुर स्वरसे पथिकगणका प्रणाम आह्वाहन, सत्कार तथा मधुर वचन द्वारा स्वागत कर रहे हैं।

तद्ब्रह्मसदनं देवाः सेश्वराः क्लिन्नमानसाः ।
विविशुस्तदनुज्ञाता निजकार्य्यं निवेदितुम् ॥ ४४ ॥

(४४) अपने स्वामी इन्द्रराजके साथ शोकाकुल देवतागण ब्रह्माजीकी आ[illegible] लेकर अपने दुःखको निवेदन करनेके निमित्त ब्रह्मसदनमें प्रवेश करते हुए।

त्रिभुवनजनकं सदासनस्थं सनक-सनन्दन-सनातनैश्च सिद्धैः
परिसेवितपादकमलं ब्रह्माणं देवता नेमुः ॥ ४५ ॥

दक्षिणावर्त वह्निः। अग्नि तीन प्रकारकी है। दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य और आहवनीय। गृहस्थके घ[illegible] सदा रहनेवाली अग्नि गार्हपत्याग्नि है। गार्हपत्याग्निसे अथवा यज्ञाग्निसे लेकर दक्षिण भागमें स्थापित हुई अग्निको दक्षिणाग्नि कहते हैं। होमके निमित्त संस्कार कीहुई अग्निको आहवनीय कहते हैं। [illegible] दक्षिणाग्निको दक्षिणावर्त्त वह्नि कहते हैं।

(४५) वहां पहुँचकर सनक सनन्दन सनातनसे पादपद्म सेवित योगासन आसीन त्रिभुवन स्वामी भगवान ब्रह्माजीको सब देवतागणने प्रणाम किया ।

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये कलिविवरणं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीय-अध्याय ।

सूत उवाच ।

उपविष्टास्ततो देवा ब्रह्मणो वचनात्पुरः ।
कलेर्दोषाद्धर्म्महानिं कथयामासुरादरात् ॥ १ ॥

(१) ब्रह्मभवनमें प्रवेशकर देवतागण ब्रह्माजीकी आज्ञानुसार उनके सन्मुख बैठे । आगे कलिके दोषसे धर्मकी हानि होनेका वृत्तान्त देवताओंने आदर पूर्वक ब्रह्माजीको कह सुनाया ।

देवानां तद्वचः श्रुत्वा ब्रह्मा तानाह दुःखितान् ।
प्रसादयित्वा तं विष्णुं साधयिष्याम्यभीप्सितम् ॥ २ ॥

(२) व्याकुल हृदय देवतागणके वचन सुनकर ब्रह्माजीने उनसे कहा,- "उन विष्णु भगवानकी आराधना करके हम तुम्हारी मनोकामना सिद्ध करेंगे" ।

इति देवैः परिवृतो गत्वा गोलोकवासिनम् ।
स्तुत्वा प्राह पुरो ब्रह्मा देवानां हृदयेप्सितम् ॥ ३ ॥

(३) यह कहकर देवतागणको साथ ले वैकुंठवासी श्रीविष्णु भगवानके निकट ब्रह्माजी गये । वहां स्तुति करके देवताओंके मनकी बात ब्रह्माजीने निवेदन की ।

तच्छ्रुत्वा पुण्डरीकाक्षो ब्रह्माणमिदमब्रवीत् ॥
शम्भले विष्णुयशसो गृहे प्रादुर्भवाम्यहम् ।
सुमत्यांमातरि विभो ! कन्यायां त्वन्निदेशतः ॥ ४ ॥

(४) कमल नयन भगवान विष्णु देवतागणके दुःखकी कथा सुनकर ब्रह्माजीसे इस प्रकार बोले,-"हे विभो ! तुम्हारे कथनानुसार शम्भल नगर निवासी विष्णुयशकी सुमति नाम्नी कन्याके उदरसे मैं जन्म ग्रहण करूंगा ।"

चतुर्भिर्भ्रातृभिर्देव ! करिष्यामि कलिक्षयम् ।

भवन्तो बान्धवा देवाः स्वांशेनावतरिष्यथ ॥ ५ ॥

(५) हे देव ! हम चारों भ्राता मिलकर कलिका संहार करेंगे । एवं अपने भाई देवतागण अपने अपने अंशसे अवतार लेंगे ।

इयं मम प्रिया लक्ष्मीः सिंहले संभविष्यति ।
बृहद्रथस्य भूपस्य कौमुद्यां कमलेक्षणा ।
भार्य्यायां मम भार्य्यैषा पद्मानाम्नी जनिष्यति ॥ ६

(६) हमारी यह प्राणप्यारी लक्ष्मीजी सिंहलदेशमें बृहद्रथ राजाकी स्त्री कौमु नाम्नी रानीके गर्भसे पद्मानामसे जन्म धारण करें गी ।

यात यूयं भुवं देवाः स्वांशावतरणेरताः ।
राजानौ मरुदेवापी स्थापयिष्याम्यहं भुवि ॥ ७ ॥

(७) मैं मरु और देवापि नामक दो राजाओंको पृथ्वीपर स्थापित करूंगा । देवतागण, तुम अपने अपने अंशसे पृथ्वीपर जाकर अवतार लेओ ।

पुनः कृतयुगं कृत्वा धर्म्मान्संस्थाप्य पूर्व्ववत् ।
कलिव्यालं संनिरस्य प्रयास्ये स्वालयं विभो ॥ ८ ॥

(८) हे ब्रह्माजी ! पुनः सत्ययुगका आविर्भाव कर, पूर्व्ववत् धर्म्मका स्थाप कर, कलिरूपी सर्पका नाशकर मैं फिर वैकुण्ठधामको लौट आऊँ गा ।

इत्युदीरितमाकर्ण्य ब्रह्मा देवगणैर्वृतः ।
जगाम ब्रह्मसदनं देवाश्च त्रिदिवं ययुः ॥ ९ ॥

(९) देवतागणसे सम्वेष्टित ब्रह्माजी, भगवान पुण्डरीकाक्ष मधुसूदन विष्णु भगवानके यह वचन सुनकर ब्रह्मलोक गये । देवतागण वहांसे स्वर्गलोकको चले गये ।

महिमां स्वस्य भगवान्निजजन्मकृतोद्यमः ।
विप्रर्षे ! शम्भलग्राममाविवेश परात्मकः ॥ १० ॥

(१०) हे ऋषिगण ! अपनी महिमाके बलसे परमात्मा भगवान विष्णुजी स्वयं जन्म लेने को उद्यत हो शम्भल ग्राममें प्रवेश किया ।

सुमत्यां विष्णु यशसा गर्भमाधत्त वैष्णवम् ।
ग्रह-नक्षत्र-राश्यादि-सेवित-श्रीपदाम्बुजम् ॥ ११ ॥

(११) वहां विष्णुयशके शुक्रसे सुमतिके गर्भमें ग्रह नक्षत्र राश्यादिसे श्रीपदाम्बुज विष्णुभगवान गर्भस्थभ्रूणरूप सेवित हुए।

सरित्समुद्रा गिरयो लोकाः सस्थाणुजङ्गमाः ।
सहर्षा ऋषयो देवा जाते विष्णौ जगत्पतौ ॥ १२ ॥

(१२) जगदपति भगवान विष्णुजीने मानव गर्भमें वास किया जानकर सरिता, शैल, समुद्र समस्त स्थावर जङ्गम देवता एवं महर्षिगण अत्यन्त हर्षको प्राप्त हुए।

बभूवुः सर्व्वसत्वानामानन्दा विविधाश्रयाः ।
नृत्यन्ति पितरो हृष्टास्तुष्टा देवा जगुर्यशः ॥ १३ ॥

(१३) एवं सम्पूर्ण प्राणीमात्र नाना प्रकारसे अपने अपने आनन्दको प्रगट करने लगे। पितृगण मारे आनन्दके नृत्य करने लगे, देवतागण सन्तुष्ट होकर विष्णु भगवानका यश गाने लगे।

चक्रुर्वाद्यानि गन्धर्व्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ १४ ॥

(१४) गन्धर्वगण बाजा बजाने लगे, अप्सरागणका नाच प्रारम्भ हो गया।

द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य माधवे मासि माधवः ।
जातं ददृशतुः पुत्रं पितरौ हृष्टमानसौ ॥ १५ ॥

(१५) वैशाख मासमें शुक्ल पक्षकी द्वादशीको मधुसूदन भगवान विष्णुने पृथ्वी पर अवतार लिया। माता पिताने पुलकित हृदय इस पुत्र प्रसवको देखा।

धातृमाता महाषष्ठी नाभिच्छेत्री तदम्बिका ।
गङ्गोदकक्लेदमोक्षा सावित्री मार्ज्जनोद्यता ॥ १६ ॥

(१६) विष्णुभगवानका जन्म होनेपर भगवती महाषष्ठीजीने धात्रीका कार्य लिया, अम्बिकादेवीने नालको काटा, भगवती भागीरथीने जलसे गर्भक्लेदको दूर किया एवं सावित्री देवी भगवानके गात्रको मार्जन करनेका उद्योग करने लगीं।

तस्य विष्णोरनन्तस्य वसुधाऽधात्पयःसुधाम् ।
मातृका माङ्गल्यवचः कृष्णजन्मदिने तथा ॥ १७ ॥

सावित्री। सन्ध्याकी एक मूर्तिका नाम है। सन्ध्याकी तीन मूर्तियां हैं। सन्ध्याकी पूर्वाह्न मूर्तिका नाम गायत्री, मध्याह्नका सावित्री और सन्ध्याकी सायान्ह मूर्तिका नाम सरस्वती है।

(१७) कृष्ण जन्मकी भांति भगवान अनन्त विष्णुके कल्कि अवतार धारण करने-पर श्रीमती भगवती वसुमतीने पयः सुधाधारका प्रवाह किया, मातृका भवानीने माङ्गलिक वचन उच्चारण किये।

ब्रह्मा तदुपधार्य्याशु स्वाशुगं प्राह सेवकम् ।
याहीति सूतिकागारं गत्वा विष्णुं प्रबोधय ॥ १८ ॥

(१८) विष्णु भगवानके चतुर्भुज रूपसे शम्भलग्राममें अवतार लेनेकी बात श्रवणकर ब्रह्माजीने शीघ्रगामी स्वसेवक पवनको आज्ञा दी,–"हे पवन! सूतिकागारमें जाकर तुम विष्णु भगवानसे कहो।"

चतुर्भुजमिदं रूपं देवानामपि दुर्लभम् ।
त्यक्त्वा मानुषवद्रूपं कुरुनाथ! विचारितम् ॥ १९ ॥

(१९) हे नाथ! आपकी इस चतुर्भुज मूर्तिका दर्शन देवताओंको भी दुर्लभ है। यह विचार कर हे भगवन्! इस चतुर्भुज मूर्तिको त्याग साधारण मनुष्य रूप धारण कीजिये।

इति ब्रह्मवचाः श्रुत्वा पवनः सुरभिः सुखम् ।
सशीतः प्राह तरसा ब्रह्मणो वचनादृतः ॥ २० ॥

(२०) शीतल सुरभि पवनने यत्नपूर्वक ब्रह्माजीके इन वचनोंको सुनकर शीघ्रही विष्णु भगवानसे सूतिकागारमें जा उन्हें निवेदन किया।

तच्छ्रुत्वा पुण्डरीकाक्षस्तत्क्षणाद्द्विभुजोऽभवत् ।
तदा तत्पितरौ दृष्ट्वा विस्मयापन्नमानसौ ॥ २१ ॥

(२१) ब्रह्माजीका समाचार श्रवणकर, पुंडरीकाक्ष भगवान विष्णु उसी क्षण द्विभुजाधारी मूर्ति में प्रगट हुए। उस समय भगवानकी यह लीला देखकर उनके माता पिता विस्मित-हृदय ठगेसे रह गये।

भ्रमसंस्कारवत्तत्र मेनाते तस्य मायया ।
ततस्तु शम्भलग्रामे सोत्सवा जीवजातयः ।
मङ्गलाचारबहुलाःपापतापविवर्ज्जिताः ॥ २२ ॥

(२२) आगे श्री विष्णु भगवानकी मायासे विमोहित हो माता पिताने अपने मनमें समझा "हमने भ्रमवशही दो भुजाके पुत्रको चतुर्भुज देखा था।" उपरान्त शम्भल ग्राममें प्राणिमात्र पाप तापसे विमुक्त होकर उत्सवके साथ नाना प्रकार मंगल करने लगे।

सुमतिस्तं सुतंलब्ध्वा विष्णुं जिष्णुं जगत्पतिम्।
पूर्णकामा विप्रमुख्यानाहूयाद्‌गवां शतम्॥ २३॥

(२३) उन जगत्पति विष्णु जिष्णु भगवानको पुत्र पाकर पूर्णकामा सुमतिमाता-ने ब्राह्मणोंको निमन्त्रितकर एक सौ गौवें प्रदान की।

हरेः कल्याणकृद्विष्णुयशाः शुद्धेन चेतसा।
सामर्ग्यजुर्विद्भिरग्र्यैस्तन्नामकरणे रतः॥ २४॥

(२४) शुद्ध हृदय पिता विष्णुयशजीने पुत्र विष्णु भगवानके कल्याणार्थ ऋक, यजुर एवं सामवेदज्ञ प्रधान ब्राह्मणोंको उनके नामकरणमें निरत किया।

तदा रामः कृपो व्यासो द्रौणिर्भिक्षुशरीरिणः।
समायाता हरिं द्रष्टुं बालकत्वमुपागतम्॥ २५॥

(२५) उस समय हरि भगवानको बालरूपमें दर्शन करनेके निमित्त परशुराम, कृपाचार्य, व्यासमुनि एवं द्रोणाचार्यपुत्र अश्वत्थामाजी भिक्षुक वेश धारणकर वहां पधारे।

तानागतान्समालोक्य चतुरः सूर्य्यसन्निभान्।
हृष्टरोमा द्विजवरः पूजयाञ्चक्र ईश्वरान्॥ २६॥

(२६) सूर्यसदृश प्रतिभा सम्पन्न ईश्वररूप उन चार आगन्तुकोंको देख रोमा-ञ्चित द्विजश्रेष्ठ विष्णुयशजीने उनकी पूजाकी।

पूजितास्ते स्वासनेषु संविष्टाः स्वसुखाश्रयाः।
हरिं क्रोडगतं तस्य ददृशुः सर्व्वमूर्त्तयः॥ २७॥

(२७) सुन्दर प्रकार पूजित होनेपर उन महर्षियोंने सुखपूर्व्वक अपने अपने आसनपर बैठ सर्व्वमूर्ति हरि भगवानको अपने पिता विष्णुयशकी गोदमें बैठे देखा।

तंबालकं नराकारं विष्णुं नत्वा मुनीश्वराः।
कल्किं कल्कविनाशार्थमाविर्भूतं विदुर्बुधाः॥ २८॥

कृपाचार्य। महर्षि गौतमपुत्र शरद्वाणकी तपसे भयभीतहो इन्द्रने जानपदी अप्सराको भेजा। उसको देखकर बिनजाने पृथ्वीपर शरद्वाणका शुक्र पतित हुआ। उस शुक्रसे दो बालक हुए। इन्हें शान्तनु राजा शिकार करते समय देखकर घर ले गये। राजा कृपाकर लेआये इसी कारण इनका कृप नाम रखा। आगे योग्य होनेसे कृप कृपाचार्य नामसे प्रसिद्ध हुए।

(२८) विज्ञ मुनीश्वरगणने उन बालक स्वरूप, नराकार विष्णु भगवानको नमस्कारकर कलिके विनाशार्थं कल्किभगवानका आविर्भाव हुआ जान लिया।

नामाकुर्वंस्ततस्तस्य कल्किरित्यभिविश्रुतम् ।
कृत्वा संस्कारकर्म्माणि ययुस्ते हृष्टमानसाः ॥ २९ ॥

(२९) इसके उपरान्त संस्कार कर्म्म एवं उनका कल्किनाम प्रख्यातकर प्रसन्नमन वे लोग चले गये।

ततः स ववृधे तत्रः सुमत्या परिपालितः ।
कालेनाल्पेन कंसारि शुक्लपक्षे यथा शशी ॥ ३० ॥

(३०) तदपश्चात माता सुमतिके लालन पालनसे वहां वह कंसारि हरि भगवान शुक्लपक्षमें चन्द्रकलाकी भांति शीघ्र बढ़ने लगे।

कल्केर्ज्येष्ठास्त्रयः शूराः कवि प्राज्ञ सुमन्त्रकाः ।
पितृमातृप्रियकरा गुरुविप्रप्रतिष्ठिताः ॥ ३१ ॥
कल्केरंशाःपुरो जाताः साधवो धर्म्मतत्पराः ।
गार्ग्यभर्ग्यविशालाद्या ज्ञातयस्तदनुव्रताः ॥ ३२ ॥

(३१-३२) कल्किजीके जन्मके पहले मातृ पितृप्रियकर, गुरुब्राह्मण हितकारी तीन और भ्राता-कवि, प्राज्ञ तथा सुमन्त्रक नामसे उत्पन्न हो चुके थे एवं कल्किजीके अंशसे उनकी ज्ञातिमें कल्किजी अनुगामी धर्म्मतत्पर साधुस्वभाव गर्ग, भर्ग्य और विशालादिने भगवानसे पहलेही जन्म लिया था।

विशाखयूप भूपाल पालितास्तापवर्ज्जिताः ।
ब्राह्मणाः कल्किमालोक्य परां प्रीतिमुपागताः ॥ ३३ ॥

(३३) विशाखयूपराज परिपालित यह ब्राह्मणगण कल्किभगवानके दर्शनकर सकल पापतापसे विमुक्तहो अत्यानन्दको प्राप्त हुए।

ततो विष्णुयशाः पुत्रं धीरं सर्व्वगुणाकरम् ।
कल्किं कमलपत्राक्षं प्रोवाच पठनादृतम् ॥ ३४ ॥

(३४) तदुपरान्त विष्णुयशाजीने कमलनयन सर्व्वगुणसम्पन्न गम्भीर पुत्र कल्किजीको पढनेके योग्य देखकर कहा;-

तात ते ब्रह्मसंस्कारं यज्ञसूत्रमनुत्तमम् ।

सावित्रीं वाचयिष्यामि ततो वेदान्पठिष्यसि ॥ ३५ ॥

(३५) " हे तात ! मैं तुम्हारा अनुत्तम ब्रह्मसंस्कार यज्ञसूत्रकर सावित्री श्रवण कराऊंगा तब तुम वेदपाठ करना।"

कल्किरुवाच ।

को वेदः का च सावित्री केन सूत्रेण संस्कृताः ।
ब्राह्मणा विदिता लोके तत्त्वं वद तात माम् ॥ ३६ ॥

(३६) यह सुनकर कल्किभगवान बोले,- 'वेद कौन है ? सावित्री क्या है ? किस प्रकारके सूत्रसे संस्कारित होकर मनुष्य संसारमें ब्राह्मण नामसे विदित होता है ? हे पिता इसका भेद हमसे कहो।"

पितोवाच ।

वेदो हरेर्वाक् सावित्री वेदमाता प्रतिष्ठिता ।
त्रिगुणञ्च त्रिवृत्सूत्रं तेन विप्राः प्रतिष्ठिताः ॥ ३७ ॥

(३७) पिताजीने उत्तर मे कहा ,- "वेद हरिभगवानका वाक्य हैं। प्रतिष्ठिता सावित्री वेद-माता है। त्रिगुणसूत्रको त्रिगुणकर धारण करनेपर मनुष्य विप्रनामसे प्रतिष्ठित होता है।

दशयज्ञैः संस्कृता ये ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ।
तत्र वेदाश्च लोकानां त्रयाणामिह पोषकाः ॥ ३८ ॥

(३८) दशयज्ञ संस्कृत ब्रह्मवादी ब्राह्मण जो त्रयलोकके पोषक हैं, उन्हींके निकट वेदोंका वास है।

यज्ञाध्ययन दानादि तपःस्वाध्याय संयमः ।
प्रीणयन्ति हरिं भक्त्या वेद तन्त्र विधानतः ॥ ३९ ॥

(३९) दशसंस्कार युक्त ब्राह्मणगण वेद, तन्त्रशास्त्रादि विधिसे यज्ञ, अध्ययन, तप, स्वाध्याय, संयमादि भक्तिपूर्वक करके हरि भगवानको प्रसन्न करते हैं।

तस्माद्यथोपनयन कर्म्मणोऽहं द्विजैः सह ।
संस्कर्त्तुं बान्धवजनैस्त्वामिच्छामि शुभे दिने ॥ ४० ॥

(४०) इसी कारण ब्राह्मण, बान्धव सहित शुभदिन तुम्हारे उपयुक्त उपनयन संस्कार कर्मको करनेकी इच्छा है।

पुत्र उवाच ।

के च ते दश संस्कारा ब्राह्मणेषु प्रतिष्ठिताः ।
ब्राह्मणाः केन वा विष्णुमर्च्चयन्ति विधानतः ॥ ४१ ॥

(४१) पुत्र कल्किजीने फिर प्रश्न किया,— "ब्राह्मणके लिये जो दश संस्कार प्रतिष्ठित किये गये हैं, वह दशसंस्कार कौन हैं? एवं ब्राह्मणगण किस विधानसे विष्णु भगवानकी अराधना करते हैं?"

पितोवाच ।

ब्रह्मण्यां ब्राह्मणाज्जातो गर्भाधानादिसंस्कृतः ।
सन्ध्यात्रयेण सावित्री-पूजा-जप-परायणः ॥ ४२ ॥
तपस्वी सत्यवाग्धीरो धर्म्मात्मा त्राति संसृतिम् ।
विष्ण्वर्च्चनमिदं ज्ञात्वा सदानन्दमयो द्विजः ॥ ४३ ॥

(४२-४३) पिताजीने उत्तर दिया,—" ब्राह्मणीके गर्भमें ब्राह्मणके शुक्रसे उत्पन्न गर्भाधानादि संस्कारसंस्कृत त्रिसन्ध्या सावित्री पूजा जप परायण, तपस्वी, सत्यवादी, धीर धर्मात्मा ब्राह्मण विष्णु भगवानकी पूजा पद्धतिको जानकर सर्वदा आनन्दपूर्वक संसारकी रक्षा करता है।"

पुत्र उवाच ।

कुत्रास्ते स द्विजो येन तारयत्यखिलं जगत् ।
सन्मार्गेण हरिं प्रीणन्कामदोग्धा जगत्त्रये ॥ ४४ ॥

(४४) पुत्र कल्किजीने फिर पूछा,— "जो ब्राह्मण संपूर्ण जगत्‌को उद्धार करता है; जो ब्राह्मण साधुमार्गमें चलकर हरि भगवानको प्रसन्न करता है। जो ब्राह्मण त्रयलोकके मनोर्थ पूर्ण करता है, वह ब्राह्मण कहां है?"

पितो उवाच ।

कलिना बलिना धर्म्म घातिना द्विज पातिना ।
निराकृता धर्म्मरता गता वर्षान्तरान्तरम् ॥ ४५ ॥

(४५) पिताजीने उत्तर दिया,— "धर्मघातक, द्विजहिंसक, बलवान कलिके अत्याचारसे पीड़ित होकर धर्मात्मा ब्राह्मण दूसरे वर्षको चले गये।

वर्ष। जम्बु, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक तथा पुष्कर पृथ्वीपर यह सात द्वीप हैं। इन द्वीपों के अनेक विभाग हैं। द्वीपके प्रत्येक विभागको वर्ष कहते हैं।

दश संस्कार। १ विवाह संस्कार, २ गर्भाधान, ३ पुंसवन, ४ सीमन्तोन्नयन, ५ जातकर्म, ६ नामकरण, ७ अन्नप्राशन, ८ चूड़ाकरण, ९ उपनयन और १० समावर्त्तन।

ये स्वल्पतपसो विप्राः स्थिताः कलियुगान्तरे ।
शिश्नोदरभृतोऽधर्म्मनिरता विरतक्रियाः ॥ ४६ ॥

(४६) जो अल्पतपस्वी ब्राह्मणगण कलियुगमें रहगये, वह सब धर्म्महीन क्रिया-विहीन शिश्नोदर व्याप्त होगये।

पापसारा दुराचारास्तेजोहीनाः कलाविह ।
आत्मानं रक्षितुं नैव शक्ताः शूद्रस्य सेवकाः ॥ ४७ ॥

(४७) इस कलिकालमें पापमूल, दुराचारी तेजहीन ब्राह्मण अपनी रक्षा करनेमें अशक्त शूद्रसेवक होगये हैं।

इति जनकवचो निशम्य कल्किः कलिकुलनाशमनोऽभिलाषजन्मा। द्विजनिजवचनैस्तदोपनीतो गुरुकुलवासमुवास साधुनाथः ॥ ४८ ॥

(४८) पिताजीके इसप्रकार वचनसुनकर कल्किजीके मनमें कलिकुलको विनाश करनेकी इच्छा हुई। ब्राह्मणोंने तब निज वचनोंसे उनका उपनयन संस्कार कराया। आगे साधुनाथ कल्किजी गुरुकुलमें वासकरनेको गये।

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये कल्किजन्मोपनयनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीय-अध्याय।

सूत उवाच।

ततो वस्तुं गुरुकुले यान्तं कल्किं निरीक्ष्य सः ।
महेन्द्राद्रिस्थितो रामः समानीयाश्रमं प्रभुः ॥ १ ॥

(१) सूतजी बोले,—तदुपरान्त गुरुकुलमें जातेहुए कल्किजीको देखकर महेन्द्र-पर्वतस्थ भगवान परशुराम उन्हें अपने आश्रममें लेआये।

महेन्द्रपर्वत। पुरुषोत्तम क्षेत्रमें ऋषि कुल्यानाम्नी नदी है। यह नदी गोन्दवनरेशकी पर्वत मालासे उत्पन्न हुई है। इसी स्थानमें महेन्द्रमाली नामसे एक पर्वतश्रेणी प्रख्यात है। यही महेन्द्रपर्वत है। यह महेन्द्र-पर्वतमाला उड़ीसाके उत्तर गंजामसे गन्दिवनतक फैली हुई है। भारतवर्षके सात कुलाचलोंमेंसे महेन्द्र-पर्वत भी एक है।

प्राह त्वां पाठयिष्यामि गुरुं मां विद्धि धर्म्मतः ।
भृगुवंशसमुत्पन्नं जामदग्न्यं महाप्रभुम् ॥ २ ॥
वेद वेदाङ्गतत्त्वज्ञं धनुर्वेदविशारदम् ।
कृत्वा निःक्षत्रियां पृथ्वीं दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् ॥३॥
महेंद्राद्रौ तपस्तप्तुमागतोऽहं द्विजात्मज ।
त्वं पठात्र निजं वेदं यच्चान्यच्छास्त्रमुत्तमम् ॥ ४ ॥

(२-३-४) कल्किजीको अपने आश्रममें लाकर भगवान परशुरामजीने कहा,-"मैं तुमको पढ़ाऊँगा । भृगुवंशोत्पन्न जमदग्निपुत्र, वेदवेदाङ्ग तत्वज्ञ, धनुर्वेदविशारद मुझको धर्म्मसे महा प्रभावशाली गुरु जानो । पृथ्वीको निश्छत्रियकर ब्राह्मणोंको दे, हे ब्राह्मण कुमार ! मैं महेन्द्र पर्वतपर तप करनेको आया हूँ । तुम यहां अपना वेद पढ़ो एवं अन्य जो उत्तम शास्त्र पढ़ना चाहो, वह पढ़ो ।

इति तद्वच आश्रुत्य संप्रहृष्टतनूरुहः ।
कल्किः पुरो नमस्कृत्य वेदाधीती ततोऽभवत् ॥ ५ ॥

(५) परशुरामजीके इसप्रकार बचन सुनकर कल्किजीने आनन्द-पुलकित-शरीर पहले परशुरामको नमस्कार किया और फिर वेद पढ़नेलगे ।

साङ्गं चतुःषष्टिकलं धनुर्वेदादिकञ्च यत् ।
समधीत्य जामदग्न्यात्कल्किः प्राह कृताञ्जलिः ॥ ६ ॥

(६) चौंसठकला सांगवेद एवं धनुर्वेदादि यावत पढ़कर कल्किजीने भगवान परशुरामजीसे हाथ जोड़कर कहा ।

दक्षिणां प्रार्थय विभो ! या देया तव सन्निधौ ।
ययामे सर्व्वसिद्धिः स्याद्या स्यात्त्वत्तोषकारिणी ॥ ७ ॥

(७) हे भगवन् ! जिस दक्षिणाको देकर जानेसे मेरी सर्व्वसिद्धि होगी एवं जिस दक्षिणासे आप सन्तुष्ट होंगे, उस दक्षिणाको जाननेके लिये मेरी प्रार्थना है।

कला । शिल्पविद्याको कला कहते हैं । गीत, वाद्य, नृत्य, नाट्य, लेख्यादि कलाके ६४ भेद हैं ।

वेद । ऋक, यजुः, साम और अथर्व यह चार वेद हैं ।

वेदाङ्ग । शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द चार वेदोंके ये छः अङ्ग हैं ।

उपवेद । (१) आयुर्वेद,(२) धनुर्वेद(३) गान्धर्ववेद और(४) अर्थशास्त्र, यह चार उपवेद हैं ।

राम उवाच ।

ब्रह्मणा प्रार्थितो भूमन् ! कलिनिग्रहकारणात् ।
विष्णुः सर्व्वाश्रयः पूर्णः स जातः शम्भले भवान् ॥ ८ ॥

(८) परशुरामजी बोले,–" हे भूमन ! कलिनिग्रहके निमित्त भगवान ब्रह्माजीने सर्व्वाश्रय पूर्ण भगवान विष्णुकी प्रार्थनाकी थी, हे देव ! वही आप विष्णुभगवान-शम्भलग्राममें जन्मे हैं।

मत्तो विद्यां शिवादस्त्रं लब्ध्वा वेदमयं शुकम् ।
सिंहले च प्रियां पद्मां धर्म्मान्संस्थापयिष्यसि ॥ ९ ॥

(९) मुझसे विद्या, शिवजीसे अस्त्र, एवं वेदमय शुक तथा सिंहलदेशसे अपनी भार्या पद्माको पाकर पृथ्वीपर धर्म्मसंस्थापन करोगे।

ततो दिग्विजये भूपान् धर्म्महीनान् कलिप्रियान् ।
निगृह्य बौद्धान् देवापिं मरुञ्च स्थापयिष्यसि ॥ १० ॥
वयमेतैस्तु संतुष्टाः साधुकृत्यैः सदक्षिणाः ।
यज्ञं दानं तपः कर्म्म करिष्यामो यथोचितम् ॥ ११ ॥

(१०-११) तदूपश्चात दिग्विजयमें धर्म्महीन, कलिप्रिय राजागण एवं बौद्धोंका विनाशकर धर्म्मराज मरु और देवापिको स्थापित करोगे। तुह्मारे इस साधुकार्यके सम्पन्न होनेसे ही हम सन्तुष्ट होंगे और यही हमारा दक्षिणा होगा। कारण तब हम यज्ञ दान तपादि कर्म यथोचित कर सकेंगे।

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा नमस्कृत्य मुनिं गुरुम् ।
बिल्वोदकेश्वरं देवं गत्वा तुष्टाव शङ्करम् ॥ १२ ॥

(१२) इस प्रकारके बचन सुनकर गुरु परशुरामजीको नमस्कारकर कल्किजी भगवान बिल्वोदकेश्वर महादेवके पास गये और उनको सन्तुष्ट किया।

पूजयित्वा यथान्यायं शिवं शान्तं महेश्वरम् ।
प्रणिपत्याशुतोषं तं ध्यात्वा प्राह हृदिस्थितम् ॥ १३ ॥

(१३) महादेवजीके निकट जाकर कल्किजी उन आशुतोष, हृदय-विहारी, शान्तस्वरूप, महेश्वर शिवजीकी विधिवत पूजाकर, प्रणामकर एवं ध्यानकर बोले।

कल्किरुवाच ।

गौरीनाथं विश्वनाथं शरण्यं भूतावासं वासुकीकण्ठभूषम् ।
त्र्यक्षं पञ्चास्यादिदेवं पुराणं वन्दे सान्द्रानन्दसन्दोहदक्षम् ॥
योगाधीशं कामनाशं करालं गङ्गासङ्गाक्लिन्नमूर्द्धानमीशम् ।
जटाजूटाटोपरिक्षिप्तभावं महाकालं चन्द्रभालं नमामि ॥
श्मशानस्थं भूतवेतालसङ्गं नानाशस्त्रैः खड्गशूलादिभिश्च । व्य-
ग्रात्युग्रा बाहवो लोकनाशे यस्य क्रोधोद्धूतलोकोऽस्तमेति ॥
यो भूतादिः पञ्चभूतैःसिसृक्षुः तन्मात्रात्मा काल कर्म्मस्वभावैः।
प्रहृत्येदं प्राप्य जीवत्वमीशो ब्रह्मानन्दो रमते तं नमामि ॥
स्थितौ विष्णुः सर्व्वजिष्णुः सुरात्मा लोकान् साधून् धर्म्म-
सेतून् बिभर्ति । ब्रह्माद्यांशे योऽभिमानी गुणात्मा शब्दा-
द्यङ्गैस्तं परेशं नमामि ॥ यस्याज्ञया वायवो वान्ति लोके
ज्वलत्यग्निःसविता याति तप्यन् । शीतांशु खे तारकैः सग्रहैश्च
प्रवर्त्तते तं परेशं प्रपद्ये ॥ यस्याश्वासात् सर्व्वधात्री धरि-
त्री देवो वर्षत्यम्बु कालःप्रमाता । मेरुर्मध्ये भुवनानाञ्च
भर्त्ता तमीशानंविश्वरूपं नमामि ॥१४—२०॥

(१४) कल्किवाच,—हेशिव! गौरीनाथ, विश्वनाथ, शरणागत-वत्सल, सर्व्वभूत-वासी, वासुकी भुजङ्ग भूषणधारी, सघन आनन्ददक्ष, पञ्चवदन, त्रिलोचन, पुरातन, आदिदेव तुमको प्रणाम करता हूं।

(१५) हेशिव! योगाधीश! कामनाशक! करालदर्शन! गङ्गातरङ्गसे विधौत मुर्द्धावाले परमेश्वर! जटाजूटटोपसे परिक्षित भाव! महाकाल! चन्द्रभाल! तुमको नमस्कार करता हूं।

(१६) जो भूत वैतालके साथ श्मशानमें निवास करने वाले हो, जो अपनी भयङ्कर लम्बी भुजाओंमें नाना प्रकारके खड्ग शूलादि शस्त्र धारण करने वाले हो। प्रलयके समय जिनकी क्रोधाग्निसे समस्त संसार भस्म हो जाने वाला है।

पञ्चभूत। आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी यही पांच पञ्चभूत कहलाते हैं,।

तन्मात्रा। पांच भूतोंके पांचगुण शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध एक साथ पञ्चतन्मात्रा कहलाते हैं। यही पञ्चतन्मात्रा अलग अलग होनेसे तन्मात्र कही जाती हैं।

(१७) जो भूतादि तन्मात्रा स्वरूप पंचभूत कालकर्म स्वभावसे सृष्टि रचते हो, और फिर प्रलय करके जीवत्वको प्राप्त हो ब्रह्मानन्द भोग करते हो, ऐसे आपको नमस्कार करता हूं ।

(१८) तुम सुरात्मा जगतको पालनेके हेतु सर्व्वजिष्णु, विष्णुरूपसे सेतुस्वरूप साधुओंकी रक्षा करते हो, तुम शब्दादि अवयवसे सगुणस्वरूप ब्रह्मादिके अंशाभिमानी होते हो, ऐसे परम देवता तुमको नमस्कार करता हूं ।

(१९) जिनकी आज्ञासे संसारमें पवन प्रवाह प्रवाहित होता है, जिनकी आज्ञासे अग्नि प्रज्वलित होती है, जिनकी आज्ञासे प्रभाकर प्रकाशित होते हैं; जिनकी आज्ञासे आकाशमें ग्रह तारागण सहित चन्द्रप्रभाका विकाश होता है, ऐसे परम देव मैं तुम्हारी शरण लेता हूं ।

(२०) जिनकी आज्ञासे पृथ्वी सर्व्व जगतको धारण किये है, जिनकी आज्ञासे मेघ देवता समयपर जल वृष्टि करते हैं , जो मेरुमध्यस्थ समस्त भुवनोंके भर्ता हैं, ऐसे ईशान ! विश्वरूप तुमको नमस्कार करता हूं ।

इति कल्किस्तवं श्रुत्वा शिवः सर्व्वात्मदर्शनः ।
साक्षात् प्राह हसन्नीशः पार्वतीसहितोग्रतः ॥ २१ ॥
कल्केः संस्पृश्य हस्तेन समस्तावयवं मुदा ।
तमाह वरय प्रेष्ठ ! वरं यत्तेऽभिकांक्षितम् ॥ २२ ॥

(२१-२२) इस प्रकार कल्किजीकी स्तुति सुनकर सर्वज्ञ महादेवजी, पार्वतीके साथ उनसे साक्षात बोले । महादेवजीने हर्षित होकर कल्किजीके समस्त शरीरपर हाथ फेरकर मुस्कुराते हुए कहा । हे श्रेष्ठ ! जो अभिलाषा हो उसको वर मांगो ।

त्वया कृतमिदं स्तोत्रं ये पठन्ति जना भुवि ।
तेषां सर्वार्थसिद्धिः स्यादिह लोके परत्र च ॥ २३ ॥

(२३) तुह्मारा रचा हुआ यह स्तोत्र पृथ्वीपर जो मनुष्य पढ़ेंगे, उनके इस लोक एवं परलोकमें सब अर्थ सिद्ध होंगे ।

विद्यार्थी चाप्नुयाद्विद्यां धर्म्मार्थी धर्म्ममाप्नुयात् ।
कामानवाप्नुयात् कामी पठनाच्छ्रवणादपि ॥ २४ ॥

(२४) इस स्तोत्रको पठन एवं श्रवण करनेसे विद्यार्थीको विद्या, धर्म्मार्थीको धर्म्म, कामनार्थीको कामनापूर्ण फल-प्राप्ति होती है ।

त्वं गारुडमिदं चाश्वं कामगं बहुरूपिणम् ।
शुकमेनञ्च सर्वज्ञं मया दत्तं गृहाण भोः ॥ २५ ॥

(२५) हे कल्किजी ! यह शीघ्रगामी, बहुरूपी, गरुड़ अश्व तथा यह सर्व्वज्ञ शुक तुम्हें मैं देता हूं। तुम इन्हें लेओ।

सर्व्वशास्त्रास्त्रविद्वांसं सर्ववेदार्थपारगम् ।
जयिनं सर्व्वभूतानां त्वां वदिष्यन्ति मानवाः ॥ २६ ॥

(२६) मनुष्य तुमको सर्व्व शास्त्रोंमें ज्ञाता, सर्व्व शस्त्रास्त्रोंमें निपुण, सर्व्व वेदोंमें पारंगत एवं सर्व्व प्राणियोंमें विजयी बतलावेंगे।

रत्नत्सरुं करालञ्च करवालं महाप्रभम् ।
गृहाण गुरुभारायाः पृथिव्या भारसाधनम् ॥ २७ ॥

(२७) गुरु भारवाली पृथ्वीके भारको साधन करने वाली, महाप्रभावाली कराल इस रत्नत्सरु नाम्नी तलवारको भी तुम ग्रहण करो।

इति तद्वच आश्रुत्य नमस्कृत्य महेश्वरम् ।
शम्भलग्राममगमत् तुरगेण त्वरान्वितः ॥ २८ ॥

(२८) महादेवजीके यह वचन सुन कल्किजी उन महेश्वरको प्रणामकर घोड़ेपर सवार हो शीघ्रताके साथ शम्भल ग्राम आये।

पितरं मातरं भ्रातॄन् नमस्कृत्य यथाविधि ।
सर्व्वं तद्वर्णयामास जामदग्न्यस्य भाषितम् ॥ २९ ॥

(२९) वहां पहुंचकर यथोचित रीतिसे पिता माता एवं भ्राताओंको नमस्कार-कर यमदग्निके पुत्र परशुरामजीके कहे हुए उन सब वाक्योंका वर्णन किया।

शिवस्य वरदानञ्च कथयित्वा शुभाः कथाः ।
कल्किः परमतेजस्वी ज्ञातिभ्योऽप्यवदन्मुदा ॥ ३० ॥

(३०) आगे महादेवजीके वरदानकी बात भी कहकर परमतेजस्वी कल्किजी अपनी ज्ञातिवालोंसे आनन्दित हृदय शुभ कथा कहने लगे।

गार्ग्यभर्ग्यविशालाद्यास्तच्छ्रुत्वा नन्दिताः स्थिताः ।
कथोपकथनं जातं शम्भलग्रामवासिनाम् ॥ ३१ ॥

(३१) गर्ग्य, भर्ग्य तथा विशालादि इस वृत्तान्तको सुनकर अत्यन्त आनन्दित हुए एवं शम्भल ग्राम निवासियोंमें इस कथाका वृत्तान्त एक दूसरेसे कहते सुनते प्रकाशित हुआ।

रत्नत्सरु। खड्गकी मुष्टिकाका नाम त्सरु है। रत्नकी बनी मुष्टिकाका नाम रत्नत्सरू हुआ।

विशाखयूपभूपालः श्रुत्वा तेषाञ्च भाषितम् ।
प्रादुर्भावं हरेर्मेने कलिनिग्रहकारकम् ॥ ३२ ॥

(३२) शम्भलग्राम निवासियोंके मुखसे यह सब सम्वाद विशाखयूपराजने सुनकर समझा, कि कलिका निग्रह करनेके लिये हरि भगवानने पृथ्वीपर अवतार लिया है।

माहिष्मत्यां निजपुरे यागदानतपोव्रतान् ।
ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्यान् शूद्रानपि हरेः प्रियान् ॥३३॥

(३३) अपनी महिष्मतीपुरीमें याग, दान तप व्रतादि धारण करनेवाले ब्राह्मण क्षत्री वैश्य एवं शूद्र हरिप्रिय हुए ;

स्वधर्म्मनिरतान् दृष्ट्वा धर्मिष्ठोऽभून्नृपः स्वयम् ।
प्रजापालः शुद्धमनाः प्रादुर्भावात् श्रियः पतेः ॥ ३४ ॥

(३४) लक्ष्मीपति श्रीभगवान कल्किजीका प्रादुर्भाव होनेसे समस्त वर्ण स्वधर्म निरत हुए देखकर राजा स्वयं प्रजापालक शुद्धमन एवं धार्म्मिष्ठ हुआ।

अधर्म्मवंश्यांस्तान् दृष्ट्वा जनान् धर्म्मक्रियापरान् ।
लोभानृतादयो जग्मुस्तद्देशाद्दुःखिता भयम् ॥ ३५ ॥

(३५) लोभ, अनृत आदि अधर्मके वंशवाले महिष्मती नगरीके निवासियोंको धर्म्मपरायण देख अत्यन्त दुःखित हो वहांसे चले गये।

जैत्रं तुरगमारुह्य खड्गञ्च विमलप्रभम् ।
दंशितः सशरं चापं गृहीत्वागात् पुराद्बहिः ॥ ३६ ॥

(३६) सुतीक्षण खड्ग एवं धनुष सहित चोखे बाणको ले जयकारी शिवजीके दिए हुए घोड़ेपर सवार हो कल्किजी पुरके बाहर आये।

विशाखयूपभूपालः प्रायात् साधुजनप्रियः ।
कल्किं द्रष्टुं हरेरंशमाविर्भूतञ्च शम्भले ॥ ३७ ॥

(३७) साधुजनप्रिय विशाखयुपराज विष्णुजीके अंशसे शम्भलग्राममें कल्कि-जीका अवतार देखनेके निमित्त प्रस्थित हुए।

महिष्मती। नर्मदा नदीके तटपर यह नगरी बसी है। इसका वर्तमान नाम चुलीमहेश्वर है।

कविं प्राज्ञं सुमन्तुञ्च पुरस्कृत्य महाप्रभम् ।
गार्ग्य-भर्ग्य-विशालैश्च ज्ञातिभिः परिवारितम् ॥ ३८ ॥
विशाखयूपो ददृशे चन्द्रं तारागणैरिव ।
पुराद्बहिः सुरैर्यद्वदिन्द्रमुच्चैःश्रवःस्थितम् ॥ ३९ ॥

(३८-३९) महाप्रभावशाली कवि, प्राज्ञ, सुमन्त्र अगाड़ी एवं गर्ग्य, भर्ग्य, विशालादिसे सम्वेष्टित तारागण संयुक्त चन्द्र अथवा देवतागण सहित अश्वारूढ़ उच्चैश्रवाकी भांति विशाखयूपराजने कल्किजीको पुरके बाहर देखा ।

विशाखयूपोऽवनतः संप्रहृष्टतनूरुहः ।
कल्केरालोकनात् सद्यः पूर्णात्मा वैष्णवोऽभवत् ॥४०॥

(४०) कल्जिीको देखकर रोमाञ्चित शरीर विशाखयूपराज झुकगया और उसी समय पूर्ण वैष्णाव होगया ।

सह राज्ञा वसन् कल्किः धर्म्मानाह पुरोदितान् ।
ब्राह्मणक्षत्रियविशामाश्रमाणां समासतः ॥ ४१ ॥

(४१) राजाके साथ रहते हुए कल्किजीने आगे कहे हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं आश्रमादि धर्म्मोंको संक्षेपसे कहा ।

ममांशान् कलिविभ्रष्टानिति मज्जन्मसङ्गतान् !
राजसूयाश्वमेधाभ्यां मां यजस्व समाहितः ॥ ४२ ॥

(४२) कल्किजीने कहा,—"हमारे अंश कलिके पापसे भ्रष्ट हुए थे, हमारे जन्म लेनेपर धर्म्ममार्गमें मिले हैं । तुम राजसूय एवं अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठानकर उनके सहित हमारी उपासना करो ।

अयमेव परो लोको धर्म्मश्चाहं सनातनः ।
कालस्वभासंवस्कारा: कर्म्मानुगतयो मम ॥ ४३ ॥

(४३) मैं ही परलोक हूं, मैं ही सनातन धर्म्म हूं, काल, स्वभाव और संस्कार हमारे ही कर्मके अनुगत हैं ।

सोमसूर्य्यकुले जातौ देवापिमरुसंज्ञकौ ।
स्थापयित्वा कृतयुगं कृत्वा यास्यामि सद्गतिम् ॥ ४४ ॥

(४४) चन्द्रवंशमें उत्पन्न देवापिराज एवं सूर्यवंशमें जन्म ग्रहण करनेवाले मरुराज उक्त दोनों राजाओंको स्थापित कर सत्ययुगको परिवर्तित कर मैं सद्गतिको ग्रहण करूंगा ।

इति तद्वचनं श्रुत्वा राजा कल्किं हरिं प्रभुम् ।
प्रणम्य प्राह सद्धर्म्मान् वैष्णवान् मनसेप्सितान् ॥४५॥

(४५) यह वचन सुनकर राजा विशाखयूपने कल्कि हरिभगवानको प्रणामकर मनोभिलखित सद्धर्म वैष्णवधर्म्म प्रसंग कहनेको कहा ।

इति नृपवचनं निशम्य कल्किः कलिकुलनाश-
नवासनावतारः । निजजनपरिषद्विनोदकारी
मधुरवचोभिराह साधुधर्म्मान॥ ४६ ॥

(४६) राजाके बचन सुनकर, कलिकुलको नाश करनेकी अभिलाषासे पृथ्वी पर अवतार लेने वाले कल्किजी अपने परिजन और परिषद लोगोंके चित्तको हर्षित करने वाले मधुर बचनसे साधु धर्म्मकी व्याख्या करना प्रारम्भ की ।

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये कल्किवरलाभ
नामकस्तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थ-अध्याय ।

सूतउवाच ।

ततः कल्किः सभामध्ये राजमानो रविर्यथा ।
बभाषे तं नृपं धर्म्म-मयो धर्म्मान् द्विजप्रियान् ॥ १ ॥

(१) सूतजी बोले,—"इसके उपरान्त धर्ममय कल्किजी, सभामें सूर्यवत विराजमान हो उस विशालयूपराजसे ब्राह्मणोंकी प्यारी धर्म्म कथाको कहने लगे।"

कल्किरुवाच ।

कालेन ब्रह्मणो नाशे प्रलये मयि सङ्गताः ।
अहमेवासमेवाग्रे नान्यत् कार्यमिदं मम ॥ २ ॥

(२) कल्किजीने कहा,—"कालान्तरमें ब्रह्माण्डका नाश होगा, प्रलय होने पर

समस्त पदार्थ मुझमें मिल जायंगे । सृष्टिके पहले केवल मैंही वर्तमान था और कुछ नहीं था । यह समस्त मेरीही सृष्टि है ।

प्रसुप्तलोकतन्त्रस्य द्वैतहीनस्य चात्मनः ।
महानिशान्ते रन्तुं मे समुद्भूतो विराट् प्रभुः ॥ ३ ॥

(३) समस्त संसारकी सुप्त अवस्था, सगुणहीन अद्वैत अवस्थारूपी महानिशाका अन्त होनेपर सर्व्व शक्तिमान विराट्मूर्तिमें मेरा अविर्भाव हुआ था

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
तदङ्गजोऽभवद्ब्रह्मा वेदवक्त्रो महाप्रभुः ॥ ४ ॥

(४) इस विराट्मूर्तिके सहस्र मस्तक एवं सहस्र चरण थे। उसी विराटमूर्तिके अंगसे वेदमुख भगवान ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ।

जीवोपाधेर्ममांशाच्च प्रकृत्या मायया स्वया ।
ब्रह्मोपाधिः स सर्व्वज्ञो मम वाग्वेदशासितः ॥ ५ ॥
ससर्ज्ज जीवजातानि कालमायांशयोगतः ।
देवा मन्वादयो लोकाः सप्रजापतयः प्रभुः ॥ ६ ॥

(५-६) उन ब्रह्म उपाधिधारी सर्व्वज्ञपुरुषने मेरे वेदवाक्यसे शासित जीव उपाधिधारी मेरे अंश एवं मेरी माया प्रकृतिके बल काल मायाके अंशको मिलाकर इस जीव जातिको उत्पन्न किया । इस प्रकार मन्वादि प्रजापति भगवानके सहित देवतागणकी उत्पत्ति हुई ।

गुणिन्या मायायांशा मे नानोपाधौ ससर्ज्जरे ।
सोपाधय इमे लोका देवाः सस्थाणुजङ्गमाः ॥ ७ ॥

(७) हमारेही अंशसे सत्व, रज एवं तमगुणमयी माया अनेक प्रकारकी उपाधिसे विभक्त हो, इस लोकमें देवता, मानव, स्थावर, जंगम उपाधिधारी सृष्टि उत्पन्न हुई है ।

प्रकृति । सत, रज और तमोगुणकी साम्यावस्थाका नाम प्रकृति है ।

मनु ।१ स्वायम्भुव, २ स्वारोचिष, ३ उत्तम, ४ तामस, ५ रैवत, ६ चाक्षुष, ७ वैवस्वत, ८ सावर्णि, ९ दक्षसावार्णि, १० ब्रह्मसावार्णि, ११ धर्म्मसावार्णि, १२ रुद्रसावार्णि, १३ देवसावर्णि, और १४ इन्द्रसावार्णि यही चौदह मनु हैं ।

प्रजापति । १ मारीच, २ अत्रि, ३ अंगिरा, ४ पुलस्त्य, ५ पुलह, ६ क्रतु, ७ प्रचेता, ८ वसिष्ठ, ९ भृगु, और नारद यही दश प्रजापति हैं ।

ममांशा मायया सृष्टा यतो मय्याविशन् लये ।
एवंविधाब्राह्मणा ये मच्छीरा मदात्मिकाः ॥ ८ ॥

(८) मेरा अंश मायासृष्टिको रचनेवाला मायासृष्टिके अन्तमें मुझमें ही मिल जायगा। इसी प्रकार ब्राह्मणजो मेरे शरीर हैं, वह आत्मस्वरूप हैं।

मामुद्धरन्ति भुवने यज्ञाध्ययनसत्क्रियाः ।
मां प्रसेवन्ति शंसन्ति तपोदानक्रियास्विह ॥ ९ ॥

(९) कारण ब्राह्मण, यज्ञ अध्ययन आदि श्रेष्ठकार्योंसे संसारमें मेरा उद्धार करते हैं, तप दानादि कर्मसे मेरी सेवा करते हैं, मेरा नाम ग्रहण करते हैं एवं मुझे स्मरण करते हैं।

स्मरन्त्यामोदयन्त्येव नान्ये देवादयस्तथा ।
ब्राह्मणा वेदवक्तारो वेदा मे मूर्त्तयः परा ॥ १० ॥

(१०) वेद हमारी पूर्णमूर्ति है, वेदवक्ता ब्राह्मणगण मुझे स्मरणकर जिस प्रकार प्रसन्न करते हैं, देवादि अन्य कोई भी उस प्रकार मुझे प्रसन्न नहीं कर सकते।

तस्मादिमे ब्राह्मणजास्तैः पुष्टाखिजगज्जनाः ।
जगन्तिमे शरीराणि तत्पोषे ब्रह्मणो वरः ॥ ११ ॥

(११) इसी कारण ब्राह्मप्रचारित वेदोंसे त्रिजगत निवासीगण परिपुष्ट होरहे हैं, जग तनिवासी मेरे शरीर हैं, उस मेरे शरीरको पुष्ट करनेमें ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं।

तेनाहं तान्नमस्यामि शुद्धसत्वगुणाश्रयः ।
ततो जगन्मयं पूर्ब्बं मां सेवन्तेऽखिलाश्रयाः ॥ १२ ॥

(१२) इसी कारण शुद्ध सत्वगुण अवलम्बनकर मैं ब्राह्मणोंको नमस्कार करताहूं। मेरे नमस्कार करनेपर अखिलाश्रय ब्राह्मणगण मुझे पूर्ण जगन्मय समझकर मेरी सेवा करते हैं।

विशाखयूप उवाच ।

विप्रस्य लक्षणं ब्रूहि त्वद्भक्तिः का च तत्कृता ।
यतस्तवानुग्रहेण वाग्बाणा ब्राह्मणाः कृताः ॥ १३ ॥

(१३) इस पर विशाखयूपराजने प्रश्न किया,—"ब्राह्मणके लक्षण क्या हैं? आपकी भक्ति वे किस प्रकार करतेहैं? जिस भक्तिके करनेसे तुह्मारी अनुग्रह द्वारा ब्राह्मणगण वाक्य वाणस्वरूप हुए हैं।"

कल्किरुवाच ।

वेदा मामीश्वरं प्रहुरव्यक्तं व्यक्तिमत्परम् ।
ते वेदा ब्राह्मणमुखे नानाधर्म्मैः प्रकाशिताः ॥ १४ ॥

(१४) कल्किजीने उत्तर दिया,—"अव्यक्त, व्यक्तिगत एवं परात्पर वेद मेरे ईश्वर हैं। वे वेद ब्राह्मण मुखसे नाना धर्म्मोंमें प्रकाशित होते हैं।"

यो धर्म्मो ब्राह्मणानां हि सा भक्तिर्मम पुष्कला ।
तयाहं तोषितः श्रीशः संभवामि युगे युगे ॥ १५ ॥

(१५) ब्राह्मणोंका जो धर्म्म है, वह धर्म्माचरणही मेरे प्रति घनिष्ट भक्तिका परिचय है। उस भक्तिसे सन्तुष्ट होकर लक्ष्मीपति रूपसे युग युगमें अवतार लेता हूं।

ऊर्द्ध्वन्तु त्रिवृतं सूत्रं सधवानिर्मितं शनैः ।
तन्तुत्रयमधोवृत्तं यज्ञसूत्रं विदुर्बुधाः ॥ १६ ॥

(१६) पण्डित लोग कहते हैं,—"सधवा ब्राह्मण कन्याके बनाये हुए सूत्रको तिगुनाकर तदुपरान्त उस तिगुने सूत्रको फिर तिगुना करनेसे यज्ञसूत्र बन जाता है।"

त्रिगुणं तद्ग्रन्थियुक्तं वेदप्रवरसंमितम् ।
शिरोधरात् नाभिमध्यात् पृष्ठार्द्ध परिमाणकम् ॥ १७ ॥
यजुर्विदां नाभिमितं सामगानामयं विधिः ।
वामस्कन्धेन विधृतं यज्ञसूत्रं बलप्रदम् ॥ १८ ॥

(१७-१८) वेदप्रवर मिलाकर उस तिगुने सूत्रमें गांठ लगावे। इस प्रकार निर्मित यज्ञोपवीत गर्दनसे नाभि तक एवं पृष्ठके अर्द्ध भाग तक यजुर्वेदी ब्राह्मणको धारण करनेके लिये कहा है। सामवेदी ब्राह्मणोंका यज्ञोपवीत नाभितक रखनेकी विधि है। वामस्कन्धमें यज्ञोपवीत धारण करनेसे बलप्रदान करता है।

मृद्भस्मचन्दनाद्यैस्तु धारयेत् तिलकं द्विजः ।
भाले त्रिपुण्ड्रं कर्म्माङ्गं केशपर्य्यन्तमुज्ज्वलम् ॥ १९ ॥

(१९) ब्राह्मण मिट्टी, भष्म, चन्दनादिसे तिलकको धारणकरे एवं मस्तकमें केश-पर्यन्त धर्म्म कर्म्माङ्ग, उज्ज्वल त्रिपुण्ड्र लगावे।

पुण्ड्रमङ्गुलिमानन्तु त्रिपुण्ड्रं तत् त्रिधा कृतम् ।
ब्रह्मविष्णुशिवावासं दर्शनात् पापनाशनम् ॥ २० ॥

(२०) पुण्ड्र एक अंगुल प्रमाण चौड़ा होता है। उसीको तिगुना करनेसे त्रिपुण्ड्र हुआ। त्रिपुण्ड्रमें ब्रह्मा, विष्णु एवं महादेवजीका वासहै। त्रिपुण्ड दर्शन करनेसे पापका नाश होता है।

ब्राह्मणानां करे स्वर्गा वाचो वेदाः करे हरिः।
गात्रे तीर्थानि रागाश्च नाड़ीषु प्रकृतिस्त्रिवृत् ॥ २१ ॥

(२१) ब्राह्मणोंके हाथमें स्वर्ग और विष्णुभगवान हैं, वाक्यमें वेद हैं, शरीरमें तीर्थ और ममता है, नाड़ियोंमें त्रिगुणमयी प्रकृति है।

सावित्री कण्ठकुहरा हृदयं ब्रह्मसंज्ञितम्।
तेषां स्तनान्तरे धर्म्मः पृष्ठोऽधर्म्मः प्रकीर्त्तितः ॥ २२ ॥

(२२) ब्राह्मणोंके कंठस्थानमें सावित्री है, हृदयमें ब्रह्मस्वरूप है, एवं उनके दोनों स्तनोंके वीच हृदयमें धर्म्म है और पीठपर अधर्म्मका वास है।

भूदेवा ब्राह्मणा राजन्! पूज्या वन्द्याः सदुक्तिभिः।
चतुराश्रम्यकुशला मम धर्म्मप्रवर्त्तकाः ॥ २३ ॥

(२३) हेराजन्! चतुराश्रम धर्म्ममें कुशल, मेरे धर्म्मके प्रवर्त्तक पृथ्वीके देवता ब्राह्मणगण उत्तम उक्तिके साथ पूजा वन्दना करनेके योग्य हैं।

बालाश्चापि ज्ञानवृद्धास्तपोवृद्धा मम प्रियाः।
तेषां वचः पालयितुमवताराः कृता मया ॥ २४ ॥

(२४) ज्ञानमें बड़े, तपस्यामें बड़े, ब्राह्मणोंके बालकभी मुझे अत्यन्त प्यारे हैं। उन्हींके बचनको पालन करनेके निमित्त मैं अवतार लेता हूं।

महाभाग्यं ब्राह्मणानां सर्व्वपापप्रणाशनम्।
कलिदोषहरं श्रुत्वा मुच्यते सर्व्वतो भयात् ॥ २५ ॥

(२५) सर्व्व प्रकारके पापोंका विनाश करनेवाला, कलिके दोषोंको दूर करनेवाला, ब्राह्मणोंके महाभाग्यका वर्णन सुननेसे सर्व्वप्रकारके भय छूट जाते हैं।

इति कल्किवचः श्रुत्वा कलिदोषविनाशनम्।
प्रणम्य तं शुद्धमनाः प्रययौ वैष्णवाग्रणीः ॥ २६ ॥

त्रिवृत प्रकृत। एकमें मिश्रित तेज, जल और अन्नको त्रिवृत कहते हैं।

चतुराश्रम। ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और सन्यस्त इन्हीं चारों आश्रमोंकी चतुराश्रम संज्ञा है।

(२६) कलिदोष विनाशी कल्किजीके वचन सुनकर, शुद्धहृदय वैष्णव शिरमौर विशाखयूप उनको प्रणाम करके चला गया।

गते राजनि सन्ध्यायां शिवदत्तशुको बुधः।
चरित्वा कल्किपुरतः स्तुत्वा तं पुरतः स्थितः॥ २७॥
तं शुकं प्राह कल्किस्तु सस्मितं स्तुतिपाठकम्।
स्वागतं भवता कस्मात् देशात् किं खादितं ततः॥२८॥

(२७-२८) विशाखयूपराजके चलेजानेपर परमविद्वान शिवदत्तशुक इधर उधर भ्रमणकर सन्ध्याके समय कल्किजीके सामने पहुंच स्तुतिकर सन्मुख खड़ा हुआ। उस स्तुतिपढ़नेवाले शुकसे कल्किजीने मुस्कराकर कहा,—"आपका किस देशसे अगमन हुआ है? वहां आपने क्या आहार किया?"

शृणु नाथ! वचो मह्यं कौतूहलसमन्वितम्।
अहं गतश्च जलधेर्मध्ये सिंहलसंज्ञके॥ २९॥

(२९) शुकने उत्तर दिया,—"हे देव! मुझसे एक कौतुकयुक्त वाक्य श्रवण कीजिये, समुद्रके बीच सिंहलनामक द्वीपमें मैं गया था।"

यथावृत्तं द्वीपगतं तच्चित्रं श्रवणप्रियम्।
बृहद्रथस्य नृपतेः कन्यायाश्चरितामृतम्॥ ३०॥

(३०) सिंहलद्वीपमें जिस प्रकारकी घटना हुई, उसकी विचित्रता श्रवण करनेमें मधुर है। बृहद्रथ राजाकी कन्याका चरित्र सुधारसके समान स्वादिष्ट है।

कौमुद्यामिह जातायाः जगतां पापनाशनम्।
चरितं सिंहले द्वीपे चातुर्वर्ण्यजनावृते॥ ३१॥

(३१) सिंहलाधिप बृहद्रथकी रानी कौमुदीके गर्भसे इस कन्याने जन्म ग्रहण किया है। उस कन्याका चरित्र श्रवण करनेसे संसारके समस्त पाप नाश हो जाते हैं। सिंहलद्वीपमें ब्राह्मण, क्षत्री, आदि चारों वर्णके मनुष्य वसते हैं।

चतुर्वर्ण। ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, और शूद्र यही चारों वर्ण चतुर्वर्ण कहलाते हैं। चतुर्वर्णकी उत्पत्ति लोक वृद्धिके निमित्त ब्रह्माजीने मुखसे ब्राह्मण, बाहुसे क्षत्रिय, ऊरुसे वैश्य और पादसे शूद्र उत्पन्न किया है। चतुर्वर्णकी यही उत्पत्ति है।

चतुर्वर्णकी जीविका। ब्राह्मणकी शास्त्र जीविका है, क्षत्रीकी शस्त्री जीविका है, वैश्यकी कृषि-जीविका है, और शूद्रकी तीनों वर्णकी सेवा जीविका है।

प्रासाद-हर्म्य-सदन-पुर-राजि-विराजिते ।
रत्न-स्फाटिक-कुड्यादि-स्वर्लताभिर्विभूषिते ॥ ३२ ॥

(३२) प्रासाद, अटारी, गृह, पुरादिसे राजा शोभायमान है। रत्न, स्फटिक, भीत्यादि स्वर्णमय लता वेलिसे गृह विभूषित है।

स्त्रीभिरुत्तमवेशाभिः पद्मिनीभिः समावृते ।
सरोभिः सारसैर्हंसैरुपकूलजलाकुले ॥ ३३ ॥

(३३) उत्तम वेशवाली पद्मिनी कामिनी वहां पर विराजती हैं। सरोवरोंके तटों पर सारस हंसादि पक्षीगण किलोल कर रहे हैं।

भृङ्गरङ्गप्रसङ्गाढ्ये पद्मैः कह्लारकुन्दकैः ।
नानाम्बुजलताजाल-वनोपवन-मण्डिते ॥ ३४ ॥

(३४) सिंहलद्वीप अनेक प्रकारके पद्मलताजाल, वन उपवनसे मण्डित है और उन कमल, कह्लार, कुन्द आदि कुसुम पर मधुकरगणके रङ्गप्रसङ्गसे परम रमणीय भाव उत्पन्न होरहा है।

देशे बृहद्रथो राजा महाबलपराक्रमः ।
तस्य पद्मावती कन्या धन्या रेजे यशस्विनी ॥ ३५ ॥

(३५) सिंहल देशका स्वामी बृहद्रथ अत्यन्त बलवान प्राक्रमशाली है। उस राजाके प्रशंसा योग्य यशस्विनी पद्मावती नाम्नी कन्या है।

भुवने दुर्ल्लभा लोकेऽप्रतिमा वरवर्णिनी ।
काम-मोह-करी चारु-चरित्रा चित्र-निर्मिता ॥ ३६ ॥

(३६) उस श्रेष्ठमुखी, कामदेवको मोहित करने वाली, सुन्दर चरित्रवाली सुन्दरताकी सीव, भुवनमें दुर्लभ कन्याकी उपमा संसारमें नहीं है।

शिवसेवापरा गौरी यथा पूज्या सुसम्मता ।
सखीभिः कन्यकाभिश्च जपध्यानपरायणा ॥ ३७ ॥

(३७) पारवतीजी जिस प्रकार महादेवजीकी सेवा करती हैं। उसी प्रकार पूजनीय सुसम्मता पद्मावती सखी और कन्याओंके साथ जप ध्यान किया करती हैं।

ज्ञात्वा ताञ्च हरेर्लक्ष्मीं समुद्भूतां वराङ्गनाम् ।
हरः प्रादुरभूत्साक्षात्पार्व्वत्या सह हर्षितः ॥ ३८ ॥

(३८) उस श्रेष्ठ मुखवाली पद्मावतीके रूपमें विष्णु भगवानकी प्यारी लक्ष्मीजीको पृथ्वी पर अवतरी जानकर हर्ष पूर्ब्बक पार्वती सहित महादेवजी साक्षात प्रगट हुए ।

सा तमालोक्य वरदं शिव गौरीसमन्वितम् ।
लज्जिताधोमुखी किञ्चिन्नोवाच पुरतः स्थिता ॥ ३९ ॥

(३९) यह कन्या पारवती सहित वरदान देने वाले शिवजीको देखकर लज्जासे शिर नीचेकर कुछ नहीं कहकर सामने खड़ी रह गई ।

हरस्तामाह सुभगे ! तव नारायणः पतिः ।
पाणिं ग्रहीष्यति मुदा नान्यो योग्यो नृपात्मजः ॥४०॥

(४०) तब महादेवजीने उससे कहा;—"हे सुभगे ! तुह्मारे पति नारायण हर्ष पूर्वक तुह्मारा पाणि ग्रहण करेंगे । अन्य कोई राजकुमार तुह्मारे साथ विवाह करनेके योग्य नहीं है ।

कामभावेन भुवने ये त्वां पश्यन्ति मानवाः ।
तेनैव वयसा नार्य्यो भविष्यन्त्यपि तत्क्षणात् ॥ ४१ ॥

(४१) संसारमें जो मनुष्य तुमको कामभावसे देखेंगे । वे तत्काल अपनी वयसके अनुकूल स्वरूपको प्राप्त होंगे ।

देवासुरास्तथा नागा गन्धर्व्वाश्चारणादयः ।
त्वया रन्तुं यथाकाले भविष्यन्ति किल स्त्रियः ॥ ४२ ॥

(४२) देव, असुर, नाग, गन्धर्व, चारणादि जो कोई तुह्मारे साथ रमण करनेकी इच्छा करेगा । वह तत्काल निश्चय स्त्री हो जायगा ।

विना नारायणं देवं त्वत्पाणिग्रहणार्थिनम् ।
गृहं याहि तपस्त्यक्त्वा भोगायतनमुत्तमम् ॥ ४३ ॥

(४३) नारायणके अतिरिक्त तुम्हारे पाणिग्रहणकी जो इच्छा करेगा उसकी ऐसी ही दशा होगी । तुम तपको त्यागकर अब घर जाओ एवं भोगके योग्य अपना उत्तम शरीर बनाओ ।

मा क्षोभय हरेः पत्नि कमले विमलं कुरु ।
इति दत्त्वा वरं सोयस्तत्रैवान्तर्दधे हरः ॥ ४४ ॥

(४४) हे विष्णुविलासिनि कमले! क्षोभ नहीं करो। मलको दूर करो। भगवान चन्द्रशेखरमहादेवजी, पद्मावतीको इसप्रकार वर देकर उसी स्थानमें अन्तर्ध्यान होगये।

हर वरमिति सा निशम्य पद्मा समुचितमात्ममनोरथ प्रकाशम्। विकसितवदना प्रणम्य सोमं निजजनकालयमाविवेश रामा ॥ ४५ ॥

(४५) मन वांछित महादेवजीके वरदानका वचन सुनकर प्रफुल्लवदन वह रामा पद्मावती शशाङ्कशेखर महादेवजीको प्रणामकर अपने पिताके गृह चली गई।

इति श्रीकाल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये हरवरप्रदानं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥४॥

पञ्चमो-अध्याय।

शुक उवाच।

गते बहुतिथे काले पद्मां वीक्ष्य बृहद्रथः।
निरूढ यौवनां पुत्रीं विस्मितःपापशङ्कया ॥ १ ॥

(१) शुकने कहा,—"बहुत दिन समय बीतने पर पद्मावतीकन्याको यौवनावस्थामें प्राप्त होते देखकर बृहद्रथराज पापकी शङ्कासे चिन्तित हुआ।"

कौमुदीं प्राह महिषीं पद्मोद्वाहेऽत्र कं नृपम्।
वरयिष्यामि सुभगे! कुलशीलसमन्वितम् ॥ २ ॥

(२) राजाने अपनी रानी कौमुदीसे कहा,—हे सुभगे! पद्माके विवाहके निमित्त उत्तमकुलमें उत्पन्न हुए किस शीलवान राजाको स्वीकार करूं?"

सा तमाह पतिं देवी शिवेन प्रतिभाषितम्।
विष्णुरस्याः पतिरिति भविष्यति न संशयः ॥ ३ ॥

(३) उस देवी कौमुदीने अपने पतिसे शिवके कहे हुए वचनको कहा,—"भगवान विष्णु इसके पति होंगे इसमें सन्देह नहीं है।"

इति तस्यावचः श्रुत्वा राजा प्राह कदेति ताम्।
विष्णुः सर्व्वगुहावासः पाणिमस्या ग्रहीष्यति ॥ ४ ॥

(४) रानीके यह बचन सुनकर राजाने प्रश्न किया;—"सर्व्व हृदयवासी विष्णु भगवान कितने दिनके पश्चात पद्माका पाणिग्रहण करेंगे ?"

न मे भाग्योदयः कश्चित् येन जामातरं हरिम्।
वरयिष्यामि कन्यार्थे वेदवत्या मुनेर्यथा ॥ ५॥

(५) हे कौमुदि! हमारा ऐसा कोई भी सौभाग्य उदय नहीं हुआ है, कि जिसके बल कन्याके निमित्त वेदवतीके पिता तपस्वी मुनिकी भांति स्वयंम्वर सभामें भगवान विष्णुको जामात्र रूपसे वरण कर सकूंगा।

इमां स्वयंवरां पद्मां पद्मामिव महोदधेः।
मथनेऽसुरदेवानां तथा विष्णुर्ग्रहीष्यति ॥ ६॥

(६) देवासुरके मथनसे समुद्रमें उत्पन्न हुई कमलासना पद्माकी भांति इस पद्माको स्वयम्बरक्षेत्रके मध्य विष्णु भगवान ग्रहण करेंगे।

इति भूपगणान्भूपः समाहूय पुरस्कृतान्।
गुणशीलवयोरूपविद्याद्रविणसंवृतान् ॥ ७॥

(७) यह विचार कर राजा बृहद्रथने, गुणशाली, शीलसम्पन्न, रूपवान, तरुण अवस्थावाले, विद्वान एवं धनवान राजाओंको सन्मानके साथ निमंन्त्रित किया।

स्वयंवरार्थं पद्मायाः सिंहले बहुमङ्गले।
विचार्य्य कारयामास स्थानं भूपनिवेशनम् ॥ ८॥

(८) पद्माके स्वयम्वरार्थ सिंहलदेशमें अनेक प्रकारके मङ्गल होने लगे। निमन्त्रित राजाओंके निवासार्थ योग्य स्थान नियत किया गया।

तत्रायाता नृपाः सर्व्वे विवाहकृतनिश्चयाः।
निजसैन्यैः परिवृताः स्वर्णरत्नविभूषिताः ॥ ९॥

(९) विवाहकी चाहना करने वाले समस्त राजागण सुवर्ण, रत्नादिके भूषणोंसे विभूषित हो अपनी अपनी सेना सहित सिंहल देशमें आगमन करने लगे।

रथान्गजानश्ववरान्समारूढा महाबलाः।

मागध। वैश्य पुरुष और क्षत्रियानी स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न हुई सन्तानकी मागध संज्ञा है।
बन्दी। मागध जातिको कहते हैं।
वैदेह। वैश्य पुरुष और ब्राह्मणीके गर्भसे उत्पन्न हुई सन्तानको वैदेह जाति कहते हैं।

श्वेतच्छत्रकृतच्छायाः श्वेतचामरवीजिताः ॥ १० ॥

(१०) वह महाबलवान राजागण रथ, हाथी एवं घोड़ों पर सवार होकर वहां उपस्थित हुए । श्वेतच्छत्रसे उन राजागणपर छाया की गई एवं श्वेतचामरसे परिजनगण हवा करने लगे ।

शस्त्रास्त्रतेजसा दीप्ता देवाः सेन्द्रा इवाभवन् ।
रुचिराश्वः सुकर्म्मा च मदिराक्षो दृढ़ाशुगः ॥ ११ ॥
कृष्णसारः पारदश्च जीमूतः क्रूरमर्द्दनः ।
काशः कुशाम्बुर्वसुमान् कङ्कः क्रथनसञ्जयौ ॥ १२ ॥
गुरुमित्रः प्रमाथी च विजृम्भः सृञ्जयोऽक्षमः ।
एते चान्ये च बहवः समायाता महाबलाः ॥ १३ ॥

(११-१२-१३) शस्त्रास्त्रके तेजसे दैदीप्यमान राजागण इन्द्र सहित देवतागणकी भांति प्रतीत होने लगे । रुचिराश्व, सुकर्मा, मदिराक्ष, दृढ़ाशुग, कृष्णसार, पारद, जीमूत, क्रूरमर्द्दन, काश, कुशाम्बु, वसुमान, कंक, क्रथन, संजय, गुरुमित्र, प्रमाथी, विजृम्भ, सृञ्जय, अक्षम तथा अन्य अनेक बहु प्राक्रमशाली राजागण सिंहल देशमें एकत्र हुए ।

विविशुस्ते रङ्गगताः स्वस्वस्थानेषु पूजिताः ।
वाद्यताण्डवसंहृष्टाश्चित्रमाल्याम्बराधराः ॥ १४ ॥

(१४) चित्र विचित्र माला एवं वस्त्र धारण कर नृत्यगानसे हर्षित राजागण रंगभूमिमें पधारे । आदर सहित पूजित होने पर अपने अपने आसन पर बैठे ।

नानाभोगसुखोद्रिक्ताः कामरामा रतिप्रदाः ।
तानालोक्य सिंहलेशः स्वां कन्यां वरवर्णिनीम् ॥ १५ ॥

(१५) नाना प्रकारके भोग सुखसे आसक्त रमणीय चरित्र, सबको प्रसन्न करने वाले राजागणको देखकर सिंहलदेशके महाराजने श्रेष्ठ वर्णवाली अपनी कन्याको बुलाया ।

गौरीं चन्द्राननां श्यामां तारहारविभूषिताम् ।
मणिमुक्ताप्रवालैश्च सर्व्वाङ्गालङ्कृतां शुभाम् ॥ १६ ॥
किं मायां मोहजननीं किंवा कामप्रियां भुवि ।

रूपलावण्यसम्पन्नान्या न चान्यामिह दृष्टवान् ॥ १७ ॥
स्वर्गे क्षितौ वा पातालेऽप्यहं सर्व्वत्रगो यदि ।
पश्चाद्दासीगणाकीर्णां सखीभिः परिवारिताम् ॥ १८ ॥

(१६-१७-१८) गौरी, चन्द्रमुखी, श्यामा, मणि मोती मूङ्गोंसे सर्वाङ्गालङ्कृत, परम रमणीय हारसे विभूषित न जाने पद्मावती मोहमयी माया है अथवा स्वयं कामदेवकी प्रियाही पृथ्वी पर अवतरी है। मैं स्वर्गलोक, मृत्युलोक, पाताललोक सर्वत्र ही तो जाता हूं किन्तु हे देव! पद्मावतीकी भांति रूप लावण्य सम्पन्न मैंने दूसरी कन्या नहीं देखी। पद्मावतीके पीछे दासीगण लगी थीं और वह सखियोंसे घिरी हुई थी।

दौवारिकैर्वेत्रहस्तैः शासितान्तःपुराद्बहिः ।
पुरोबन्दिगणाकीर्णां प्रापयामास तां शनैः ॥ १९ ॥

(१९) पुरके बाहर पौरियागण हाथमें बेत लिये अन्तःपुरका शासन कर रहे थे। बन्दिगण सभास्थानके अगले भागमें खड़े थे। राजकुमारीने वहांपर धीरे धीरे प्रवेश किया।

नूपुरैः किङ्किणीभिश्च क्वणन्तीं जनमोहिनीम् ।
स्वागतानां नृपाणाञ्च कुलशीलगुणान्बहून् ॥ २० ॥
शृण्वन्ती हंसगमना रत्नमालाकरग्रहा ।
रुचिरापाङ्गभङ्गेन प्रेक्षन्ती लोलकुण्डला ॥ २१ ॥
नृत्यत्कुन्तलसोपानगण्डमण्डलमण्डिता ।
किञ्चित्स्मेरोल्लसद्वक्त्रदशनद्योतदीपिता ॥ २२ ॥
वेदीमध्यारुणक्षौमवसना कोकिलस्वना ।
रूपलावण्यपण्येन क्रेतुकामा जगत्त्रयम् ॥ २३ ॥
समागतां तां प्रसमीक्ष्य भूपाः संमोहिनीं कामविमूढचित्ताः
पेतुः क्षितौ विस्मृतवस्त्रशस्त्राःरथाश्वमत्तद्विपवाहनास्ते ॥२४

(२०-२१-२२-२३-२४) नूपुर और किङ्किणीकी संसारमोहिनी ध्वनि करतीहुई, आयेहुए राजाओंके कुल शील गुण अनेक प्रकार सुनती हुई, हंसगामिनि हाथोंमें रत्नमाला ग्रहण किये हुई, सुन्दर अपाङ्गोंको चलायमान कर कटाक्षसे देखती हुई,

लोलकुण्डला केश कुन्तलके हिलनेसे ग्रीवाकी अपूर्व छवि दर्सानेवाली, मन्दमुसकान विकसितवदन एवं दशन कान्ति प्रभाषित करनेवाली, वेदीमध्य रक्त क्षौमवस्त्र सदृश-वस्त्र धारिणी, कोकिलवैनी, अपने रूप लावण्यसे त्रयलोकको विमोहित करनेवाली, उस मनमोहिनी कामनीको आई हुई देखकर राजागण कामदेवके वशमें हो विह्वलचित्त होगये और उनके वस्त्र, शस्त्र-अस्त्र खुलखुलकर पृथ्वीपर गिरने लगे।

तस्याः स्मरक्षोभनिरीक्षणेन स्त्रियो बभूवुः कमनीयरूपाः।
बृहन्नितम्बस्तनभारनम्राः सुमध्यमास्तत्स्मृतिजातरूपाः २५।

(२५) कामविमोहित होकर काममय नेत्रोंसे देखेजानेपर उनका उसी स्मरण करनेके तुल्य बड़े नितम्बवाली, नम्रस्तनवाली, सुन्दर कटिवाली, कमनीय स्त्रीका रूप हो गया।

बिलासहासव्यसनातिचित्राः कान्ताननाः शोणसरोजनेत्राः।
स्त्रीरूपमात्मानमवेक्ष्य भूपास्तामन्वगच्छन्विशदानुवृत्त्या ॥

(२६) विलास हास्य एवं व्यसन चातुरताको प्राप्त, सुन्दवदनी, कमलनयनी, स्त्री अपनेको देखकर राजागण प्रसन्न हो सहेलीके वेशमें उसके पीछे चलने लगे।

अहं वटस्थः परिधर्षितात्मा पद्माविवाहोत्सवदर्शनाकुलः।
तस्या वचोऽन्तर्हृदि दुःखितायाः श्रोतुं स्थितः स्त्रीत्वमितेषु तेषु
जाहीहि कल्के कमलाविलापं श्रुतं विचित्रं जगतामधीश।
गते विवाहोत्सवमङ्गले सा शिवं शरण्यं हृदये निधाय॥ २८॥
तान्दृष्ट्वा नृपतीन्गजाश्वरथिभिरत्यक्तान्सखित्वं गतान्।
स्त्रीभावेन समन्वितानुगतान्पद्मां विलोक्यान्तिके।
दीना त्यक्तविभूषणा विलिखती पादाङ्गुलैः कामिनी।
ईशं कर्त्तुं निजनाथमीश्वरवचस्तथ्यं हरिं साऽस्मरत्॥२९॥

(२७-२८-२९) पद्माके विवाहका उत्सव देखनेके हेतु मैं निकटवर्ती एक वटवृक्ष-पर बैठा था। राजाओंने स्त्रीरूप धारण किया यह दृश्य देखकर पद्मा हृदयमें अत्यन्त शोककर विलाप करने लगी, मैं उस विलापको श्रवण करनेके लिये बैठारहा था। हे जगत्‌केस्वामिन्! मङ्गलमय विवाहोत्सवके अन्त होजानेपर उस पद्मावतीने मनमें शरणागतवत्सल शिवजीको ध्यानकर जिस प्रकार सन्तापित हुई थी, उसको मैंने सुना है। हे कल्किजी उस करुणामय विलापकी कथाको आप सुनिये।

राजागण मुझको देखकर हाथी, घोड़े, रथोंको छोड़ स्त्रीरूपको धारण करते हुए सहेली बन मेरे निकट चलने लगे यह हृदय पद्माने देखकर दीनभावसे आभूषणोंको उतार पांवकी अङ्गुलीसे पृथ्वीको खोदने लगी आगे महादेवजीके वरदानको सफल करनेकी वासनासे संसारके ईश्वर हरिभगवानको पतिभावसे ध्यान करना आरम्भ किया।

इति श्रीसानुवादे कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये पद्मास्वयंवरे भूपतीनां स्त्रीत्वकथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठो-अध्याय

शुक उवाच ।

ततः सा विस्मितमुखी पद्मा निजजनैर्वृता ।
हरिं पतिं चिन्तयन्ती प्रोवाच विमलां स्थिताम् ॥ १ ॥

(१) शुकने कहा;-"इसके उपरान्त अपनी सहेलियोंसे घिरी हुई विस्मितमुखी पद्मा हरि भगवानको पति रूपमें चिन्तना करती हुई पासमें स्थित विमला नाम्नी सखीसे बोली"।

पद्मोवाच ।

विमले ! किं कृतं धात्रा ललाटे लिखनं मम ।
दर्शनादपि लोकानां पुंसां स्त्रीभावकारकम् ॥ २ ॥

(२) पद्माने कहा;—हे विमले ! विधाताने क्या हमारे भाग्यमें यही लिखा है, कि हमको देखतेही पुरुष स्त्री हो जाय ?

ममापि मन्दभाग्यायाः पापिन्याः शिवसेवनम् ।
विफलत्वमनुप्राप्तं बीजमुप्तं यथोपरे ॥ ३ ॥

(३) हे सखि ! मरुभूमिमें बोए हुए विफल बीजकी भांति मन्दभागिनी पापिनी मेरी भी शिवजीकी उपासना निष्फल हुई।

हरिर्लक्ष्मीपतिः सर्व्वजगतामधिपः प्रभुः ।
मत्कृतेऽप्यभिलाषं किं करिष्यति जगत्पतिः ॥ ४ ॥

(४) लक्ष्मीपति हरि भगवान सर्व्व जगतके अधिपति और स्वामी हैं, मैं उनको

अपना पति बनानेकी अभिलाषा करूं भी तो क्या वह जगत्पति मेरे पति होनेकी इच्छा कर सकते हैं ?

यदि शम्भोर्वचो मिथ्या यदि विष्णुर्न मां स्मरेत् ।
तदाहमनले देहं त्यक्ष्यामि करिभाविता ॥ ५ ।

(५) यदि महादेवजीका वचन मिथ्या हो जाय, यदि विष्णु भगवान मुझको नहीं स्मरण करें, तो मैं श्रीहरिभगवानको ध्यान करते करते अग्निकुण्डमें इस शरीर को समर्पण कर दूंगी ।

क्व चाहं मानुषी दीना क्वास्ते देवो जनार्द्दनः ।
निगृहीता विधात्राहं शिवेन परिवञ्चिता ॥ ६ ॥

(६) कहां मैं दीन मनुष्य जाति स्त्री और कहां वे नारायण देव, मानवी स्त्री और नारायणके विवाहकी बात स्मरण करनेसे जान पड़ता है, मानो विधाता मेरे विमुख हैं, तभी शिवजी द्वारा मैं ठगी गई हूं ।

विष्णुना च परित्यक्ता मदन्या कात्र जीवति ॥ ७ ॥

(७) विष्णुभगवानसे भी परित्याग किये जानेपर मेरे अतिरिक्त क्या दूसरा कोई यहां जीवित रहता ?

इति नाना विलापिन्या वचनं शोचनाश्रयम् ।
पद्मायाश्चारुचेष्टायाः श्रुत्वायातस्तवान्तिके ॥ ८ ॥

(८) चारु चरित्रा पद्माके नानाप्रकारसे विलाप करते हुए शोकातुर वचनोंको श्रवणकर मैं आपके निकट आया हूं ।

शुकस्य वचनं श्रुत्वा कल्किः परमविस्मितः ।
तं जगाद पुनर्याहि पद्मां बोधयितुं प्रियाम् ॥ ९ ॥

(९) शुकके इस प्रकार वचन श्रवणकर अत्यन्त विस्मित कल्किजीने, उस शुकसे कहा, कि हमारी प्यारी पद्माको बोधदेनेके लिये तुम उस सिंहलदेश फिर जाओ ।

मत्सन्देशहरो भूत्वा यद्रूपगुणकीर्त्तनम् ।
श्रावयित्वा पुनः कीर ! समायास्यसि बांधव ॥ १० ॥

(१०) हे शुक ! तुम हमारा सन्देशा लेजानेवाले होकर हमारे रूपगुणोंके वृत्तान्त प्यारी पद्मा‌को श्रवण कराकर, हे बान्धव ! हे विहंगमा तुम फिर चले आओ !

सा मे प्रिया पतिरहं तस्या दैवविनिर्मितः ।
मध्यस्थेन त्वया योगमावयोश्च भविष्यति ॥ ११ ॥

(११) पद्मा हमारी प्यारी पत्नी है, हम पद्माके पति हैं; यह संयोग विधाताने ही स्थित कर रखा है। तुह्मारी मध्यस्थतामें यह परस्परका हमारा योग सम्पन्न होगा।

सर्व्वऽज्ञोसि विधिज्ञोऽसि कालज्ञोऽसि कथामृतैः ।
तामाश्वास्य ममाश्वासकथास्तस्याः समाहर: ॥ १२ ॥

(१२) तुम सर्वज्ञ हो, तुम नियमज्ञ हो, तुम कालज्ञ हो, सो निज वचन रूपा सुधाधारसे उसको समझाकर मेरा भरोसेका बचन देकर समाधान कर आओ।

इति कल्केर्वचः श्रुत्वा शुकः परमहर्षितः ।
प्रणम्य तं प्रीतमनाः प्रययौ सिंहलं त्वरन् ॥१३॥

(१३) कल्किजीके यह वचन सुन अत्यन्त आनन्दित शुकने उनको प्रणाम कर प्रसन्न चित्त सिंहलदेशको शीघ्रतासे गया।

खगः समुद्रपारेण स्नात्वा पीत्वामृतं पयः ।
बीजपूरफलाहारो ययौ राजनिवेशनम् ॥ १४ ॥

(१४) आगे उस पक्षीने समुद्रके पार स्नान कर, सुधाके समान जलको पी, बीजौरेके फलको खा, राजभवनमें प्रवेश किया।

तत्र कन्यापुरं गत्वावृक्षे नागेश्वरे वसन् ।
पद्मालोक्य तां प्राह शुको मानुषभाषया ॥ १५ ॥

(१५) वहां कन्याके निवासस्थान अन्तःपुरमें पँहुचकर नागकेशरके वृक्षपर बैठे हुए शुकने उस पद्माको देखकर मनुष्य भाषामें कहा।

कुशलं ते वरारोहे ! रूपयौवनशालिनी ।
त्वां लोलनयनां मन्ये लक्ष्मी रूपामिवापराम् । ॥ १६ ॥

(१६) हे वरारोहे ! तुम कुशलसे तो हो ! हे रूपयौवनशालिनी ! तुम्हारे चंचल नेत्रोंसे मालूम होताहै, कि तुम दूसरी लक्ष्मी हो।

पद्मानना पद्मगन्धां पद्मनेत्रां कराम्बुजे।
कमलं कालयन्तीं त्वां लक्षयामि परां श्रियम् ॥ १७ ॥

(१७) तुम्हारा मुखमण्डल पद्मकी भाँति है, तुम्हारे शरीरमें पद्मकी समान गंध है, तुम्हारे नेत्र पद्मके तुल्य हैं, तुम्हारे हाथ पद्मके समान हैं, तुम्हारे हाथमें पद्म भी है, इन्हीं लक्षणोंसे तुम दूसरी लक्ष्मी जान पड़ती हो।

किं धात्रा सर्व्वजगतां रूपलावण्यसम्पदाम्।
निर्मितासि वरारोहे! जीवानां मोहकारिणि! ॥ १८ ॥

(१८) हे वरारोहे! क्या विधाताने समस्त संसारकी रूपलावण्यराशि एकत्र-कर सर्व्व प्राणियोंको मोहनेवाली तुम्हें बनाया है।

इति भाषितमाकर्ण्य कीरस्यामितमद्भुतम्।
हसन्ती प्राह सा देवी तं पद्मा पद्ममालिनी ॥ १९ ॥

(१९) शुक पक्षीके अत्यन्त अद्भुत वचन सुनकर पद्ममाल धारणकिये हुए, वह पद्मा हंसकर बोली।

कस्त्वं कस्मादागतोऽसि कथं मां शुकरूपधृक्।
देवो वा दानवो वा त्वमागतोऽसि दयापरः ॥ २० ॥

(२०) तुम कौन हो? कहांसे आये हो? तुम शुकरूपधारी देवता हो! या दैत्य हो? तुम दयावान होकर किस निमित्त हमारे पास आये हो।

शुक उवाच।

सर्व्वज्ञोऽहं कामगामी सर्व्वशास्त्रार्थतत्त्ववित्।
देवगन्धर्व्वभूपानां सभासु परिपूजितः ॥ २१ ॥

(२१) शुक बोला,—मैं सर्वज्ञ हूं, मैं सर्व्वशास्त्रोंके तत्वोंको जाननेवाला हूं, मैं इच्छानुगामी हूं, देवसभा, गन्धर्व्वसभा, एवं राजसभामें हमारा भलीभांति सम्मान और आदर है।

चरामि स्वेच्छया खे त्वामीक्षणार्थमिहागतः।
त्वामहं हृदि संतप्तां त्यक्तभोगां मनस्विनीम् ॥ २२ ॥

(२२) आकाशमें निज इच्छानुसार घूमा करता हूं। हृदयमें सन्ताप, भोग सुखसे विमुख, मनस्विनी तुमको देखनेके निमित्त मैं यहां आया हूं।

हास्यालाप-सखीसङ्ग-देहाभरण-वर्जिताम् ।
विलोक्याहं दीनचेताः पृच्छामि श्रोतुमीरितम् ।
कोकिलालाप-सन्लाप-जनकं मधुरं मृदु ॥ २३ ॥

(२३) हास्य, परिहास, सखीसङ्ग एवं शरीरके आभूषणोंको त्यागे हुए, तुमको देखकर मैं दीनचित्त हो कोयलके बोलसे भी मधुर और मृदु तुम्हारे वचन श्रवण करनेके निमित्त संतापका कारण पूछता हूं।

तव दन्तौष्ठजिह्वाग्रलुलिताक्षरपङ्क्तयः ।
यत्कर्णकुहरे मग्नास्तेषां किं वर्ण्यते तपः ॥ २४ ॥

(२४) तुम्हारे दांत अधर एवं जिह्वाग्रसे निकली हुई अक्षरोंकी पंक्ति जिसके कर्णगोचर हो, उसकी तपस्याका वर्णन कहांतक किया जाय।

सौकुमार्यं शिरीषस्य क्व कान्तिर्वा निशाकरे ।
पीयूषं क्व वदन्त्येवानन्दं ब्रह्मणि ते बुधाः ॥ २५ ॥

(२५) तुम्हारे सामने शिरषके फूलोंकी सुकुमारता क्या वस्तु है अथवा चंद्रमाकी प्रभाही तुम्हारे सम्मुख किस कामकी है और पण्डितगण जिस सुधारस ब्रह्मानन्दकी प्रशंसा किया करते हैं, वहभी तुम्हारे निकट क्या है।

तव बाहुलताबद्धा ये पास्यन्ति सुधाननम् ।
तेषां तपोदानजपैर्व्यर्थैः किं जनयिष्यति ॥ २६ ॥

(२६) जो पुण्यवान पुरुष तुम्हारे कोमल बाहुरूपी पाशमें बंधकर तुम्हारे चंद्रवदनकी अमृतधारको पियेगा, उनको तप, दान, जपादि करनेसे क्या प्रयोजन है।

तिलकालकसंमिश्रं लोलकुण्डलमण्डितम् ।
लोलेक्षणोल्लसद्वक्त्रं पश्यतां न पुनर्भवः ॥ २७ ॥

(२७) हे सुन्दरि! तिलक अलक संयुक्त चंचल कुंतल मण्डित, विलोल लोचनसे शोभित तुम्हारे सुन्दर वदनको देखनेसे फिर संसारमें जन्म नहीं होगा।

वृहद्रथसुते! स्वाधिं वद भामिनि यत्कृते ।
तपःक्षीणामिव तनूं लक्षयामि रुजं विना ।
कनकप्रतिमा यद्वत् पांसुभिर्मलिनीकृता ॥ २८ ॥

(२८) हे वृहद्रथकी पुत्रि! कहो, इस समय तुम्हारे मानसिक दुःखका क्या

कारण है? हे भामिनि! तुम्हारा यह शरीर विना रोगके तपसे क्षीण हुएकी समान दीखता है। रजसे मलिन हुई स्वर्ण प्रतिमाकी भांति तुम्हारा यह शरीर मलिन हो गया है।

पद्मोवाच।

किं रूपेण कुलेनापि धनेनाभिजनेन वा।
सर्व्वं निष्फलतामेति यस्य दैवमदक्षिणम्॥ २९॥

(२९) पद्मा बोली,–रूपसे क्या, कुलसे क्या, धनसे क्या, ऊंचे वंशमें जन्मादिसे ही क्या मतलब है, अर्थात् सभी निष्फल हैं, जिसके दैव प्रतिकूल हैं।

शृणु कीर समाख्यानं यदि वा विदितं तव।
बाल्य-पौगण्ड-कैशोरे हरसेवां करोम्यहम्॥ ३०॥

(३०) हे कीर! हमारा वृत्तान्त तुम न जानते हो तो सुनो मैंने आपौगण्ड, बाल्य एवं किशोर अवस्थामें शिवजीकी पूजाकी थी।

तेन पूजाविधानेन तुष्टो भूत्वा महेश्वरः।
वरं वरय पद्मे! त्वमित्याह प्रियया सह॥ ३१॥

(३१) उस पूजासे सन्तुष्ट होकर पार्वती सहित शिवजीने कहा था, कि हे पद्मे! तुम वर मांगो।

लज्जयाधोमुखीमग्रे स्थितां मां वीक्ष्य शङ्करः।
प्राह ते भविता स्वामी हरिर्नारायण प्रभुः॥ ३२॥

(३२) आगे लज्जासे नीचेको मुख किये हुए मुझे खड़ी हुई देखकर शिवजीने कहा था, कि हरि भगवान तुह्मारे स्वामी होंगे।

देवो वा दानवो वान्यो गन्धर्व्वो वा तवेक्षणात्।
कामेन मनसा नारी भविष्यति न संशयः॥ ३३॥

(३३) चाहे देव हो चाहे दानव हो, चाहे गन्धर्व हो, चाहे कोई और हो, जो कोई तुमको सकाम हृदयसे देखेगा वह तत्काल स्त्री हो जायगा, इसमें सन्देह नहीं है।

शरीरकी अवस्था। जन्मसे पांच वर्ष तक शैशवावस्था है। छः वर्षसे १० वर्ष तक बाल्यावस्था है। ११ वर्षसे १९ वर्ष तक किशोर अवस्था, १७ वर्षसे ३५ वर्ष तक यौवनावस्था है, ३६ से ५० वर्ष तक प्रौढ़ावस्था है, ५१ से ७० वर्ष तक वृद्धावस्था है, ७१ से अगाड़ी अत्यन्त वृद्धावस्था है।

पौगण्डावस्था। पांच वर्षसे लेकर १६ वर्ष तक पौगण्डावस्था है।

इति दत्त्वा वरं सोमः प्राह विष्णवर्च्चनं यथा ।
तथाहं ते प्रवक्ष्यामि समाहितमनाः शृणु ॥ ३४ ॥

(३४) इस प्रकार वर देकर भगवान महेश्वरने विष्णु पूजाका प्रकरण जिस प्रकार बतला दिया है, वह भी मैं तुमसे कहती हूं, तुम सावधान चित्त होकर सुनो।

एताः सख्यो नृपाः पूर्व्वमाहृता ये स्वयंवरे ।
पित्रा धर्म्मार्थिना दृष्ट्वा रम्यां मां यौवनान्विताम् ॥ ३५ ॥

(३५) यह जो सखियां हैं, यह सब पहले राजा थे, हमारे पिताने हमको यौवनकी सीमासे उत्तीर्ण एवं रमणीय आकारसे युक्त देख धर्म्मकी रक्षा करनेके अभिप्रायसे इन सब राजाओंको हमारे स्वयम्बर स्थानमें एकत्र किया था।

स्वागतास्ते सुखासीना विवाहकृतनिश्चयाः ।
युवानो गुणवन्तश्च रूपद्रविणसम्मताः ॥ ३६ ॥

(३६) यह लोग, युवा, गुणवान रूपवान एवं अतुल ऐश्वर्यसे युक्त थे। यह सब मेरे साथ विवाह करनेकी कामना निश्चित करके आये थे और स्वयम्बर भूमिमें सुखसे बैठे थे।

स्वयंवरगतां मां ते विलोक्य रुचिरप्रभाम् ।
रत्नमालाश्रितकरां निपेतुः काममोहिताः ॥ ३७ ॥

(३७) सुन्दर प्रभा सम्पन्न, हाथमें रत्नमाल ग्रहण किये हुए स्वयम्बर भूमिमें आई हुई मुझको देखकर कामसे मोहित राजागण पृथ्वी पर गिर पड़े।

तत उत्थाय संभ्रान्ताः संप्रेक्ष्य स्त्रीत्वमात्मनः ।
स्तनभारनितम्बेन गुरुणा परिणामिताः ॥ ३८ ॥

(३८) उपरान्त घवड़ाकर जब वे लोग उठे तो स्तन भार एवं गुरु नितम्बादि सहित स्त्री स्वरूपमें अपनेको परिणत पाया।

ह्रिया भिया च शत्रूणां मित्राणामतिदुःखदम् ।
स्त्रीभावं मनसा ध्यात्वा मामेवानगताः शुक ! ॥ ३९ ॥

(३९) हे शुक ! इसके उपरान्त वे लोग स्त्री भावको मनमें ध्यानकर शत्रु मित्रादि सबकी लज्जासे अत्यन्त दुःखित हो मेरे ही साथ होलिये।

पारिचर्य्या हररता: सख्य: सर्व्वगुणान्विता: ।
मया सह तपोध्यान पूजा: कुर्व्वन्ति सम्मता: ॥ ४० ॥

(४०) सर्व्वगुणसम्पन्न यह सब लोग हमारी सखी हो हमारे साथ विष्णुजीकी पूजा, विष्णुजीका ध्यान एवं तप करते हैं ।

तदुदितमिति संनिशम्य कीर: श्रवणसुखं निजमानसप्रकाशम्।
समुचितवचनै: प्रतीक्ष्य पद्मां मुरहरयजनं पुन: प्रचष्टे॥४१॥

(४१) अपनी मानसिक इच्छाके अनुरूप श्रवण सुखदाई यह वचन सुनकर शुकने कथाके उचित प्रसंगसे पद्माको संतुष्ट किया तदुपरान्त विष्णुभगवानकी पूजा विषयक बातको उठाया ।

इति सानुवादे कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्यशुकपद्मासम्वादे षष्ठोऽध्याय: ६ ।

सप्तम-अध्याय ।

शुक उवाच ।

विष्णवर्च्चनं शिवेनोक्तं श्रोतुमिच्छाम्यहं शुभे ।
धन्यासि कृतपुण्यासि शिवशिष्यत्वमागता ॥ १ ॥

(१) शुकने कहा,–हे कल्याणि ! महादेवजीने जो विष्णुपूजाकी पद्धति तुमसे कही है, उसके सुननेकी मेरी इच्छा है । हे पद्मावती तुम धन्य हो, तुम पुण्य संचित किये हो, तुम शिवकी शिष्या हुई है ।

अहं भाग्यवशादत्र समागम्य तवान्तिकम् ।
शृणोमि परमाश्चर्य्यं कीराकारनिवारणम् ॥ २ ॥

(२) मैं भाग्यसेही यहां तुम्हारे समीप पहुंचा हूं । अब मैं तुमसे पक्षी शरीरको निवारण करनेवाली परमाश्चर्य्य विष्णुभगवानकी पूजापद्धति सुनूंगा ।

भगवद्भक्तियोगञ्च जपध्यानविधिं मुदा ।
परमानन्द-सन्दोह-दान-दक्षं श्रुतिप्रियम् ॥ ३ ॥

(३) जिससे भगवानके प्रति भक्ति हो, जिस प्रकार विष्णु भगवानका ध्यान एवं जप करना विधिसंगत है, इस विष्णु पूजाप्रकरणमें उसकी विधि है । यह पूजा-प्रकरण सुननेमें सुन्दर एवं परमानन्दराशिका दाता है ।

पद्मोवाच

श्रीविष्णोरर्च्चनं पुण्यं शिवेन परिभाषितम् ।
यच्छ्रद्धयानुष्ठितस्य श्रुतस्य गदितस्य च ॥ ४ ॥

(४) पद्मा बोली,-- शिवजीकी कही हुई विष्णुपूजापद्धति अत्यन्त पवित्र है इसको श्रद्धापूर्वक श्रवण करने, अनुष्ठान करने एवं कहनेसे :—

सद्यः पापहरं पुंसां गुरुगोब्रह्मघातिनाम् ।
समाहितेन मनसा शृणु कीर यथोदितम् ॥ ५ ॥

(५) गोहत्या गुरुहत्या एवं ब्रह्महत्यासे उत्पन्न हुए पाप शीघ्र विनाश होते हैं। हे विहंग ! महादेवजीने विष्णुभगवानकी पूजाको जिस प्रकार वर्णन किया है, मैं उसको तुमसे कहती हूं, तुम सावधान चित्त होकर सुनो ।

कृत्वा यथोक्तकर्म्माणि पूर्व्वाह्णे स्नानकृच्छुचिः ।
प्रक्षाल्य पाणी पादौ च स्पृष्ट्वापः स्वासने वसेत् ॥ ६ ॥

(६) प्रातःकाल स्नानकर नित्यकर्म समाप्त करनेके पश्चात पवित्र हो, हांथपांव धो जल स्पर्शकर मनुष्य अपने आसनपर बैठे ।

प्राचीमुखः संयतात्मा साङ्गन्यासं प्रकल्पयेत् ।
भूतशुद्धिं ततोऽर्घ्यस्य स्थापनं विधिवच्चरेत् ॥ ७ ॥

(७) फिर आत्माको वशमें कर पूर्वमुख अंगन्यास भूतशुद्धि एवं विधिपूर्वक अर्घ्य स्थापन करें ।

ततः केशवकृत्यादिन्यासेन तन्मयो भवेत् ।
आत्मानं तन्मयं ध्यात्वा हृदिस्थं स्वासने न्यसेत् ॥ ८ ॥

(८) तदुपरान्त केशव कृत्यादि न्याससे तन्मयहो अपनेको विष्णुमय हृदयमें स्थित ध्यानकर मनसे कल्पित किये हुए आसनपर स्थापित करे ।

पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः स्नानवासोविभूषणैः ।
यथोपचारैः संपूज्य मूलमन्त्रेण देशिकः ॥ ९ ॥

(९) पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय एवं स्नानीय जल, वस्त्र, भूषणादि देकर यथोचित उपचारसे देशिक मूल मंत्रसे पुजा करे ।

ध्यायेत्पादादिकेशान्तं हृदयाम्बुजमध्यगम् ।
प्रसन्नवदनं देवं भक्ताभीष्टफलप्रदम् ॥ १० ॥

(१०) अनन्तर भक्तोंको मनवांछित फलदेनेवाले, हृदयकमलमें विहार करनेवाले प्रसन्न मुख भगवानको श्रीचरणसे लेकर केशान्ततक ध्यान करें।

ओं नमो नारायणाय स्वाहा ।

योगेन सिद्धविबुधैः परिभाव्यमानं लक्ष्म्यालयं तुलसिकाञ्चितभक्तभृङ्गम् । प्रोत्तुङ्गरक्तनखरांगुलिपत्रचित्रंगङ्गारसं हरिपदाम्बुजमाश्रयेऽहम् ॥ ११ ॥

गुम्फन्मणिप्रचयघट्टितराजहंससिञ्जत्सुनूपुरयुतं पदपद्मवृन्तम् । पीताम्बराञ्चलविलोलवलत्पताकं स्वर्णत्रिवक्रवलयञ्च हरेः स्मरामि ॥ १२ ॥

जंघे सुपर्णगलनीलमणिप्रवृद्धे शोभास्पदारुणमणिद्युतिचंचुमध्ये । आरक्तपादतललम्बनशोभमाने लोकेक्षणोत्सवकरे च हरेः स्मरामि ॥ १३ ॥

ते जानुनी मखपतेर्भुजमूलसङ्गरङ्गोत्सवावृततडिद्वसने विचित्रे । चञ्चत्पतत्रमुखनिर्गतसामगीतविस्तारितात्मयशसी च हरेः स्मरामि ॥ १४ ॥

विष्णोः कटिं विधिकृतान्तमनोजभूमिं जीवाण्डकोषगणसङ्गदुकूलमध्याम् । नानागुणप्रकृतिपीतविचित्रवस्त्रांध्यायेन्निबद्धवसनां खगपृष्ठसंस्थाम् ॥१५॥

शातोदरं भगवतस्त्रिवलिप्रकाशमावर्त्त नाभिविकसद्विधिजन्मपद्मम् । नाडीनदीगणरसोत्थसितान्त्रसिन्धुंध्यायेऽण्डकोषनिलयं तनुलोमरेखम् ॥१६॥

वक्षः पयोधितनयाकुचकुङ्कुमेन हारेण कौस्तुभमणिप्रभया विभातम् । श्रीवत्सलक्ष्म हरि च-

न्दनजप्रसूनमालीचितं भगवतः सुभगं स्मरामि ॥ १७ ॥

बाहू सुवेशसदनौ वलयाङ्गदादिशोभास्पदौ दुरित दैत्यविनाशदक्षौ । तौ दक्षिणौ भगवतश्च गदासुनाभतेजोजितौ सुललितौ मनसा स्मरामि ॥ १८ ॥

वामौ भुजौ मुररिपोर्धृतपद्मशंखौ श्यामौ करीन्द्रकरवन्मणिभूषणाढ्यौ । रक्ताङ्गुलिप्रचयचुम्बितजानुमध्यौ पद्मालयाप्रियकरौ रुचिरौ स्मरामि ॥ १९ ॥

कण्ठं मृणालममलं मुखपङ्कजस्य लेखात्रयेणवनमालिकया निवीतम् । किंवा विमुक्तिवसमन्त्रकसत्फलस्य वृन्ते चिरं भगवतः सुभगं स्मरामि ॥ २० ॥

रक्ताम्बुजं दशनहासविकाशरम्यं रक्ताधरौष्ठवरकोमलवाक्सुधाढ्यम् । सन्मानसोद्भवचलेक्षणपत्रचित्रं लोकाभिराममलञ्च हरेः स्मरामि ॥ २१ ॥

शूरात्मजावसथगन्धविदंसुनाशं भ्रू पल्लवं स्थितिलयोदयकर्म्मदक्षम् । कामोत्सवञ्च कमलाहृदयप्रकाशं सञ्चिन्तयामि हरिवक्रविलासदक्षम् ॥ २२ ॥

कर्णौं लसन्मकरकुण्डलगण्डलोलौ नानादिशाञ्च नभसश्च विकासगेहौ । लोलालकप्रचयचुम्बनकुञ्चिताग्रौ लग्नौ हरेर्मणिकिरीटतटे स्मरामि ॥ २३ ॥

भालं विचित्रतिलकं प्रियचारुगन्धगोरोचनारचनया ललनाक्षिसख्यम् । ब्रह्मैकधाममणिकान्तकिरी-

---

कौस्तुभमणि । देवताओंके समुद्र मथनसे अनेक पदार्थोंके अतिरिक्त यह कौस्तुभमणि भी प्राप्त हुई थी । इस मणिमें सूर्यके सदृश किरण प्रकाश है । भगवान विष्णुजीने इसको हृदयमें धारण किया है ।

श्रीवत्स । कौस्तुभकी भांति एक प्रकारकी मणि है । विष्णु भगवान इसको धारण किये हैं ।

हरिचन्दन । मन्दार, पारिजातक, सन्तान, कल्पवृक्ष और पुंसि यह पांच वृक्ष सुरतरु हैं । पुंसिको ही हरिचन्दन कहते हैं ।

अङ्गद । अनन्तकी भांति बाहु भूषण है ।

गदा चक्र । लक्ष्मीपति विष्णुभगवानके गदा चक्रादि शस्त्रास्त्र हैं । विष्णुभगवान कौमुदी गदा, नन्दकखड्ग, पाञ्चजन्य शङ्ख, सुदर्शन चक्र एवं कौस्तुभमणि धारण किये हैं ।

ट जुष्टं ध्यायेन्मनोनयनहारकमीश्वरस्य ॥ २४ ॥
श्रीवासुदेवचिकुरं कुटिलं निबद्धं नानासुगन्धिकुसुमैः स्वजनादरेण । दीर्घं रमाहृदयगाशमनं धुनन्तं ध्यायेऽम्बुवाहरुचिरं हृदयाब्जमध्ये ॥ २५ ॥
मेघाकारं सोमसूर्य्यप्रकाशं सुभ्रून्नसं चक्रचापैकमानम् । लोकातीतं पुण्डरीकायताक्षं विद्युच्चैलञ्चाश्रयेऽहं त्वपूर्वम् ॥ २६ ॥
दीनं हीनं सेवया वेदवत्या पापैस्तापैः पूरितं मे शरीरम् । लोभाक्रान्तं शोकमोहाधिविद्धं कृपादृष्ट्या पाहि मां वासुदेव ॥ २७ ॥

(११) ध्यानके समाप्त होनेपर "ॐ नमो नारायणाय स्वाहा" कहकर यह स्तोत्र पाठ करे,—योगसे सिद्ध हुए पण्डितगण जिनका सदा ध्यान करते हैं, जो लक्ष्मीके आश्रय हैं, जिनके भक्त भृंगरूप तुलसीसे व्याप्त रहते हैं, जिनके अत्यन्त रक्तवर्ण कमलके सदृश नखयुक्त अंगुलि पत्रोंसे गंगाजल झर रहा है, ऐसे कमलचरण नारायणका आश्रय ग्रहण किया ।

(१२) जिन श्री चरणोंमें गुथे हुए मणिमालासे बने हँसकी बोलीके समान शब्द करनेवाले सुन्दर नूपुर विराजमान हैं, जिन चरणोंमें पीताम्बरका अंचल भाग चंचल पताकाकी भांति जान पड़ता है, जिन चरणोंमें सुवर्णमय त्रिवक्र नामक वलय विभूषण बंधा है, उन कमलरूप चरणारविन्दका स्मरण करता हूं ।

(१३) गरुड़जीके कण्ठभूषण नीलकान्त मणिकी प्रभासे जिन जंघाओंकी कान्ति बढ़ी है, जिन जंघाओंके मध्यदेशमें परम रमणीय अरुणमणिके समान लाल कान्तियुक्त गरुड़जीकी चोंच शोभायमान है, जिन जंघाओंके नीचे लाल तलुए विलम्बित होकर विराजमान हैं, संसारके लोचन रंजन करनेवाले हरि भगवानकी उन जंघाओंको मैं स्मरण करता हूं ।

(१४) चंचल गरुड़जी सामगानकर जिनका यश गाते हैं, उत्सवके समयमें कंधेमें चित्र विचित्र रंगके धारण किये हुए वस्त्रोंकी विद्युतछटासे रंगीहुई श्रीहरि भगवानकी उन दोनों जंघाओंको स्मरण करता हूं ।

(१५) जो कटि ब्रह्मा, मृत्युपति एवं कन्दर्पका आधार है, जो त्रिगुणमय प्रकृतरूप पीतादि विचित्र वस्त्रोंसे ढकी रहती है, जो जीवोंके बीजका आधार है, जहांपर दुपट्टा शोभापाता है, गरुड़जीकी पीठपर स्थित विष्णु भगवानकी उस कटिका ध्यान करता हूं ।

(१६) जिस उदरमें त्रिवलि शोभा पारही हैं, जिस उदरके नाभि सरोवरमें ब्रह्माका जन्मस्थान कमल खिल रहा है, जिस उदरमें नाड़ीरूप नदियोंके रससे अन्न रूप समुद्र उल्लासित होरहा है, जो उदर ब्रह्माण्डका आधार है, जिसमें छोटे छोटे लोमरेख शोभायमान हैं, विष्णु भगवानके ऐसे क्षीण उदरका मैं स्मरण करता हूं।

(१७) जिस हृदयमें पयोधि-कुमारी लक्ष्मीजीका कुचकुंकुम लगरहा है, जो कण्ठ हार एवं कौस्तुभमणिकी प्रभासे दीप्तमान होरहा है, जिस हृदयमें श्रीवत्स चिन्ह शोभायमान होरहा है, जिस हृदयमें हरिचन्दन पुष्पकी माला डोल रही है, भगवानके परम मनोहर उस हृदयका मैं स्मरण करता हूं।

(१८) जिन सुन्दर वेशवाली भगवद्रूप दोनों भुजाओंमें वलय अंगदादि उत्तम भूषण शोभायमान हो रहे हैं, जिन भुजाओंके विक्रमसे बहुतसे दानव विनाशको प्राप्त हुए हैं, जिन भुजाओंकी प्रभासे गदा चक्रादिका तेज मलीन हुआ है, मनही मन भगवानकी सुललित उन दाहिन दो भुजाओंका ध्यान करता हूं।

(१९) जिन दो बांई बाहोंमें शंख पद्म धारित हैं, हाथीकी शुण्डके समान सांवले रंगवाली जिन दोनों बाहोंमें मणिमय भूषण पहिने हैं, लालवर्ण अङ्गुलियें जो जानुको चुंबन करती हैं, कमलपर बैठीहुई पद्माके मनको प्रसन्न करनेवाली श्रीविष्णु भगवानकी उन दोनों सुन्दर बाहोंका स्मरण करता हूं।

(२०) जो कण्ठ निर्मल मृणालस्वरूप है, जिस कण्ठमें मुख पङ्कजकी तीनरेखा एवं वनमाला विराजमान होरही है, जो कण्ठ मुक्तिवस मन्त्रके सत् फलका गुच्छा-रूप है, श्रीविष्णु भगवानके उस सुन्दर कण्ठका मैं निरन्तर स्मरण करता हूं।

(२१) रक्त कमलके सदृश, रक्तवर्ण अधरोंके बिच हंसते हुए विकाशित दशन, शोभा सहित कोमल वचन, सुधासे मनको प्रसन्न करनेवाले चंचल नयन, पत्रचित्रित लोगोंके मनको रंजन करनेवाले श्रीविष्णु भगवानके मुखकमलका स्मरण करता हूं।

(२२) जिनसे यमराजके गृहकी गन्ध भी नहीं सूंघनी पड़ती, जिनके निकट नासिका शोभापाती है जिनसे जगतकी सृष्टि स्थिति एवं प्रलय होती है जिनसे मदन महोत्सव प्रगट होता है, जिनके देखनेसे लक्ष्मीजीका हृदय प्रफुल्ल होता है, श्रीवि-ष्णुभगवानके मुखकमलपर जो शोभायमान हैं, उन भृकुटि पत्रोंका मैं स्मरण करता हूं।

(२३) जो गण्डस्थलमें चंचल मकराकृत कुण्डल शोभित हैं, जो अनेक दिशा एवं आकाशमण्डलको प्रकाशित करते हैं, जो अग्रभागमें चलायमान अलक समूहके स्पर्शसे कुछ सिकुड़े हुए मालूम होते हैं, जो मणिमय किरीटके किनारेमें लगे हुए हैं, श्री विष्णुभगवानके उन श्रवणोंका मैं स्मरण करता हूं।

(२४) जिस ललाटमें मनोहर सुन्दर गन्धयुक्त गोरोचनसे खिचाहुआ विचित्र तिलक ललना नेत्रोंसे बन्धुता प्रगट करता है, जिसपर ब्रह्मभवन रूप ललाटमें मणि-मय मुकुटकी मणिप्रभा प्रकाशित होरही है, मनोहर लोचन रंजन श्रीविष्णुभग-वानके उस ललाटका मैं स्मरण करता हूं।

(२५) आत्मीय भक्त जनोंने आदरपूर्वक अनेक प्रकारके सुगन्धित पुष्पों द्वारा जिन कुटिल केशोंकी वेणी बनाकर बांध दी है, जिन हिलते हुए केशोंकी सुन्दरतासे कमलासन कमलाका मदनविकार शान्त होजाता है, मैं अपने हृदयकमलमें श्रीविष्णु भगवानके उन नीले बादलके समान दीर्घ रुचिर केशपाशका ध्यान करता हूं।

(२६) मेघाकार चन्द्रसूर्यके सदृश आकारवाले, इन्द्र धनुषके समान भौंहवाले, विद्युतप्रकाशवत् अम्बर धारण करनेवाले, लोकातीत अपूर्वमूर्तिवाले, विष्णुभगवानकी मैं आश्रय ग्रहण करता हूं।

(२७) मैं अति दीन वेदविहित सेवासे हीन हूं। मेरा शरीर पापतापसे भरा हुआ है। मैं लोभसे घिरा एवं शोक मोहादि मानसिक व्यथासे बँधा हूं। हे वासुदेव भगवान! अपनी कृपादृष्टिसे मेरी रक्षा करो।

ये भक्त्याद्यां ध्यायमानां मनोज्ञां व्यक्तिं विष्णोः
षोडशश्लोकपुष्पैः। स्तुत्वा नत्वा पूजयित्वा विधिज्ञाः
शुद्धा मुक्ता ब्रह्मसौख्यं प्रयान्ति ॥ २८ ॥

(२८) जो इस विधिके जाननेवाले मनुष्य भक्ति पूर्वक श्रीविष्णु भगवानकी इस आद्य मनोहर मूर्तिका ध्यानकरके षोडश श्लोकरूप फूलोंसे स्तुति नमस्कार एवं पूजन करते हैं, वह शुद्ध मुक्त होकर ब्रह्मानन्दको भोग करते हैं।

पद्मेरितमिदं पुण्यं शिवेन परिभाषितम्।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं स्वस्त्ययनं दरम् ॥ २९ ॥

(२९) पद्माका कहा हुआ यह शिवप्रोक्त स्तोत्र अत्यन्त पवित्र है एवं धन, यश, आयु, स्वर्गफलका देनेवाला परम मङ्गलदाई है।

पठन्ति ये महाभागास्ते मुच्यन्तेंऽहसोऽखिलात्
धर्म्मार्थकाममोक्षाणां परत्रेह फलप्रदम् ॥ ३० ॥

(३०) यह स्तोत्र परलोक एवं इस लोकमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप फलका देनेवाला है। इसको जो भाग्यवानगण पढ़ें गे, वे समस्त पापोंसे छूट जायँगे।

इति सानुवादे कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये हरिभक्ति
विवरणंनाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

समाप्तश्चायं प्रथमांशः।

द्वितीयांशः ।

प्रथम-अध्याय

सूत उवाच ।

इति पद्मावचः श्रुत्वा कीरो धीरं सतां मतः ।
कल्किदूतः सखीमध्ये स्थितां पद्मामथाब्रवीत् ॥ १ ॥

(१) सूतजी बोले,—पद्माके यह बचन सुनकर साधुगणादृत कल्किजीका दूत विज्ञानी शुक सखियोंके मध्य स्थित पद्मासे कहा ।

वद पद्मे साङ्गपूजां हरेरद्भुतकर्म्मणः ।
यामास्थाय विधानेन चरामि भुवनत्रयम् ॥ २ ॥

(२) हे पद्मे! अद्भुत कर्म्मा हरि भगवानकी पूजा सब अङ्गोंके साथ बर्णन कीजिये। मैं उसका विधि विधानसे अनुष्ठानकर त्रिभुवनमें भ्रमण करूंगा ।

पद्मोवाच ।

एवं पादादि केशान्तं ध्यात्वा तं जगदीश्वरम् ।
पूर्णात्मा देशिको मूलं मन्त्रं जपति मन्त्रवित् ॥ ३ ॥

(३) पद्मावतीने कहा,—इस प्रकार चरणसे लेकर केशपर्यन्त जगदीश्वर पूर्णात्मा विष्णु भगवानका ध्यान करके मूल मंत्रका जप करे ।

जपादनन्तरं दण्ड-प्रणतिं मतिमांश्चरेत् ।
विष्वक्सेनादि कानान्तु दत्त्वा विष्णुनिवेदितम् ॥ ४ ॥
तत उद्वास्य हृदये स्नापयेन्मनसा सह ।
नृत्यन्गायन्हरेर्नाम तं पश्यन्सर्वतः स्थितम् ॥ ५ ॥

(४-५) जप करनेके उपरान्त बुद्धिमान पूजक श्री विष्णु भगवानको दण्ड प्रणाम करे। आगे विष्वक्सेनादिको पाद्य अर्घ्य, नैवेद्य आदि देकर विष्णु भगवानके निवेदित वस्तुको हृदयमें स्थापित कर सर्वव्यापी विष्णुजीको स्मरण करता हुआ मनही मन नृत्य गान और हरि संकीर्तन करे ।

निर्माल्य। किसी देवताको अर्पणकी हुई वस्तु विसर्जनके पश्चात् निर्माल्य हो जाती है। विसर्जनके पहले उसका नैवेद्य नाम है ।

ततः शेषं मस्तकेन कृत्वा नैवेद्यभुग्भवेत् ।
इत्येतत्कथितं कीर ! कमलानाथसेवनम् ॥ ६ ॥

(६) इसके उपरान्त विष्णु भगवानका निर्माल्य शेष मस्तकपर धारणकर नैवेद्य पावे। हे कीर! कमलापति पूजाकी विधि यह तुमसे मैंने कही।

सकामनां कामपूरणकामामृतदायकम् ।
श्रोत्रानन्दकरं देव-गन्धर्व्व-नर-हृत्प्रियम् ॥ ७ ॥

(७) हे देव! इस भांति पूजा करनेसे सकाम पुरुषकी कामना पूर्ण होती है, निष्कामको मुक्ति प्राप्त होती है, देव गन्धर्व मनुष्योंको हृदयानन्ददायक होती है, तथा यह कथा श्रवण करनेमें सबको सुखकारी है।

शुक उवाच ।

समीरितं श्रुतं साध्वि भगवद्भक्तिलक्षणम् ।
त्वत्प्रसादात्पापिनो मे कीरस्य भुवि मुक्तिदम् ॥ ८ ॥

(८) शुक बोला,—हे साध्वी! तुमने मुझ जैसे पापी पक्षीको भी संसारसे मुक्ति मिलनेवाले विष्णु भगवानकी भक्तिके लक्षण कहे, उन्हें तुम्हारे प्रसादसे मैंने श्रवण किये।

किन्तु त्वां काञ्चनमयीं प्रतिमां रत्नभूषिताम् ।
सजीवामिव पश्यामि दुर्लभां रूपिणीं श्रियम् ॥ ९ ॥

(९) किन्तु रत्नालङ्कार अलंकृत काञ्चनमयि सचेतन प्रतिमाकी भांति त्रिभुवन-रूप-दुर्लभ लक्ष्मी तुमको मैं देखता हूं।

नान्यां पश्यामि सदृशीं रूपशीलगुणैस्तव ।
नान्यो योग्यो गुणी भर्त्ता भुवनेऽपि न दृश्यते ॥ १० ॥

(१०) तुम्हारे सदृश रूप, शील, गुणवाली स्त्री संसारमें दूसरी नहीं देख पड़ती और न तुम्हारे योग्य गुणवान स्वामी ही कोई अन्य त्रैलोक्यमें दृष्टिगोचर होता है।

किन्तु पारे समुद्रस्य परमाश्चर्य्यरूपवान् ।
गुणवानीश्वरः साक्षात्कश्चिद्दृष्टोऽतिमानुषः ॥ ११ ॥

(११) किन्तु समुद्रके पार अत्यन्त अद्भुत रूपवान, गुणवान, साक्षात ईश्वर किसीअलौलिकमनुष्यको मैंने देखा है।

न हि धातृकृतं मन्ये शरीरं सर्व्वं सौभगम् ।
यस्य श्रीवासुदेवस्य नान्तरं ध्यानयोगतः ॥ १२ ॥

(१२) उसका सर्वांग सुन्दर शरीर विधाताका बनाया हुआ नहीं जानपड़ता। ध्यानयोगसे श्रीवासुदेव भगवानके साथ उसका कुछ अन्तर नहीं जान पड़ता।

त्वया ध्यातं तु यद्रूपं विष्णोरमिततेजसः ।
तत्साक्षात्कृतमित्येव न तत्र कियदन्तरम् ॥ १३ ॥

(१३) तुम असीम तेजस्वी विष्णुभगवानके जिस रूपका ध्यान करती हो, उस रूपके साथ इस रूपका मिलान करनेसे, इस रूपमें और उस रूपमें कुछ भी अन्तर नहीं दिखाई पड़ता।

पद्मोवाच ।

ब्रूहि तन्मम किं कुत्र जातः कीर परावरम् ।
जानासि तत्कृतं कर्म्म विस्तरेणात्र वर्णय ॥ १४ ॥

(१४) इसपर पद्मावोली,-- हेकीर ! क्या कहा ? फिर कहो, उन्होंने कहांपर जन्म लिया है ? यदि तुम उनके किये हुये कर्म्मोंका विशेष वृत्तान्त जानते हो , तो विस्तारपूर्व्वक उन्हें वर्णन करो।

वृक्षादागच्छ पूजां ते करोमि विधिबोधिताम् ।
बीजपूरफलाहारं कुरु साधु पयः पिब ॥ १५ ॥

(१५) तुम वृक्षसे उतरकर नीचे आओ। मैं विधिविधानसे तुम्हारा अतिथि-सत्कार करूं। बीजपूर फलोंका आहार करके स्वच्छ दुग्ध पान करो।

तव चंचुयुगं पद्मरागादरुणमुज्ज्वलम् ।
रत्नसंघट्टितमहं करोमि मनसः प्रियम् ॥ १६ ॥

पद्मराग मणिकी उत्पत्ति। शङ्करासुर-संग्राममें असुर वृद्धिको रोकनेके निमित्त असुरका रक्त पृथ्वीपर नहीं गिरने देकर भगवान सूर्य उसे ग्रहण करते जाते थे। इसी समय रावण आ पहुंचा। रावणके भयसे सूर्यनारायणने असुररक्तको चुपके डाल दिया। सूर्यनारायणका फेंका हुआ असुररक्त सिंहल देश प्रवाहिणी रावणगङ्गा एवं उसके दोनों तटों पर जा पड़ा। इस प्रकार रात्रिके समय कान्तिमान प्रभा जलसे प्रदीप्त पद्मरागकी उत्पत्ति हुई।

(१६) मैं तुम्हारे दोनों चंचु अधरपुटोंको पद्मरागमणि एवं रत्नोंसे अरुणवर्ण और उज्वल मनमोहनी कराऊंगी ।

कन्धरं सूर्य्यकान्तेन मणिना स्वर्णघट्टिना ।
करोम्याच्छादनं चारु-मुक्ताभिः पक्षतिं तव ॥ १७ ॥

(१७) स्वर्णयुक्त सूर्यकान्त मणिसे तुम्हारी ग्रीवां सुशोभित करूंगी और तुम्हारे दोनो पंख मोतियोंसे मढ़ाऊंगी ।

पतत्रं कुंकुमेनांगं सौरभेणातिचित्रितम् ।
करोमि नयनानन्ददायकं रूपमीदृशम् ॥ १८ ॥

(१८) तुम्हारे पंख एवं शरीरको सुगन्धित कुंकुमसे चित्रितकर तुम्हारा ऐसा रूप बनाऊंगी, कि तुम्हे देखतेही सबके नेत्रोंको आनन्द उत्पन्न होगा ।

पुच्छमच्छमणिव्रात-घर्घरेणातिशब्दितम् ।
पादयोर्नूपुरालाप-लापिनं त्वां करोम्यहम् ॥ १९ ॥

(१९) तुम्हारी पूछमें निर्मलमणि गूथ दूंगी, जिनसे तुम्हारे उड़नेके समय घर्घर शब्द होगा और तुम्हारे चरण ऐसे सजाऊंगी, कि तुम्हारे चलनेके समय नूपुर-ध्वनि होगी ।

तवामृतकथाव्रातत्यक्ताधिं शाधि मामिह ।
सखीभिः संगीताभिस्ते किं करिष्यामि तद्वद ॥ २० ॥

(२०) तुम्हारी कथामृत श्रवणकर हमारे मनकी समस्त व्यथा दूर होगई । अब मुझे आज्ञा दीजिये, कि मैं तुम्हारा क्या कार्य करूं ? मैं सखियोंके साथ तुम्हारी सेवा करनेको तय्यार हूं ।

इति पद्मावचः श्रुत्वा तदन्तिकमुपागतः ।
कीरो धीरः प्रसन्नात्मा प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ २१ ॥

(२१) पद्माके इस प्रकार बचन सुनकर प्रसन्नहृदय शुकने धीरे धीरे उसके निकट जाकर कथा कहना प्रारम्भ किया ।

मुक्ताकी उत्पत्ति । मेघ, हस्ती, मत्स्य, सर्प, वांस, शंख, वराह एवं सीपीसे मुक्ताकी उत्पत्ति है मुक्ताका साधारण नाम मोती है ।

सूर्यकान्त मणि । सूर्यकान्त, चन्द्रकान्त, जलकान्त, हंसगर्भ स्फटिकमणिके भेद हैं । अग्निस्रव करने-वाली स्फटिकमणिको सूर्यकान्त, अमृतस्रव करनवाली स्फटिकमणिको चन्द्रकान्त, जलस्रव करनेवाली स्फटिकमणिको जलकान्त, एवं विष विनाशक स्फटिकमणिको हंसगर्भ स्फटिकमणि कहते हैं ।

कीर उवाच ।

ब्रह्मणा प्रार्थितः श्रीशो महाकारुणिको बभौ ।
शंभले विष्णुयशसो गृहे धर्म-रिरक्षिषुः ॥ २२ ॥

(२२) शुकने कहा,-ब्रह्माजीकी प्रार्थना करनेपर धर्म्मस्थापनकी अभिलाषासे महाकारुणिक श्रीपति भगवानने शम्भल ग्रामस्थ विष्णुयशाके गृहमें जन्म ग्रहण किया है।

चतुर्भिर्भ्रातृभिर्ज्ञाति-गोत्रजैः परिवारितः ।
कृतोपनयनो वेदमधीत्य रामसन्निधौ ॥ २३ ॥

(२३) चार भ्राता ज्ञाति एवं गोत्रवालोंके साथ हैं। उपनयन संस्कारके पश्चात कल्किजीने परशुरामजीसे वेद पढ़ा।

धनुर्वेदञ्च गान्धर्वं शिवादश्वमसिं शुकम् ।
कवचञ्च वरं लब्धा शम्भलं पुनरागतः ॥ २४ ॥

(२४) आगे वह धनुर्वेद, गान्धर्ववेद सीखकर श्रीशङ्करजीसे अश्व, खड्ग, शुक, कवच एवं वर प्राप्तकर शम्भल ग्राम लौट आये।

विशाखयूपभूपालं प्राप्य शिक्षाविशेषतः ।
धर्मानाख्याय मतिमान् अधर्म्मांश्च निराकरोत् ॥ २५ ॥

(२५) उपरान्त उन मतिमान कल्किजीने विशाखयूपराजको प्राप्त हो अपनी विशेष शिक्षा द्वारा धर्म्म प्रकटकर अधर्मको दूर किया।

इति पद्मा तदाख्यानं निशम्य मुदितानना ।
प्रस्थापयामास शुकं कल्केरानयनादृता ॥ २६ ॥

(२६) यह वृत्तान्त श्रवणकर पद्मावतीने प्रसन्न वदन हो आदरपूर्वक काल्कि-जीको लानेके निमित्त शुकको भेजा।

भूषयित्वा स्वर्णरत्नैस्तमुवाच कृताञ्जलिः ॥ २७ ॥

(२७) शुकको स्वर्ण एवं रत्नोंसे विभूषितकर हाथ जोड़ पद्मावती बोली।

गान्धर्ववेद। संगीत शास्त्रको गान्धर्ववेद कहते हैं। संगीत शास्त्र गन्धर्वोंके अधिकारमें है। उस-पर गन्धर्वोंका पूर्ण अधिकार होनेके कारण संगीत शास्त्र उनके गन्धर्व नामसे गान्धर्ववेद प्रसिद्ध हो गया है। नृत्य, गीत, वाद्य एवं अभिनय संगीत शास्त्रके अन्तर्गत हैं।

पद्मोवाच ।

निवेदितं तु जानासि किमन्यत्कथयाम्यहम् ॥
स्त्रीभावभयभीतात्मा यदि नायाति स प्रभुः ॥ २८ ।
तथापि मे कर्मदोषात् प्रणतिं कथयिष्यसि ।
शिवेन यो वरो दत्तः स मे शापोऽभवत्किल ॥ २९ ॥
पुंसा मद्दर्शनेनापि स्त्रीभावं क्रमतः शुक ।
श्रुत्वेति पद्मामामन्त्र्य प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ ३० ॥
उड्डीय प्रययौ कीरः शम्भलं कल्किपालितम् ।
तमागतं समाकर्ण्य कल्किः परपुरञ्जयः ॥ ३१ ॥
क्रोडे कृत्वा तं ददर्श स्वर्णरत्नविभूषितम् ।
सानन्दं परमानन्ददायकं प्राह तं तदा ॥ ३२ ॥

(२८-२९-३०-३१-३२) पद्माका बचन,-मुझे जो कुछ निवेदन करना है उसको तुम जानते हो और अधिक तुमसे क्या कहूं। स्त्रीस्वभावसे आत्मा भयभीत हो रहा है, यदि वह प्रभु न आवें, तौभी मेरी ओरसे प्रणाम कर मेरे कर्मदोषसे जो कुछ हुआ है, सो कहकर सूचित कीजियेगा, कि महादेवजीने जो वर हमें दिया है वह शापरूप हो गया है । जो पुरुष मुझको सकामहृदयसे देखेगा, वह तत्काल स्त्री शरीरको प्राप्त हो जायगा । पद्माके यह बचन श्रवणकर उन्हें ढाढस दे एवं बारम्बार प्रणामकर शुक उड़ता हुआ कल्किजी-पालित शम्भलग्रामको गया । शत्रुपुरके जीत-नेवाले कल्किजी उसका आगमन श्रवणकर परमानन्ददायक उस शुकको गोदमें लेकर देखा कि वह स्वर्ण और रत्नोंसे विभूषित है। इसके उपरान्त आनन्दपूर्वक उससे बोले ।

कल्किः परमतेजस्वी परस्मिन्नमलं शुकम् ।
पूजयित्वा करे स्पृष्ट्वा पयःपापेन तर्पयन् ॥ ३३ ॥
तन्मुखे स्वमुखं दत्त्वा पप्रच्छ विविधाः कथाः ।
कस्माद्देशाच्चरित्त्वा त्वं दृष्ट्वापूर्व्वं किमागतः ॥ ३४ ॥

(३३-३४) परम तेजस्वी कल्किजीने निर्मल शुकको प्रथम बामहस्तसे दूध पिलाकर तृप्त किया। आगे उसके मुखसे मुख मिलाय बहुतसी बातें पूंछी। अब तुम कौन देशसे विचरण कर कौनसी अपूर्व वस्तु देख आये हो ?

कुत्रोषितः कुतो लब्धं मणिकाञ्चनभूषणम्।
अहर्निशं त्वन्मिलनं वाञ्छितं मम सर्व्वतः ॥ ३५ ॥

(३५) तुम अब तक कहां थे? मणि काञ्चन भूषण तुमने कहां पायी? अहर्निशि सर्व्व प्रकार तुमसे मिलनेकी मेरी इच्छा रहती है।

तवानालोकनेनापि क्षणं मे युगवद्भवेत्॥ ३६ ॥

(३६) तुमको नहीं देखनेसे एक क्षण भी मुझे युगके समान हो जाता है।

इति कल्केर्वचः श्रुत्वा प्रणिपत्य शुको भृशम्।
कथयामास पद्मायाः कथाः पूर्वोदिता यथा ॥ ३७ ॥

(३७) कल्किजीके इस प्रकार वचन सुनकर शुकने उनको बारम्बार प्रणाम किया और पहले कही हुई पद्माकी कथाको यथोचित रीतिसे कहा।

संवादमात्मनस्तस्या निजालङ्कार धारणम्।
सर्व्वं तद्वर्णयामास तस्याः प्रणतिपूर्वकम्॥ ३८ ॥

(३८) आगे अपने साथ पद्माका व्यवहार, पद्माके साथ अपनी बातचीत एवं अपने आभूषण धारण करनेका वृन्तान्त सब ज्योंका त्यों नम्रता पूर्वक उसने वर्णन किया।

श्रुत्वेति वचनं कल्किः शुकेन सहितो मुदा।
जगाम त्वरितोऽश्वेन शिवदत्तेन तन्मनाः ॥ ३९ ॥

(३९) कल्किजी तन मनसे इन वचनोंको श्रवण कर, शीघ्रही शिवदत्त घोड़े पर चढ़कर प्रसन्नता पूर्वक शुकके साथ गये।

समुद्रपारममलं सिंहलं जलसंकुलम्।
नानाविमानवहुलं भास्वरं मणिकाञ्चनैः ॥४० ॥
प्रासादसदनाग्रेषु पताकातोरणाकुलम्।
श्रेणीसभापणाट्टाल-पुरगोपुरमण्डितम्॥ ४१ ॥
पुरस्त्री-पद्मिनी-पद्मगन्धामोद-द्विरेफिणीम्।
पुरीं कारुमतीं तत्र ददर्श पुरतः स्थिताम्॥ ४२ ॥

(४०-४१-४२) समुद्र पार, निर्मल जलके मध्य, नाना प्रकारके अनेक विमानोंसे परिपूर्ण, मणि काञ्चनसे दैदीप्यमान, अट्टालिका एवं गृहादिके सम्मुख पताका तोरणादिसे सुसज्जित, सभामंडप, दूकान, सौवसमूह, पुरसमूह, गोपुरसमूह सुसङ्कुला स्वरूपमें सुशोभित, पद्मिनी पुरस्त्रियोंके पद्मगन्धसे भवँरकुल हर्षित इस प्रकारकी कारूमती सिंहलपुरीको वहां पहुंचकर सामने स्थित कल्किजीने देखा।

मराल-जाल-सञ्चाल-विलोल-कमलान्तराम्।
उन्मीलताब्जमालालिकलिताकुलितं सरः॥ ४३॥
जलकुक्कुटदात्यूह-नादित हंससारसैः।
ददर्श स्वच्छपथसां लहरीलोलवीजितम्॥ ४४॥
वनं कदम्बकुद्दाल-शालतालाम्रकेसरैः।
कपित्थाश्वत्थखर्जूर-बीजपूरकरंजकैः॥ ४५॥
पुन्नागपनसैर्नागरङ्गैरर्ज्जनशिंशपैः।
क्रमुकैर्नारिकेलैश्च नानावृक्षैश्च शोभितम्।
वनं ददर्श रुचिरं फलपुष्पदलावृतम्॥ ४६॥

(४३-४४-४५-४६) पुरीके जलाशय हंस समूहके संचालनसे चलायमान होरहे हैं। सरोवरके खिले हुए कमलोंमें भ्रमरगण गुंज रहे हैं। जलाशय और सरोवरोंके चारो ओर हंस, सारस, जलमुर्ग, दात्यूह पक्षी समूह शब्द कर रहे हैं स्वच्छ जलकी चञ्चल तरंगोंके साथ वन वयारित हो रहा है। वन कदम्ब, कुद्दाल, शाल, ताल, आम, मौलश्री, कैथ, पीपल, खजूर, विजौरा, नीबू, करंजक, पुन्नाग, पनस, नागरंग, अर्जुन, शिंशपा, क्रमुक, नारियल आदि अनेक वृक्षोंसे शोभायमान है। इस प्रकार फल पुष्प और पत्रों से विभूषित वह वन कल्किजीने देखा।

दृष्ट्वा हृष्टतनुः शुकं सकरुणः कल्किः पुरान्ते वने
प्राह प्रीतिकरं वचोऽत्र सरसि स्नातव्यमित्यादृतः।
तच्छ्रुत्वा विनयान्वितः प्रभुमतंयामीति पद्माश्रमं
तत्सन्देशमिह प्रयाणमधुना गत्वा स कीरोऽवदत्॥४७॥

(४७) यह सब देखकर पुरीके निकटस्थ वनसे पुलकित शरीर कल्किजीने करुणापूर्वक आदरके साथ शुकसे यह प्रीतिकर वचन बोले,—"यहां सरोवरमें स्नान करेंगे।" इस प्रकार वचन श्रवणकर प्रभुके अभिप्रायको समझ शुकने विनयपूर्वक

निवेदन किया-" अब मैं पद्माके घरको जाता हूं। आगे शुकने पद्माके निकट जाकर कल्किजीके कहे हुए वचन एवं उनके आगमनकी समस्त वार्ताको कहा।

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांशे कल्के रागमनवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयांशः ।

द्वितीय-अध्याय

सूत उवाच ।

कल्किः सरोवराभ्यासे जलाहरणवर्त्मनि ।
स्वच्छस्फटिकसोपाने प्रवालाचितवेदिके ॥ १ ॥
सरोजसौरभव्यग्रभ्रमद्भ्रमरनादिते ।
कदम्बपोलपत्रालि-वारितादित्यदर्शने ॥ २ ॥
समुवासासने चित्रे सदश्वेनावतारितः ।
कल्किः प्रस्थापयामास शुकं पद्माश्रमंमुदा ॥ ३ ॥

(१-२-३) सूतजी बोले,-घोड़े से उतरकर सरोवरके निकटस्थ जल लानेके मार्गमें मूंगोंसे विभूषित सरोज सौरभसे व्यग्र अलिगण निनादित स्वच्छ स्फटिक सोपानके चबूतरेपर बैठकर कदम्ब वृक्षोंके नवीन पत्तोंसे आदित्य किरण अच्छादित कल्कि भगवानने प्रसन्नचित्त शुकको पद्माके आश्रमको भेजा।

स नागेश्वरमध्यस्थः शुको गत्वा ददर्श ताम् ।
हर्म्यस्थां बिसिनीपत्रशायिनीं सखीभिर्वृताम् ॥४

(४) वहां जाकर नागकेशरके वृक्ष पर बैठे हुए उस शुकने सखियोंसे घिरी हुई अटारीके ऊपर पुरैनपत्तोंकी सेजपर शयनमें पद्माको देखा।

निश्वासवाततापेन म्लायतीं वदनाम्बुजम् ।
उत्क्षिपन्तीं सखीदत्तकमचलं न्दनोक्षितम् ॥ ५ ॥

(५) और देखा कि निश्वास वयारिकी तापसे मुखकमलमलिन पद्मा चन्दन चर्चित सखीके दिये हुए कमलको हाथसे हिला रही है।

रेवावारिपरिस्नातं परागास्यं समागतम् ।
धृतनीरं रसगतं निन्दन्तीं पवनं प्रियम् ॥ ६ ॥

(६) दक्षिण दिशासे आया हुआ पद्मरागयुक्त जलगर्भ सरस प्रियपवनको पद्मा निन्दित कर रहीं है।

शुकः सकरुणः साधु-वचनैस्तामतोषयत् ।
सा, त्वमेह्यहि, ते स्वस्ति स्वागतं? स्वस्ति मे शुभे! ॥ ७ ॥

(७) ऐसेही समय, करुणाहृदयसे शुकने प्रिय वचन कहकर पद्माको समझाया तब पद्माने कहा, तुह्मारा मङ्गल हो! निकट आओ! कुशल तो है? शुकने उत्तर दिया, शोभने! हमारी समस्त कुशल है।

गते त्वय्यतिव्यग्राहं शान्तिस्तेऽस्तु रसायनात् ।
रसायनं दुर्लभं मे, सुलभं ते शिवाश्रमे ॥ ८ ॥

(८) पद्माने कहा,–हे शुक! तुम जबसे गये हो तबसे मैं अत्यन्त व्याकुल हो रही हूं। उत्तरमें शुकने कहा,-- अब रसायन द्वारा तुह्मारे सब सन्ताप शान्त होंगे। पद्मावतीने उत्तर दिया,–मेरे लिये रसायन दुर्लभ है। शुकनेकहा,–हे शिव शिष्ये! तुह्मारे लिये रसायन सुलभ है।

क्व मे भाग्यविहीनाया इहैव वरवर्णिनि ।
देवि! तं सरसस्तीरे प्रतिष्ठाप्यागता वयम् ॥ ९ ॥

(९) पद्मा बोली,-- हे शुक! मुझे भाग्यहीनका अभीष्ट किस प्रकार कहांसिद्ध होगा। शुकने उत्तरदिया,—हे वरवर्णिनि! इसी स्थानमें। हे देवि! मैं उनको सरोवरके तटपर बैठाकर यहां आया हूं।

एवमन्योन्यसम्वाद-मुदितात्ममनोरथे ।
मुखं मुखेन नयनं नयने साहृता ददौ ॥ १० ॥

(१०) इसप्रकार पद्मा और शुकका परस्पर वार्तालाप होनेपर अपना मनोर्थ सिद्ध होनेके हर्षमें आदरपूर्वक पद्माने शुकका मुख अपने मुखमें अपना मुख शुकके मुखमें एवं अपने नेत्रोंको शुकके नेत्रोमें और शुकके नेत्रोंको अपने नेत्रोंमें समर्पण किया।

विमलामालिनी लोला कमला कामकन्दला ।
विलासिनी चारुमती कुमुदेत्यष्ट नायिकाः ॥ ११ ॥

सख्य एता मतास्ताभिर्जलक्रीडार्थमुद्यताः।
पद्मा प्राह, सरस्तीरमायान्तु सा मया स्त्रियः ॥ १२ ॥

(११-१२) बिमला, मालिनी, लोला, कमला, कामकन्दला, विलासिनी, चारुमती, और कुमुदा, यह अष्ट नायिका हैं। इन सखियोंके साथ वह जलक्रीडा करनेको उद्यत होकर पद्माने कहा, यह सखियां हमारे साथ सरोवरके तीर चलें।

इत्याख्यायाशु शिबिकामारुह्य परिवारिता।
सखीभिश्चारुवेशाभिर्भूत्वा स्वान्तःपुराद्वहिः।
प्रययौ त्वरितं द्रष्टुं भैष्मी यदुपतिं यथा ॥ १३ ॥

(१३) यह कहकर सुन्दर वेशवाली सखियोंसे घिरी हुई पद्मा पालकीमें सवार होकर अपने अन्तःपुरसे बाहर निकल जिस प्रकार रूक्मिणी कृष्णभगवानके दर्शनार्थ बाहर हुई थी, उसी प्रकार कल्किभगवानके दर्शनको शीघ्रतासे गई।

जनाः पुमांसः पथि ये पुरस्थाः प्रदु वुः स्त्रीत्व-
भयाद्दिगन्तरम्। शृङ्गाटके वा विपणि स्थिता
ये निजाङ्गनास्थापितपुण्यकार्य्याः ॥ १४ ॥

(१४) पद्मा जिस मार्गसे चली उस मार्गमें मार्गपर चौराहोंपर अथवा दूकानोंपर जो मनुष्य थे, वह पद्माको देखतेही स्त्री होजांयगे, इस भयसे चारो ओर जहां जिनको राह मिली भाग गये। उन भागनेवाले पुरुषोंकी स्त्रियां वन पर्वतोंमें अपने मनुष्योंको निरापद भागते हुए देखकर देवपूजादि पुण्यकर्म्मका अनुष्ठान करने लगीं।

निवारितां तां शिबिकां वहन्त्यः नार्य्योऽतिमत्ता
बलवत्तराश्च। पद्मा शुकोक्त्या तदुपर्य्युपस्था
जगाम ताभिः परिवारिताभिः ॥ १५ ॥

(१५) इस प्रकार मार्ग पुरुष समूहसे विहीन होनेपर उन्मत्त बलवान स्त्रियां पालकीको लेचलीं। शुकके कहनेके अनुसार पद्मा उस पालकीपर चढ़ ली। और समस्त सखियां पालकीको घेरे हुए उसके साथ चलीं।

सरोजलं सारसहंसनादितं प्रफुल्लपद्मोद्भवरेणुवा-
सितम्। चेरुर्विगाह्याशु सुधाकरालसाः कुमु-
द्वतीनामुदयाय शोभनाः ॥ १६ ॥

तासां मुखामोदमदान्धभृङ्गा विहाय पद्मानि मुखारविन्दे । लग्नाः सुगन्धाधिकमाकलय्य निवारिताश्चापि न तत्यजुस्ते ॥ १७ ॥

(१६-१७) तदुपरान्त सारस हंसादिकी मधुरध्वनिसे पूर्ण प्रफुल्ल पद्मरेणुसे सुगन्धित सरोवरके नीरमें स्नानकर कुमुद्वतीको विकसित करनेके अभिप्रायसे कुमुद्वान्धव चन्द्रमाकी आशामें वह चन्द्रवदनी ललनायें घूमने लगीं, भ्रमणगण उनके कमलवदनके सौरभसे अन्धेहो प्रफुल्ल कमलोंको छोड़ उनके मुखकमलोंपरही बैठने लगे। स्त्रियां बारबार उन भ्रमरोंको उड़ाती हैं, किन्तु वह मुखपद्ममें अत्यन्त सौरभ पाकर उन्हें छोड़ते नहीं हैं।

हासोपहासैः सरसप्रकाशैर्वाद्यैश्च नृत्यैश्च जले विहारैः । करग्रहैस्ता जलयोधनार्त्ताश्चकर्ष ताभिर्वनिताभिरुच्चैः ॥ १८ ॥

(१८) रसयुक्त हास परिहाससे, वाद्यसे, नृत्यसे, हाथमें हाथ मिलाकर एवं नाना-प्रकारके जलविहारसे जलसन्तरणमें मत्त सखियोंके मनको पद्माने हर लिया तथा सखियोंने पद्माके मनको हरा।

सा कामातप्ता मनसा शुकोक्तिं विविच्य पद्मा सखिभिः समेता । जलात्समुत्थाय महार्हभूषा जगाम निर्दिष्टकदम्बषण्डम् ॥ १९ ॥

(१९) पश्चात वह पद्मा कामसे संतापित हृदयमें शुकके वाक्योंको विचारती हुई सखियोंके सहित जलसे बाहर निकल मूल्यवान आभूषणोंको धारणकर निर्दिष्ट कदम्ब वृक्षके नीचे गई।

सुखे शयानं मणिवेदिकागतं कल्किं पुरस्तादतिसूर्य्यवर्चसम् । महामणिव्रातविभूषणाचितं शुकेन सार्द्धं तमुदैक्षतेशम् ॥ २० ॥

(२०) वहां शुकके साथ जाकर मणिचबूतरे पर महामणियोंसे आभूषित सूर्यकी प्रभासेभी अधिक प्रभासम्पन्न कल्किभगवानको सन्मुख सुखसे शयन किये हुये देखा।

तमालनीलं कमलापतिं प्रभुं पीताम्बरं चारुसरोजलोच-

नम् । आजानुबाहुं पृथुपीनवक्षसं श्रीवत्ससत्कौस्तुभ-कान्तिराजितम् ॥ २१ ॥

(२१) तमालके सदृश नीलवर्णवाले पीताम्बरधारी, सुन्दर सरोज लोचनवाले अजानबाहु, चौड़ीपुष्ट क्षणिवक्षवाले, श्रीवत्सचिन्हसे चिन्हित, कौस्तुभमणि कान्तसे विभूषित लक्ष्मीपति भगवानकल्किजी विराजमान हैं ।

तदद्भुतं रूपमवेक्ष्य पद्मा संस्तम्भितात्विस्मृतसत्क्रियार्था सुप्तं तु संबोधयितुं प्रवृत्तं निवारयामाविशङ्कितात्मा २२

(२२) उस अद्भुतरूपको निहारकर पद्मा स्तंभित हो उचित सत्कार करना भूल गई । शयनसे उठानेको शंकित हृदय पद्माने मना किया ।

कदाचिदेषोऽतिबलोऽतिरूपी मद्दर्शनात्स्त्रीत्वमुपैति साक्षात् । तदात्र किं मे भविता भवस्य वरेण शापप्रति-मेन लोके ॥ २३ ॥

(२३) कदाचित मुझको देखनेसे यह महावीर अत्यन्त रूपवान पुरुष स्त्री शरीरको प्राप्त होजाय, तो फिर मेरे लिये क्या होगा ! वा हमारेलिये शापरूप होजायगा ।

चराचरात्मा जगतामधीशः प्रबोधितस्तद्धृदयं विविच्य । ददर्श पद्मां प्रियरूपशोभां यथा रमा श्रीमधुसूदनाग्रे ॥२४॥

(२४) पश्चात् चराचर जगतके स्वामी भगवान कल्किजी पद्माके आन्तरिक अभिप्रायको समझकर जागे और देखा कि मधुसूदनमूर्तिके सन्मुख लक्ष्मीजी जैसी परमरूपवती श्रेष्ठनेत्रवाली पद्मा सामने खड़ी है ।

संवीक्ष्य मायामिव मोहिनीं तां जगाद कामाकुलितः स कल्किः । सखीभिरीशां समुपागतां तां कटाक्षविक्षेपवि-नामितास्याम् ॥ २५ ॥

(२५) सखियोंके साथ आई हुई विना पलकमारे कटाक्ष करती हुई पद्माको देखकर उस साक्षात मायाका सामान मोहकी माता राजकुमारीसे कल्किजी सकाम हृदयसे कहा ।

मधुसूदन । मधुनामक एक दैत्य था । उस मधु दैत्यका विनाश करनेसे विष्णुभगवानका मधु-सूदन नाम हुआ ।

इहैहि सुस्वागतमस्तु भाग्यात्समागमस्ते कुशलाय मे स्यात्।
तवाननेन्दुः किल कामपूरतापापनोदाय सुखाय कान्ते! २६॥

(२६) हे कान्ते! निकट आओ! भाग्यवश तुम्हारे समागमसे मेरा मंगल हुआ है। तुम्हारे चन्द्राननसे हमारे कामदेवका ताप दूर होकर सुख बढ़े।

लोलाक्षि! लावण्य-रसामृतं ते कामाहिदष्टस्य विधातुरस्य।
तनोतु शान्तिं सुकृतेन कृत्या सुदुर्लभां जीवनमाश्रितस्य २७॥

(२७) हे चंचल नेत्रवाली! मुझ जगतके विधाताको कामसर्पने डसा है। तुम्हारे लावण्यरूप रसामृतसे उसकी शान्ति हो सकती है। यह शान्ति बहुत पुण्यसे भी दुर्लभ है और यह आश्रितका जीवनरूप है।

बाहू तवैतौ कुरुतां मनोज्ञौ हृदि स्थितं काममुदन्तवासम्।
चार्वायतौ चारुनखाङ्कुशेन द्विपं यथा सादिविदीर्णकुम्भम् २८

(२८) महावत जिस प्रकार अंकुशसे उन्मत्त हाथीका कुम्भ भेद डालता है। इसी प्रकार तुम्हारी यह रमणीय और बड़ी बाहें श्रेष्ठ नखरूप अंकुशद्वारा मेरे हृदयमें स्थित अङ्गरूप उन्मत्त हस्तिकुम्भको विदीर्ण करें।

स्तनाविमावुत्थितमस्तकौ ते कामप्रतोदाविव वाससाक्तौ।
ममोरसा भिन्ननिजाभिमानौ सुवर्त्तुलौ व्यादिशतां प्रियं मे

(२९) वस्त्रसे ढके तुम्हारे यह दोनों गोलस्तन कामदेवके चारककी भांति शिर उठा रहे हैं। यह मेरी छातीसे खर्वीकृत हो हमारी मनोवाञ्छाको पूर्ण करें।

कान्तस्य सोपानमिदं वलित्रयं सूत्रेण लोमावलिलेखलक्षितम्। विभाजितं वेदिविलग्नमध्यमे! कामस्य दुर्गाश्रयमस्तु मे प्रियम् ॥ ३० ॥

(३०) हे प्यारी! तुम्हारा कमर यज्ञवेदीके मध्यदेशकी भांति क्षीण है। उसमें त्रिवलीका उदय हुआ है, उस त्रिवलीपर रमणीय रोमरेखा उत्पन्न है। मैं जानता हूं, कि वह सुन्दर त्रिवलीरेखा तुम्हारे प्रीतमकी मदनमार्गमें उतरनेकी सोपान है और कामदेव आश्रयको मानो दुर्ग है। हे प्रिये! तुम्हारी त्रिवली हमें प्रसन्न करें।

रम्भोरु! सम्भोगसुखाय मे स्यात्खिलवधिरं पुलिनो-

पमं ते । तन्वङ्गि ! तन्वशुकसङ्गशोभं प्रमत्तकामाविमदोद्यमालम् ॥ ३१ ॥

(३१) हे रम्भोरु ! पुलिनके समान तुम्हारे नितम्बबिम्ब हमारे सम्भोग सुखको पूर्ण करें। हे कृशाङ्गि ! सूक्ष्म वस्त्रसे ढके तुम्हारे नितम्बमण्डलपर मदनमत्त पुरुषका कामाभिलाष चरितार्थ हो जाता है। इस समय यह हमारे सम्भोग सुखके कारण होवें।

पादाम्बुजं तेऽङ्गुलिपत्रचित्रितं वरं मरालक्वणनूपुरावृतम् । कायाहिदष्टस्य ममास्तु शान्तये हृदि स्थितं पद्मघनेसुशोभने ॥ ३२ ॥

(३२) हमारे निर्मल हृदय जलमें स्थित, अङ्गुलिरूप पत्रद्वारा चित्रित हंसकी समान शब्दकरनेवाले नूपुरोंसे शोभायमान परम रमणीय तुम्हारे पादपद्मसे हमारे मदनरूप विषधर दंशन जनित विषकी शान्ति हो।

श्रुत्वैतद्वचनामृतं कलिकुलध्वंसस्य कल्केरलं
दृष्ट्वा सत्पुरुषत्वमस्य मुदिता पद्मा सखीभिर्वृता ।
कान्तं क्लान्तमनाः कृताञ्जलिपुटा प्रोवाचतत्सादरं
धीरं धीरपुरस्कृतं निजपतिं नत्वा नमत्कन्धरा ॥ ३३ ॥

(३३) कलिकुलका ध्वंस करनेवाले कल्किजीके यह अमृतोपम वचन श्रवण कर एवं उनको पुरुषत्व अक्षत देखकर पद्मा अत्यन्त आनन्दको प्राप्त हुई। फिर उं पद्माका मन कल्किजी द्वारा क्लान्त हो गया तब वह सखियोंके साथ शिर झुका नमस्कार कर हाथ जोड़ धीरजनोंसे आदर प्राप्त किये हुये अपने पति कल्किजीसे आदरपूर्वक धीरे धीरे बोली।

इति श्रीसानुवादे कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्य पद्माकल्कि-साक्षात्-संवादो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

द्वितीयांशः ।

तृतीय-अध्याय

सूत उवाच ।

सा पद्मातं हरिं मत्वा प्रेमगद्गदभाषिणी ।
तुष्टाव व्रीडिता देवी करुणावरुणालयम् ॥ १ ॥

(१) सूतजी बोले—वह प्रेमगद्गद भाषिणी पद्मा उन कल्किजीको साक्षात विष्णुभगवान जान लज्जासे शिर झुका उन करुणासागर भगवानकी स्तुति करने लगी।

प्रसीद जगतां नाथ ! धर्म्मवर्म्मन् ! रमापते ! ।
विदितोऽसि विशुद्धात्मन्! वशगां त्राहि मां प्रभो ! ॥ २ ॥

(२) हे रमापते ! हे धर्म्मके वर्म ! हे जगतके नाथ प्रसन्न हो! हे विशुद्धात्मन! आपको मैं पहचान गई हूं। हे प्रभो ! मैं आपकी शरण आई हूं। मेरी रक्षा करो!

धन्याहं कृतपुण्याहं तपोदानजपव्रतैः ।
त्वां प्रतोष्य दुराराध्यं लब्धं तव पदाम्बुजम् ॥ ३ ॥

(३) मैं धन्य हूं। मैं पुण्यवती हूं। तप, दान, जप एवं व्रतादिसे आपको सन्तुष्ट कर आपके दुराराध्य पदाम्बुजको मैंने प्राप्त किया है।

आज्ञां कुरु पदाम्भोजं तव संस्पृश्य शोभनम् ।
भवनं यामि राजानमाख्यातुं स्वागतं तव ॥ ४ ॥

(४) मुझे आज्ञा दीजिये, कि मैं आपके सुन्दर चरण कमलोंको स्पर्श कर गृह जाऊं और राजासे आपके शुभागमनकी बात निवेदन करूं।

इति पद्मा रूपसद्मा गत्वा स्वपितरं नृपम् ।
प्रोवाचागमनं कल्केर्विष्णोरंशस्य दौत्यकैः ॥ ५ ॥

(५) यह कह कर अनुपम रूपवाली पद्मा अपने पिता राजाके पास गई और दूत द्वारा विष्णुभगवानके अंश कल्किजीका आगमन कहा।

सखीमुखेन पद्मायाः पाणिग्रहणकाम्यया।
हरेरागमनं श्रुत्वा सहर्षोऽभूद्बृहद्रथः॥ ६॥

(६) सखीके मुखसे पद्माके पाणिग्रहणकी इच्छासे हरिभगवानका आगमन श्रवणकर बृहद्रथराजा प्रसन्न चित्त हुआ।

पुरोधसा ब्राह्मणैश्च पात्रैर्मित्रैः सुमङ्गलैः।
वाद्यताण्डवगीतैश्च पूजायोजनपाणिभिः॥ ७॥
जगामानयितुं कल्किं सार्द्धं निजजनैः प्रभुः।
मण्डयित्वा कारुमतीं पताकास्वर्णतोरणैः॥ ८॥

(७-८) आगे राजाने पुरोहित, ब्राह्मण, परिजन, मित्र बान्धु, बान्धव सहित पूजाकी सामग्री साथ ले माङ्गलिक नृत्य, गीत, वाद्य, करते हुए कल्किजीको लानेके निमित्त यात्रा की। पताका स्वर्ण तोरणसे उस समय कारुमती पुरी विभूषित हुई।

ततो जलाशयाभ्यासं गत्वा विष्णुयशःसुतम्।
मणिवेदिकयासीनं भुवनैकगतिं पतिम्॥ ९॥

(९) उपरान्त बृहद्रथराजने जलाशयके निकट जाकर देखा कि, विष्णुयशापुत्र भुवनोंके अधिपति विष्णुभगवान मणि वेदीपर विराजमान हैं।

घनाघनोपरि यथा शोभन्ते रुचिराण्यहो।
विद्युदिन्द्रायुधादीनि तथैव भूषणान्युत॥ १०॥

(१०) घने बादलके ऊपर जिस प्रकार मनोहर दामिनी अथवा इन्द्रायुधादि शोभा पाते हैं। उसी प्रकार कृष्णवर्ण कल्किजीके अंगमें भूषणसमूह शोभा पारहे हैं।

शरीरे पीतवासाग्र्यघोरभासा विभूषितम्।
रूपलावण्यसदने मदनोद्यमनाशने॥ ११॥
ददर्श पुरतो राजा रूपशीलगुणाकरम्।
साश्रुः सपुलकः श्रीशं दृष्ट्वा साधु तमर्चयत्॥ १२॥

(११-१२) रूप लावण्यके भण्डार, मदन उद्यमको नाश करनेवाले शरीरके अग्र-भागमें पीताम्बर गम्भीर प्रभासे विभूषित हो रहा है। इस प्रकार रूपशील गुणके निधान कल्किभगवानको राजाने सन्मुख देखा। श्रीपति कल्किजीको देखकर राजाने साश्रु पुलकित शरीर हो उनकी विधि विधानसे पूजा की।

ज्ञानागोचरमेतन्मे तवागमनमीश्वर ।
यथा मान्धातृपुत्रस्य यदुनाथेन कानने ॥ १३ ॥

(१३) आगे राजाने कहा,—हे जगदीश्वर ! जिस प्रकार मान्धाताके पुत्रसे वनमें यदुनाथ मिले थे, उसी प्रकार ज्ञानगोचर अतीत आपका आगमन मेरे निमित्त हुआ है ।

इत्युक्त्वा तं पूजयित्वा समानीय निजाश्रमे ।
हर्म्यप्रासादसंबाधे स्थापयित्वा ददौ सुताम् ॥ १४ ॥

(१४) यह कह कर उनकी पूजा की और उन्हें अपने आश्रममें ले आये । वहां हर्म्य प्रसादसे शोभित अपने गृहमें वास देकर कन्यादान दिया ।

पद्मां पद्मपलाशाक्षीं पद्मनेत्राय पद्मिनीम् ।
पद्मजादेशतः पद्मनाभायादाद्यथाक्रमम् ॥ १५ ॥

(१५) पद्मज भगवान ब्रह्माके आदेशानुसार पद्मनाभ पद्मनेत्र भगवान कल्कि-जीको पद्मपलाशाक्षी पद्मनि पद्माको यथाविधिसे समर्पण किया ।

कल्किर्लब्ध्वा प्रियां भार्य्यां सिंहले साधुसत्कृतः ।
समुवास विशेषज्ञः समीक्ष्य द्वीपमुत्तमम् ॥ १६ ॥

(१६) प्यारी भार्याको प्राप्तकर, साधुजनोंसे उत्तम सन्मान पाकर, सिंहलद्वीपको उत्तम स्थान देखकर कल्किभगवानने कुछ दिन तक वहां वास किया ।

राजानः स्त्रीत्वमापन्नाः पद्मायाः सखितां गताः ।
द्रष्टुं समीयुस्त्वरिताः कल्किं विष्णुं जगत्पतिम् ॥ १७ ॥

(१७) राजागण जो स्त्री शरीरको प्राप्त हो पद्माकी सखी हो गये थे, वह लोग जगत्पति कल्किभगवानको देखनेके निमित्त शीघ्रतासे आये ।

ताः स्त्रियोऽपि तमालोक्य संस्पृश्य चरणाम्बुजम् ।
पुनः पुंस्त्वं समापन्ना रेवास्नानात्तदाज्ञया ॥ १८ ॥

(१८) ये स्त्रियां भी भगवानकल्किजीको देख एवं उनके चरण स्पर्श कर तथा उनकी आज्ञासे रेवानदी स्नानकर पुरुषत्वको प्राप्त हुई ।

पद्माकल्की गौरकृष्णौ विपरीताम्बरावभौ ।

सखीमुखेन पद्मायाः पाणिग्रहणकाम्यया ।
हरेरागमनं श्रुत्वा सहर्षोऽभूद्बृहद्रथः ॥ ६ ॥

(६) सखीके मुखसे पद्माके पाणिग्रहणकी इच्छासे हरिभगवानका आगमन श्रवणकर बृहद्रथराजा प्रसन्न चित्त हुआ।

पुरोधसा ब्राह्मणैश्च पात्रैर्मित्रैः सुमङ्गलैः ।
वाद्यताण्डवगीतैश्च पूजायोजनपाणिभिः ॥ ७ ॥
जगामानयितुं कल्किं सार्द्धं निजजनैः प्रभुः ।
मण्डयित्वा कारुमतीं पताकास्वर्णतोरणैः ॥ ८ ॥

(७-८) आगे राजाने पुरोहित, ब्राह्मण, परिजन, मित्र बान्धु, बान्धव सहित पूजाकी सामग्री साथ ले माङ्गलिक नृत्य, गीत, वाद्य, करते हुए कल्किजीको लानेके निमित्त यात्रा की। पताका स्वर्ण तोरणसे उस समय कारुमती पुरी विभूषित हुई।

ततो जलाशयाभ्यासं गत्वा विष्णुयशःसुतम् ।
मणिवेदिकयासीनं भुवनैकगतिं पतिम् ॥ ९ ॥

(९) उपरान्त बृहद्रथराजने जलाशयके निकट जाकर देखा कि, विष्णुयश पुत्र भुवनोंके अधिपति विष्णुभगवान मणि वेदीपर विराजमान हैं।

घनाघनोपरि यथा शोभन्ते रुचिराण्यहो ।
विद्युदिन्द्रायुधादीनि तथैव भूषणान्युत ॥ १० ॥

(१०) घने बादलके ऊपर जिस प्रकार मनोहर दामिनी अथवा इन्द्रायुधादि शोभा पाते हैं। उसी प्रकार कृष्णवर्ण कल्किजीके अंगमें भूषणसमूह शोभा पारहे हैं।

शरीरे पीतवासाग्र्यघोरभासा विभूषितम् ।
रूपलावण्यसदने मदनोद्यमनाशने ॥ ११ ॥
ददर्श पुरतो राजा रूपशीलगुणाकरम् ।
साश्रुः सपुलकः श्रीशं दृष्ट्वा साधु तमर्चयत् ॥ १२ ॥

(११-१२) रूप लावण्यके भण्डार, मदन उद्यमको नाश करनेवाले शरीरके अग्र-भागमें पीताम्बर गम्भीर प्रभासे विभूषित हो रहा है। इस प्रकार रूपशील गुणके निधान कल्किभगवानको राजाने सन्मुख देखा। श्रीपति कल्किजीको देखकर राजाने साश्रु पुलकित शरीर हो उनकी विधि विधानसे पूजा की।

ज्ञानागोचरमेतन्मे तवागमनमीश्वर ! ।
यथा मान्धातृपुत्रस्य यदुनाथेन कानने ॥ १३ ॥

(१३) आगे राजाने कहा,—हे जगदीश्वर ! जिस प्रकार मान्धाताके पुत्रसे वनमें यदुनाथ मिले थे, उसी प्रकार ज्ञानगोचर अतीत आपका आगमन मेरे निमित्त हुआ है ।

इत्युक्त्वा तं पूजयित्वा समानीय निजाश्रमे ।
हर्म्यप्रासादसंबाधे स्थापयित्वा ददौ सुताम् ॥ १४ ॥

(१४) यह कह कर उनकी पूजा की और उन्हें अपने आश्रममें ले आये । वहां हर्म्य प्रसादसे शोभित अपने गृहमें वास देकर कन्यादान दिया ।

पद्मां पद्मपलाशाक्षीं पद्मनेत्राय पद्मिनीम् ।
पद्मजादेशतः पद्मनाभायादाद्यथाक्रमम् ॥ १५ ॥

(१५) पद्मज भगवान ब्रह्माके आदेशानुसार पद्मनाभ पद्मनेत्र भगवान कल्कि-जीको पद्मपलाशाक्षी पद्मनि पद्माको यथाविधिसे समर्पण किया ।

कल्किर्लब्ध्वा प्रियां भार्यां सिंहले साधुसत्कृतः ।
समुवास विशेषज्ञः समीक्ष्य द्वीपमुत्तमम् ॥ १६ ॥

(१६) प्यारी भार्याको प्राप्तकर, साधुजनोंसे उत्तम सन्मान पाकर, सिंहलद्वीपको उत्तम स्थान देखकर कल्किभगवानने कुछ दिन तक वहां वास किया ।

राजानः स्त्रीत्वमापन्नाः पद्मायाः सखितां गताः ।
द्रष्टुं समीयुस्त्वरिताः कल्किं विष्णुंजगत्पतिम् ॥ १७ ॥

(१७) राजागण जो स्त्री शरीरको प्राप्त हो पद्माकी सखी हो गये थे, वह लोग जगत्पति कल्किभगवानको देखनेके निमित्त शीघ्रतासे आये ।

ताः स्त्रियोऽपि तमालोक्य संस्पृश्यचरणाम्बुजम् ।
पुनः पुंस्त्वं समापन्ना रेवास्नानात्तदाज्ञया ॥ १८ ॥

(१८) वे स्त्रियां भी भगवानकल्किजीको देख एवं उनके चरण स्पर्श कर तथा उनकी आज्ञासे रेवानदी स्नानकर पुरुषत्वको प्राप्त हुईं ।

पद्माकल्की गौरकृष्णौ विपरीतान्तरावुभौ ।

बहिःस्फुटौ नीलपीत-वासोव्याजेन प्रथयतु ॥ १९ ॥

(१९) पद्माका गौर वर्ण है। कल्किजीका कृष्ण वर्ण है। यह दोनों वर्ण परस्पर विपरीत हैं। सो पद्माके नीलाम्बर तथा कल्किजीके पीताम्बरसे एक बाह्य वर्ण प्रकाशित होकर सबको परस्पर रूपका समन्वय दिखाता है॥

दृष्ट्वा प्रभावं कल्केस्तु राजानः परमाद्भुतम्।
प्रणम्य परया भक्त्या तुष्टुवुः शरणार्थिनः ॥ २० ॥

(२०) राजागण कल्किजीका परम अद्भुत प्रभाव देख शरणागत हो अत्यन्त भक्तिके साथ प्रणाम कर स्तुति करने लगे।

जय २ निजमायया कल्पिताशेषविशेषकल्पनापरिणाम! जलाप्लुतलोकत्रयोपकरणमाकलय्य मनुमनिशम्य परितमविजनाविजनाविर्भूतमहामीनशरीर! त्वं निजकृतधर्म्मसेतुसंरक्षणकृतावतारः ॥ २१ ॥

(२१) स्तुति,-"हे देव! तुम्हारी जय हो! तुम्हारी कल्पनाके बल जगतमें अनेक प्रकारकी विचित्र कल्पनायें कल्पित हो रही हैं। तुम्हारेही प्रभावसे उनकी परिणति होती है। जब त्रिलोकी प्रलयतलमें लुप्त हुई, तब तुमने वेदध्वनि न सुनकर प्राणियोंसे रहित जनशून्य स्थानमें महामूर्ति धारण कर समस्त जीवोंका उपकरण संग्रह किया था। हे देव! तुम्हीं अपने धर्मसेतुकी रक्षार्थ मीन अवतार हुए थे।

पुनरिहदितिज-बल-परिलङ्घित-वासव-सूदनाहत-जित-त्रिभुवन-पराक्रम-हिरण्याक्ष-निघ्नन-पृथिव्युद्धरणसंकल्प-

---

मत्स्यावतार। सूर्यवंशीय राजा मनुने तपबलसे प्रलयके समय स्थावर जङ्गम समस्त भूतग्रामकी रक्षाका वर पाया था। युगान्तरमें कालक्रमसे पितृतर्पण करते समय मनुजीके हाथमें एक मछली आपड़ी। आपने उसके प्राणरक्षार्थ उसको कमण्डलुमें रख दिया। कमण्डलुमें मछली १६ अंगुल बढ़ छोटा स्थान पाकर प्राणरक्षाके लिये रक्षाकरो! रक्षाकरो! कह कर पुकारी। मनुजीने तब उसे निकालकर एक मिट्टीके घड़ेमें डाल दिया। घड़ेमें मछली रात्रिभर रह कर ३ हाथकी हो "रक्षाकरो! रक्षाकरो!" कह कर पुकारने लगी। आगे आपने कुएमें, सरोवरमें, गङ्गाजीमें डाला। सर्वत्रही उसका शरीर बढ़ता गया। अन्तमें मनुजीने उस मछलीको समुद्रमें जा डाला। समुद्रमें भी जब उसका शरीर बढ़ कर नहीं आ सका और रक्षा करो! रक्षाकरो! की ध्वनि आने लगी तब आपने हरि! केशव! वासुदेवादि नाम सम्बोधनकर साक्षात विष्णु भगवान समझ प्रार्थना करना शुरू किया उस समय मत्स्यभगवानने पूर्व दिये वरकी बात मनुराजसे कह कर प्रलय होनेकी सूचना दे उसके रक्षाका उपाय बतलाया। मनुजीने सृष्टिके बीजोंको संग्रह कर संसारके जीवप्रदायक बीजोंकी रक्षा की। मत्स्यावतारका संक्षेप यही वृत्तान्त है।

भिनिवेशेन घृत-कोलावतारः पाहि नः ॥ २२ ॥

(२२) दानव सैन्य जब इन्द्रराजको पराजित करने लगी एवं त्रिभुवनको जीतनेवाला महापराक्रमी हिरण्याक्ष जब देवराजका संहार करनेको चला तब उसका नाशकर पृथ्वीके उद्धारका संकल्पकर आप महावाराह अवतार हुए थे, हे भगवान! वही आप हमारी रक्षा करें।

पुनरिह जलधि-मथनाहृत-देवदानवगण-मन्दराचलानयनव्याकुलितानां साहाय्येनाहृतचित्तः पर्व्वतोद्धरणामृत-प्राशनरचनावतारः-कूर्म्माकारः प्रसीद परेश ! त्वं दीन-नृपाणाम् ॥ २३ ॥

(२३) फिर जब देवता और दानव मिल कर समुद्र मथनमें मन्दराचल स्थापन करनेका स्थान न पाकर व्याकुल हुए, उस समय आपने उनके सहायतार्थ संकल्प कर कूर्मावतार ग्रहण कर पीठपर पर्वत धारण किया। आगे देवताओंको अमृतपान करानेके अभिप्रायसेही आपका कूर्मावतार हुआ, हे परमेश्वर ! अब आप हम दीन हीन राजाओंपर प्रसन्न होवें।

पुनरिह त्रिभुवनजयिनो महाबलपराक्रमस्य हिरण्यकशिपोरर्द्दितानां देववराणां भयभीतानां कल्याणाय दितिसुतवधप्रेप्सुर्ब्रह्मणो वरदानादवध्यस्य न शस्त्रास्त्ररात्रि-दिवास्वर्गमर्त्यपातालतले देवगन्धर्व्वकिन्नरनरनागैरिति विचिन्त्य नरहरिरूपेण नाखाग्रभिन्नोरुं दष्टदन्तच्छदं त्यक्तासुं कृतवानसि ॥ २४ ॥

(२४) फिर जब महाबलवान, महापराक्रमशाली, त्रिभुवनविजयी हिरण्यकशिपु श्रेष्ठ देवतागणको पीड़ित करने लगा एवं देवतागण जब अत्यन्त भयभीत हुए तब आपने देवताओंके मंगलार्थ उस दैत्यराजाके वध करनेका संकल्प किया। दैत्य-राज ब्रह्माके वरसे देवता, गन्धर्व, किन्नर, नर, नागसे एवं शस्त्रास्त्रसे रात्रिमें, दिनमें, स्वर्गलोकमें, मृत्युलोकमें, पाताललोकमें नहीं मरनेवाला अवध्य था। आपने समस्त बातोंका विचारकर नृसिंहमूर्ति धारण की। दैत्यराज आपको देखकर क्रोधातुर हो दांतसे होठोंको काटता हुआ कटिबद्ध हो आपसे युद्ध करनेको तय्यार हुआ। आपने अपने नखोंसे उसके मर्म्मोंको फाड़कर उसे यमलोक पहुंचाया।

पुनरिह त्रिजगज्जयिनो बलेः सत्रे शक्रानुजो वटुवामनोदैत्यसंमोहनाय त्रिपदभूमियाच्ञाच्छलेन विश्वकायस्तदुत्सृष्ट-जल-संस्पर्श-विवृद्धमनोऽभिलाषस्तत्र भूतले बलेर्दौवारिकत्वमङ्गीकृतमुचितं दानफलम् ॥ २५ ॥

(२५) फिर त्रिभुवनविजयी बलिराजके यज्ञमें इन्द्रराजके छोटे भ्राता हो आपने वामनमूर्ति धारण कर दैत्यराजको मोहित करनेके अर्थ तीन पग भूमि मांगी। उत्सर्गके अर्थ जल छोड़तेही जब आपकी अभिलाषा पूर्ण हो गई तब आपने छलसे विराटमूर्ति धारण की। आगे पातालमें त्रिलोकदानके फलरूप बलिके द्वारपाल होकर रहे।

पुनरिह हैहयादिनृपाणाममितबलपराक्रमाणां नानामदोल्लङ्घितमर्य्यादावर्त्मनां निधनाय भृगुवंशजो जामदग्न्यः पितृहोमधेनुहरणप्रवृद्धमन्युवशात्त्रिसप्तकृत्वो निःक्षत्रियां पृथिवीं कृतवानसि परशुरामावतारः ॥ २६ ॥

(२६) पुनः जब अत्यन्त बलवान पराक्रमशाली उन्मत्त हयहयादि राजाओंने धर्म्मकी मर्यादाको उलङ्घन किया, तब उनका नाश करनेको आपने भृगुवंशावतंश परशुराम रूपसे अवतार लिया था। उस समय पिताकी होमधेनु हरण हो जानेपर अत्यन्त क्रोधित हो आपने इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियहीन कर दिया था।

पुनरिह पुलस्त्यवंशावतंसस्य विश्रवसः पुत्रस्य निशाचरस्य रावणस्य लोकत्रयतापनस्य निधनमुररीकृत्य रविकुलजातदशरथात्मजो विश्वामित्रादस्त्राण्युपलभ्य वने सीताहरणवशात्प्रवृद्धमन्युना अम्बुधिं वानरैर्निबध्य सगणं दशकन्धरं हतवानसि रामावतारः ॥ २७ ॥

(२७) पुनः जब पुलस्त्यवंशभूषण रूप विश्रवामुनि पुत्र निशाचर रावणके प्रतापसे त्रिलोक संतापित हुआ तब उसका बध करनेको आपने सूर्य्यकुलोद्भव राजा दशरथजीके यहां जन्म ग्रहण किया था। तदनन्तर विश्वामित्रजीसे अस्त्र विद्या सीख बन जानेपर रावणने सीताजीका हरण किया, उससे आप क्रोधित हो वानरोंकी सेना एकत्रित करके वंश सहित उसका नाश किया था।

पुनरिह यदुकुल-जलधिकलानिधिः सकलसुरगणसेवित-

पादारविन्दद्वन्द्वः विविधदानवदैत्यदलनलोकत्रयदुरित-तापनी वसुदेवात्मजो रामावतारो बलभद्रस्त्वमसि ॥ २८ ॥

(२८) पुनः आपने यदुकुल समुद्रके चन्द्रमा वसुदेव पुत्र रूपसे कृष्णावतार ले अनेक दैत्य दानव गणको विनाश कर त्रिलोकके पापोंको दूर किया था। इससे समस्त देवतागण आपके उस कृष्णावतार पदारविन्दकी सेवा करने लगे,—उसी समय आपने बलदेव रूपसे भी अवतार लिया था।

पुनरिह विधिकृत-वेदधर्म्मानुष्ठान-विहित-नानादर्शनसं-घृणः संसारकर्म्मत्यागविधिना ब्रह्माभासविलासचातुरी प्रकृतिविमाननामसम्पादयन् बुद्धावतारस्त्वमसि ॥ २९ ॥

(२९) पुनः आपनेही ब्रह्माके किये हुए वैदिक धर्म्मानुष्ठानमें अनेक प्रकारकी घृणा देख संसार त्यागके निमित्त मिथ्या प्रपंचको अलग करनेका संकल्प कर उप-देशार्थ बुद्ध अवतार हुए और प्राकृतिक विषय की अवमानना नहीं की।

अधुना कलिकुलनाशावतारो बौद्धपाखण्डम्लेच्छादी-नाञ्च वेदधर्म्मसेतुपरिपालनाय कृतावतारः कल्किरूपेणा-स्मान् स्त्रीत्वनिरयादुद्धृतवानसि तवानुकम्पां किमिह कथयामः ॥ ३० ॥

(३०) इस समय आप कलिकुल ध्वंस करनेके अर्थ तथा बौद्ध, पाखण्डी और म्लेच्छादिके शासनके निमित्त कल्कि रूपसे अवतीर्ण होकर वैदिक धर्म रूप सेतुकी रक्षा करते हैं। आपनेही हम सबको स्त्रीपन रूप नरकसे उद्धार किया है। अतएव हम लोग आपके इस अनुग्रहका वर्णन करनेमें असमर्थ हैं।

क्व ते ब्रह्मादीनामविदितविलासावतरणं
क्व नः कामा वामाकुलितमृगतृष्णार्त्तमनसाम्।
सुदुष्प्राप्यं युष्मच्चरण-जलजालोकनमिदं
कृपापारावारः प्रमुदितदृशाश्वासय निजान् ॥ ३१ ॥

(३१) ब्रह्मा आदि देवतागण भी आपकी लीला नहीं जान सकते हैं, अतएव आ-पको अवतार विषयकी कामना कदापि नहीं हो सकती। हम लोग स्त्री दर्शन करनेसे ही मदनवाणसे जर्जर होनेवाले तथा मृगतृष्णासे पीड़ित चित्तवाले विषयी जीव

हैं। हमारे लिये आपके चरण कमलका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है । हे कृपासिन्धो। हम आपके अनुगामी हैं। आप एकवार कृपाकटाक्षसे देखकर हमें ढाढस देवें।

इति श्रीसानुवादे कल्किपुराणऽनुभागवते भविष्य पद्माकल्कि-साक्षात्-संवादो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

द्वितीयांशः ।

चतुर्थ-अध्याय

सूत उवाच ।

श्रुत्वा नृपाणां भक्तानां वचनं पुरुषोत्तमः ।
ब्राह्मणक्षत्रविट्शूद्र-वर्णानां धर्म्ममाह यत् ॥ १ ॥

(१) सूतजीने कहा—पुरुषोत्तम कल्किजी भक्त राजाओंके वचन सुन कर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णोंके धर्म्म वर्णन किये ।

प्रवृत्तानां निवृत्तानां कर्म्म यत्परिकीर्त्तितम् ।
सर्वं संश्रावयामास वेदानामनुशासनम् ॥ २ ॥

(२) संसारासक्त तथा संसार विरागीजनोंके लिए समस्त वेदोक्त कर्म्म उनको सुनाये।

इति कल्केर्वचः श्रुत्वा राजानो विशदाशयाः ।
प्रणिपत्य पुनः प्राहुः पूर्व्वान्तु गतिमात्मनः ॥ ३ ॥

(३) कल्किजीके यह वचन सुनकर राजाओंके हृदय पवित्र हुए । तत्पश्चात उन्होंने कल्किजीको पुनः नमस्कारकर अपनी विगत अवस्थाके विषयमें प्रश्न किया।

स्त्रीत्वं वाप्यथवा पुंस्त्वं कस्य वा केन वा कृतम् ।
जरा-यौवन-बाल्यादि सुखदुःखादिकं च यत् ॥ ४ ॥
कस्मात्कुतो वा कस्मिन् वा किमेतदिति वा विभो ।
अनिर्णीतान्यविदितान्यपि कर्म्माणि वर्णय ॥ ५ ॥

(४-५) मनुष्यगण स्त्रीत्व और पुरुषत्व भेदसे कैसे निवृत्त होते हैं ? बाल्यावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था और सुख दुःखादिके कारण क्या हैं ? इनके अतिरिक्त अन्यान्य विषय जिन्हें हम नहीं जानते हैं, उन्हें भी आप वर्णन करें।

(तदा तदाकर्ण्य कल्किरनन्तं मुनिमस्मरत्) ।
सोऽप्यनन्तो मुनिवरस्तीर्थपादो बृहद्व्रतः ॥ ६ ॥
कल्केर्दर्शनतो मुक्तिमाकलय्यागतस्त्वरन् ।
समागत्य पुनः प्राह किं करिष्यामि कुत्र वा ।
यास्यामीति वचः श्रुत्वा कल्किः प्राह हन्मुनिम् ॥ ७ ॥

(६-७) (कल्किजीने यह बचन सुन कर अनन्त नामक मुनिका स्मरण किया) स्मरण करतेही बहुकालसे तीर्थवासी व्रतधारी मुनिश्रेष्ठ अनन्तजी कल्किजीके दर्शनसे अपनी मुक्ति होना जान कर शीघ्रता पूर्वक वहां पर आये। क्योंकि उनको मुक्ति पानेका और दूसरा उपाय नहीं था। वे कल्किजीके समीप पहुंच कर बोले,— मुझे क्या करना होगा ? कहां पर जाना होगा ? आज्ञा कीजिये। यह बचन सुन कल्किजीने हँस कर मुनिसे कहाः—

कृतं दृष्टं त्वया ज्ञातं सर्व्वं याह्यनिवर्त्तकम् ।
अदृष्टमकृतञ्चेति श्रुत्वा हृष्टमना मुनिः ॥ ८ ॥

(८) हमारे समस्त किये हुए कर्म्म तुमने देखा है और तुम्हें सब ज्ञात है। भाग्यका खण्डन कोई भी नहीं कर सकता और विना कर्म्म किये किसीको उसके फलकी प्राप्ति भी नहीं होती। महर्षिजी यह बचन सुन कर आनन्दित हुए।

गमनायोद्यतं तं तु दृष्ट्वा नृपगणास्ततः ।
कल्किं कमलपत्राक्षं प्रोचुर्विस्मितचेतसः ॥ ९ ॥

(९) पुनः जब वे जानेको उद्यत हुए तब राजाओंने उन्हें देख विस्मित चित्तसे कमल दललोचन कल्किजी से कहाः—

राजान ऊचुः—किमनेनापि कथितं त्वया वा किमुतान्युत।
सर्व्वं तच्छ्रोतुमिच्छामः कथोपकथनं द्वयोः ॥ १० ॥

(१०) राजा बोले,—महर्षिजीने क्या कहा है ? और आपने उनको क्या उत्तर दिया है ? आपका परस्पर किस विषयमें वार्तालाप हुआ ? सो हम सुनना चाहते हैं।

नृपाणां तद्वचः श्रुत्वा तानाह मधुसूदनः ।
पृच्छतामुं मुनिं शान्तं कथोपकथनाहृताः ॥ ११ ॥

(११) राजाओंके यह वचन सुन कर मधुसूदन कल्किजी बोले,-हमारे कथोप-कथन विषय इन शान्त हृदयवाले मुनिसे पूछो ।

इति कल्केर्वचो भूयः श्रुत्वा ते नृपसत्तमाः ।
अनन्तमाहुः प्रणताः प्रश्नपारतितीर्षवः ॥ १२ ॥

(१२) राजागण कल्किजीके यह वचन सुन कर प्रश्नका भेद जाननेके अर्थ प्रणाम पूर्व्वक अनन्तजीसे जिज्ञासा किया ।

राजान ऊचुः-मुने! किमत्र कथनं कल्किना धर्मवर्मणा।
दुर्बोधः केन वा जातस्तत्त्वं वर्णय न प्रभो ! ॥ १३ ॥

(१३) राजा बोले,--हे महर्षे ! धर्म्मके वर्मरूप कल्किजीसे आपका वार्तालाप अत्यन्त दुर्बोध रूपसे क्यों हुआ है ? हे प्रभो ! आप उसका गूढ़ वृत्तान्त हम लोगोंसे वर्णन कीजिये ।

मुनिरुवाच-पुरिकायां पुरि पुरा पिता मे वेदपारगः ।
विद्रुमो नाम धर्म्मज्ञः ख्यातः परहिते रतः ॥ १४ ॥

(१४) मुनिने कहाः-पूर्वकालमें पुरीका नामक पुरीमें वेद वेदाङ्ग जाननेवाले परम धार्मिक कोई महर्षिजी वास करते थे। उनका नाम विद्रुम था। वही हमारे पिता थे ।

सोमा मम विभो ! माता पतिधर्म्मपरायणा ।
तयोर्वयःपरिणतौ काले षण्डाकृतिस्त्वहम् ॥ १५ ॥

(१५) हमारी माताका नाम सोमा था। वह पतिधर्म-परायणा थीं, हमारे पिता माताके समर्थ होनेपर हमारा जन्म हुआ। परन्तु मैं क्लीव हुआ।

संजातः शोकदः पित्रोर्लोकानां निन्दिताकृतिः ।
मामालोक्य पिता क्लीबं दुःखशोक भयाकुलः ॥ १६ ॥
त्यक्त्वा गृहं शिववनं गत्वा तुष्टाव शङ्करम् ।
संपूज्येशं विधानेन धूपदीपानुलेपनैः ॥ १७ ॥

(१६-१७) हमारा जन्म होनेपर पिता माता असीम दुःख तथा शोकको प्राप्त हुए। मेरा आकार देखकर सबही निन्दा करने लगे। पिता हमको षण्डाकार तथा क्लीब देख कर दुःख शोक और भयसे व्याकुल हो गृह त्याग शिवबनमें जा कर धूप दीप और चन्दन आदि द्वारा विधि पूर्वक महादेवजीकी पूजा करके स्तुति करने लगे।

विद्रुम उवाच—शिवं शान्तं सर्व्वलोकैकनाथं भूतावासं वासुकीकण्ठभूषम् । जटाजूटाबद्धगङ्गातरङ्गं बन्दे सान्द्रानन्दसन्दोहदक्षम् ॥ १८ ॥

(१८) विद्रुम बोलेः—जो शान्त स्वरूप हैं। जो समस्त लोकके स्वामी हैं। जो समस्त प्राणियोंके आश्रय हैं। वासुकी जिनके कण्ठमें भूषण रूपसे सुशोभित हैं। गंगा तरंग जिनके जटाजालमें बद्ध है। उन आनन्द भण्डारके देनेवाले महादेवजीको नमस्कार करता हूं।

इत्यादि बहुभिः स्तोत्रैः स्तुतः स शिवदः शिवः ।
वृषारूढः प्रसन्नात्मा पितरं प्राह मे वृणु ॥ १९ ॥

(१९) मंगलदायक महादेवजी इस प्रकार विविध स्त्रोतोंसे सन्तुष्ट होकर वृषभारूढ़ हो प्रसन्नता पूर्वक हमारे पितासे बर मांगनेको कहा।

विद्रुमो मे पिता प्राह मत्पुंस्त्वं तापतापितः ।
हसञ्छिवो ददौ पुंस्त्वं पार्वत्या प्रतिमोदितः ॥ २० ॥

(२०) हमारे पिता विद्रुमजी बोलेः— हमारा पुत्र क्लीब है इसलिये मैं अत्यन्त सन्तापित हूं। महादेवजीने हंसकर हमें पुरुष होनेका वर प्रदान किया। और पार्वतीजीने भी इस वरदानका अनुमोदन किया।

मम पुंस्त्वं वरं लब्ध्वा पितायातः पुनर्गृहम् ।
पुरुषं मां समालोक्य सहर्षः प्रियया सह ॥ २१ ॥

(२१) पुनः हमारे पिता मेरे पुरुषत्व रूप वरको प्राप्त कर घर आये। और हमें पुरुषाकार देखकर हमारे पिता माता अत्यन्त आनन्दित हुए।

ततः पूर्ववयसौ तौ तु पितरौ द्वादशाब्दके ।
विवाहं मे कारयित्वा बन्धुभिर्मदमापतुः ॥ २२ ॥

(२२) पुनः जब मेरी अवस्था बारह वर्षकी हुई तब हमारे पिता माताने हमारा विवाह कर दिया और बन्धु बान्धवोंके सहित परम हर्षित हुए ।

यज्ञरातसुतां पत्नीं मानिनीं रूपशालिनीम् ।
प्राप्याहं परितुष्टात्मा गृहस्थः स्त्रीवशोऽभवम् ॥ २३ ॥

(२३) मानिनी रूप यौवनशाली, यज्ञरातकी पुत्रीको भार्या पा सन्तुष्ट हृदय गृहस्थाश्रममें मैं वास करने लगा और क्रमशः स्त्रीके वश हो गया ।

ततः कतिपये काले पितरौ मे मृतौ नृपाः ।
पारलौकिककार्य्याणि सुहृद्भिर्ब्राह्मणैर्वृतः ॥ २४ ॥

(२४) तदनन्तर कुछ काल व्यतीत होनेपर हमारे माता पिता स्वर्गवासी हुए । मैंने सुहृद और ब्राह्मणोंके साथ उनकी पारलौकिक क्रिया की ।

तयोः कृत्वा विधानेन भोजयित्वा द्विजान्बहून् ।
पित्रोर्वियोगतप्तोऽहं विष्णुसेवापरोऽभवम् ॥ २५ ॥

(२५) पुनः मैंने पिता माताकी और्द्धदैहिक क्रिया करके बहुतसे ब्राह्मणोंको भोजन कराया । अनन्तर पिता माताके वियोगसे हृदयमें सन्ताप होनेसे मैंने विष्णुजीकी आराधना करना आरम्भ की ।

तुष्टो हरिर्मे भगवाञ्जपपूजादिकर्मभिः ।
स्वप्ने मामाह मायेयं स्नेहमोहविनिर्मिता ॥ २६ ॥

(२६) मेरे जप पूजा आदि कर्म्मसे भगवान हरि संतुष्ट हो कर मुझसे स्वप्नमें कहा कि इस संसारमें स्नेह, ममता आदि समस्त हमारी ही माया है ।

अयं पितेयं मातेति ममताकुलचेतसाम् ।
शोकदुःखभयोद्वेगजरामृत्युविधायिका ॥ २७ ॥

(२७) यह हमारे पिता हैं, यह हमारी माता हैं, ऐसी ममतासे जिनका मन आकुलित होता है, वही मेरी माया द्वारा शोक, दुःख, भय, उद्वेग, जरा, मृत्यु आदिका क्लेश अनुभव करते हैं ।

श्रुत्वेति वचनं विष्णोः प्रतिवादार्थमुद्यतम् ।
मामालक्ष्यान्तर्हितः स विनिद्रोऽहं ततोऽभवम् ॥ २८ ॥

(२८) मैं विष्णुजीका यह वचन सुनकर ज्योंही प्रतिवाद करनेको उद्यत हुआ त्योंही वह अन्तर्हित हो गये और मेरी निद्रा भंग हो गई ।

सविस्मयः सभार्य्योऽहं त्यक्त्वा तां पुरिकां पुरीम् ।
पुरुषोत्तमाख्यं श्रीविष्णोरालवञ्चागमं नृपाः ! ॥ २९ ॥

(२९) हे राजागण ! पुनः मैं विस्मयापन्न हो पुरिकापुरी त्याग भार्य्या सहित पुरुषोत्तम नामक श्रीनारायणजीके स्थानमें आया ।

तत्रैव दक्षिणे पार्श्वे निर्माया श्रममुत्तमम् ।
सभार्य्यः सानुगामात्यः करोमि हरिसेवनम् ॥ ३० ॥

(३०) मैं उस पुरुषोत्तम स्थानके दक्षिण भागमें उत्तम आश्रम निर्म्माणकर भार्या और अनुचरोंके सहित नारायणजीकी सेवा करने लगा ।

मायासंदर्शनाकाङ्क्षी हरिसद्मनि संस्थितः ।
गायन्नृत्यञ्जपन्नाम चिन्तयच्छमनापहम् ॥ ३१ ॥

(३१) मैं विष्णुजीके वासस्थानमें स्थित होकर उनकी माया देखनेकी इच्छासे नृत्य, गान और जप पूर्व्वक यमराजका भय नाश करनेवाले श्रीहरिजीका ध्यान करने लगा ।

एवं वृत्ते द्वादशाब्दे द्वादश्यां पारणादिने ।
स्नातुंकामः समुद्रेऽहं बन्धुभिः सहितो गतः ॥ ३२ ॥

(३२) इसी प्रकार बारह वर्ष व्यतीत होनेपर एक समय द्वादशीके पारण दिन मैं बंधु जनोंके साथ स्नान करनेकी अभिलाषासे समुद्रके तट पर गया ।

तत्र मग्नं जलनिधौ लहरीलोलसंकुले ।
समुत्थातुमशक्तं मां प्रतुदन्ति जलेचराः ॥ ३३ ॥

(३३) तदन्तर मैंने ज्योंही समुद्रमें गोता मारा त्योंही भयंकर तरंगमालासे आकुलित होने पर पुनः मुझमें उठनेकी सामर्थ नहीं रही । मच्छ आदि जलचर जन्तुगण मुझको व्यथित करने लगे ।

पुरुषोत्तम । उड़ीसा देशमें ऋषिकुल्या और वैतरणी नदियोंके बीचका स्थान पुरुषोत्तमतीर्थ नामसे प्रसिद्ध है ।

निमज्जनो मज्जनेन व्याकुली कृतचेतसम् ।
जलहिल्लोलमिलनदलिताङ्गमचेतनम् ॥ ३४ ॥

(३४) मैं कभी उछलने लगा । कभी डूबने लगा । इस प्रकार मेरा अन्तःकरण व्याकुल हो कर मैं जलतरंगसे अचेतन होगया और मेरे समस्त अंग सिथिल होगये।

जलधेर्दक्षिणे कूले पतितं पवनेरितम् ।
मां तत्र पतितं दृष्ट्वा वृद्धशर्मा द्विजोत्तमः ॥ ३५ ॥
सन्ध्यामुपास्य सघृणः स्वपुरं मां समानयत् ।
स वृद्धशर्मा धर्मात्मा पुत्रदारधनान्वितः ।
कृत्वारुग्णन्तु मां तत्र पुत्रवत्पर्य्यपालयत् ॥ ३६ ॥

(३५-३६) फिर मैं पवनके हिल्लोलसे बहकर समुद्रके दक्षिण तट पर आलगा। वृद्धशर्मा नामक एक ब्राह्मण मुझे ऐसी अवस्था सम्पन्न उस स्थानमें पड़ा देख कर सन्ध्योपासन करनेके अनन्तर कृपापूर्वक मुझे अपने घरपर लेगये। धर्मात्मा और स्त्री-पुत्र वाले धनाढ्य वृद्धशर्मा मुझे आरोग्य करके पुत्रवत् लालन पालन करने लगे।

अहन्तु तत्र दीनात्मा दिग्देशाभिज्ञ एव न ।
दम्पती तौ स्वपितरौ मत्वा तत्रावसं नृपाः ॥ ३७ ॥

(३७) हे राजागण ! मैं उस स्थानमें दिग्देश कुछभी न जान सका इस कारण चित्तमें अत्यन्त दुःखित हो ब्राह्मण दम्पतिकोंही पिता माता समझ वहांपर ही वास करने लगा।

स मां विज्ञाय बहुधा वेदधर्म्मेष्वनुष्ठितम् ।
प्रददौस्वां दुहितरं विवाहे विनयान्वितः ॥ ३८ ॥

(३८) उस ब्राह्मणने मुझे अनेक रीतीसे वेदोक्त, धर्म्मसे दीक्षित जान कर विनय युक्त हो अपनी कन्याके साथ मेरा विवाह कर दिया।

लब्ध्वा चामीकराकारां रूपशीलगुणान्विताम् ।
नाम्ना चारुमतीं तत्र मानिनीं विस्मितोऽभवम् ॥ ३९ ॥

(३९) ब्राह्मणकी कन्याका नाम चारुमती था। तपाये हुए सुवर्ण के समान रंग वाली रूप, गुण, शीलसम्पन्न और सन्मानके योग्य स्त्री पाकर मैं अत्यन्त विस्मित हुआ।

तयाहं परितुष्टात्मा नानाभोगसुखान्वितः।
जनयित्वा पञ्च पुत्रान्संमदेनावृतोऽभवम् ॥ ॥ ४०

(४०) चारुमती मुझको सर्वदा सन्तुष्ट करने लगी और मैं उस स्थानमें अनेक प्रकारके सुख सम्भोग करने लगा। समयानुसार मेरे पांच पुत्र उत्पन्न हुए और निरन्तर मेरा आनन्द बढ़ता गया।

जयश्च विजयश्चैव कमलो विमलस्तथा।
बुध इत्यादयः पञ्च विदितास्तनया मम ॥ ४१ ॥

(४१) मेरे पांच पुत्रोंके नाम-- जय, विजय, कमल, विमल और बुध हुए।

स्वजनैर्बन्धुभिः पुत्रैर्धनैर्नानाविधैरहम्।
विदितः पूजितो लोके देवैरिन्द्रो यथा दिवि ॥ ४२ ॥

(४२) मैं पुत्र आत्मीय वन्धु जनसे युक्त तथा अनेक प्रकारके धनका स्वामी हो देवराज इन्द्रकी भांति सबका पूज्य और सर्वत्र विख्यात हुआ।

बुधस्य ज्येष्ठपुत्रस्य विवाहार्थं समुद्यतम्।
दृष्ट्वा द्विजवरस्तुष्टो धर्मसारो निजां सुताम् ॥ ४३ ॥
दित्सुः कर्माणि वेदज्ञश्चकाराभ्युदयान्यपि।
वाद्यैर्गीतैश्च नृत्यैश्च स्त्रीगणैःस्वर्णभूषितैः ॥ ४४ ॥

(४३-४४) मुझे अपने बड़े पुत्र बुधके विवाहकी इच्छा होनेपर धर्म्मसार नामक ब्राह्मणने अपनी कन्याको दान करनेकी अभिलाषा प्रकट की और उसने कन्याके विवाहार्थ वेदविद् ब्राह्मण द्वारा आभ्युदयिक कर्म्म पुरा किया। स्वर्णभूषणसे विभूषित अनेक ललनाएं बाजेगाजे से नाच, गान, करने लगीं।

अहञ्च पुत्राभ्युदये पितृदेवर्षितर्पणम्।
कर्त्तुं समुद्रवेलायां प्रविष्टः परमादरात् ॥ ४५ ॥

(४५) मैं पुत्रकी अभ्युदय कामनासे पितृतर्पण, देवतर्पण और ऋषितर्पण करनेके निमित्त परम आदरपूर्वक समुद्र तट पर गया।

आभ्युदयिक। अभ्युदयकी इच्छासे अन्नप्राशन, यज्ञोपवीत, विवाहादि शुभ कर्म्मोंके आरम्भमें आभ्युदयिक श्राद्ध करना होता है। उसी श्राद्धका नाम अभ्युदयिक है।

वेलालोलायिततनुर्जलादुत्थाय सत्वरः ।
तीरे सखीन्स्नानसन्ध्या-परान्वीक्ष्याहमुन्मनाः ॥ ४६ ॥

(४६) स्नान तर्पणके अनन्तर शीघ्रही जलसे निकलकर तटकी ओर गमन करते देखा कि मेरे पूर्वाश्रमके भाई बन्धु स्नान और सन्ध्या आन्हिक कर रहे हैं। यह देखकर मैं बहुतही उद्विग्न हुआ।

सद्यः समभवं भूपाः ! द्वादश्यां पारणाहृतान् ।
पुरुषोत्तमसंवासान्विष्णुसेवार्थमुद्यतान् ॥ ४७ ॥

(४७) हे नृपतिगण ! पुरुषोत्तमवासी ब्राह्मणोंको विष्णुजीकी सेवा और द्वादशीके पारणार्थ उद्यत देखकर मेरे चित्तमें अकथनीय विस्मय उत्पन्न हुआ।

तेऽपि मामग्रतः कृत्वा तद्रूपवयसां निधिम् ।
विस्मयाविष्टमनसं दृष्ट्वा मामब्रुवञ्जनाः ॥ ४८ ॥

(४८) मेरे रूप तथा मेरी अवस्थामें पूर्व्वसे कुछ भी परिवर्त्तन नहीं हुआ था। पुरुषोत्तमवासियोंने सन्मुखमें मुझे इस प्रकार विस्मयापन्न देखकर जिज्ञासा किया।

अनन्त ! विष्णुभक्तोऽसि जले किं दृष्टवानिह ।
स्थले वा व्यग्रमनसं लक्षयामः कथं तव ॥ ४९ ॥

(४९) हे अनन्त ! तुम परम वैष्णव हो। तुमने क्या जल अथवा स्थलमें कुछ देखा है ? किस कारण तुम्हारा चित्त व्यग्र दिखाई देता है ?

पारणं कुरु तद्ब्रूहि त्यक्त्वा विस्मयमात्मनः ।
तानब्रुवमहं नैव किञ्चिद्दृष्टं श्रुतं जनाः ॥ ५० ॥
कामात्मा तत्कृपणधीर्मायासन्दर्शनाहृतः ।
तया हरेर्माययाहं मूढो व्याकुलितेन्द्रियः ॥ ५१ ॥

(५०-५१) यदि देखा हो तो कहो और विस्मय त्यागकर पारणा करो। मैंने उनसे कहा, कि मुझे कुछ भी दिखाई सुनाई नहीं दिया है परन्तु मैं अत्यन्त काम मोहित हूं और मेरा अन्तःकरण अत्यन्त दुर्बल है। मुझे हरिमाया देखनेकी अभिलाषा हुई थी। इस समय मैं उन्हीं हरिभगवानकी मायासेही विमूढ़ हो गया हूं । मेरी इन्द्रियां व्याकुल होरही हैं।

न शर्म्म वेद्मि कुत्रापि स्नेहमोहवशं गतः ।
आत्मनो विस्मृतिरियं को वेद विदितां तु ताम् ॥ ५२॥

(५२) मैं स्नेह और मोहजाल में पड़ विवश होगया परन्तु मुझे हरिमाया जालमें पड़ा हुआ किसीने न जाना।

इति भार्य्याधनागार-पुत्रोद्वाहानुरक्तधीः ।
अनन्तोऽहं दीनमना न जाने स्वापसम्मितम् ॥ ५३ ॥

(५३) इसी रीतिसे स्त्री, धनागार और पुत्रके विवाहादि विषयमें मेरा मन अत्यन्त अनुरक्त होनेपर मैं बहुतही शोकित और दुखित होने लगा। मैं "अनन्त" कौन हूं, क्या कहूं,—मैं कुछ भीन समझ सका। सब विषय मुझे स्वप्नवत् प्रतीत हुए।

मां वीक्ष्य मानिनी भार्य्या विवशं मूढ़वत्स्थितम् ।
क्रन्दन्ती किमहोऽकस्मादालपन्ती ममान्तिके ॥ ५४ ॥

(५४) इसी अवसरमें मेरी अभिमानी भार्य्या मुझे विवश और मूढ़के समान स्थित देखकर "हाय! अचानक क्या हुआ" कहती और रोती हुई मेरे समीप आई।

इह तां वीक्ष्य तांस्तत्र स्मृत्वा कातरमानसम् ।
हंसोऽप्येको बोधयितुमागतो मां सदुक्तिभिः ॥ ५५ ॥
धीरो विदितसर्व्वार्थः पूर्णः परमधर्म्मवित् ॥ ५६ ॥
सूर्य्याकारं तत्त्वसारं प्रशान्तं दान्तं शुद्धं लोकशोक-क्षयिष्णुम् । ममाग्रे तं पूजयित्वा मदङ्गाः पप्रच्छुस्ते मच्छुभध्यानकामाः ॥ ५७ ॥

(५५-५६-५७) इस स्थानमें मैं अपनी पूर्व्व स्त्रीको देख अपने उन स्त्री पुत्रोंका स्मरण करके अत्यन्त कातर और दुःखित होने लगा। उसी समय धीर, सर्वज्ञ, परम पूर्ण धार्मिक, सूर्य्यके समान तेजस्वी, सत्व गुणावलम्बी, शान्त, शुद्ध और सब-का शोक दुःख दूर करने वाले एक परमहंस श्रेष्ठ उक्ति द्वारा मुझको समझानेके लिये उसी स्थानमें आये। मेरे कुटुम्बीगणने मेरे सन्मुख स्थित परमहंसकी पूजा-करके उनसे पूछा "किस प्रकार इनका कल्याण होगा?"

इति श्रीसानुवादे कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्य पद्माकल्कि-साक्षात्-संवादो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ ४ ॥

द्वितीयांशः ।

पञ्चम-अध्याय

सूत उवाच ।

उपविष्टे तदा हंसे भिक्षां कृत्वा यथोचिताम् ।
ततः प्राहुरनन्तस्य शरीरारोग्यकाम्यया ॥ १ ॥

(१) सूतजी बोले,– परमहंस यथोचित भिक्षा पाकर बैठे। पुरुषोत्तम तीर्थवासी ब्राह्मणने पूछा, कि अनन्त किस प्रकारसे आरोग्य होगा ?

हंसस्तेषां मतं ज्ञात्वा प्राह मां पुरतः स्थितम् ।
तव चारुमती भार्य्या पुत्राः पञ्च बुधादयः ॥ २ ॥
धनरत्नान्वितं सद्म सम्बाधं सौधसंकुलम् ।
त्यक्त्वा कदागतोऽसीह पुत्रोद्वाहदिने न तु ॥ ३ ॥

(२-३) परमहंस उनका अभिप्राय समझ गये और मुझे सन्मुख देख मेरी ओर दृष्टिकर बोलेः– हे अनन्त ! चारुमती नामक अपनी भार्य्या, बुध आदि पांचपुत्र, अटा अटारियोंसे सुशोभित अनेक प्रकारके धन रत्न परिपूर्ण परस्पर सम्मिलित अपूर्वगृह आदिको छोड़कर यहांपर कब आयेहो ? आज क्या तुह्मारे पुत्रके विवाहका दिन है ?

समुद्रतीरसञ्चारः पुराद्धर्म्मजनादृतः ।
निमन्त्र्य मामिहायातः शोकसंविग्नमानसः ॥ ४ ॥

(४) आज भी तुम्हें समुद्र तटपर भ्रमण करते हुए देखा है। वहांके समस्त धार्मिकजन तुह्मारा आदरही किया करते हैं हमको भी आज निमंत्रण दिया है। इस समय तुम अपनी पुरीसे यहां आयेहो, परन्तु देखता हूं, कि तुम्हारा अन्तःकरण शोकसे अत्यन्त सन्तापित होरहा है।

त्वञ्च सप्ततिवर्षीयस्तत्र दृष्टो मया प्रभो ! ।
त्रिंशद्वर्षीयवत्कस्मादिति मे संभ्रमो महान् ॥ ५ ॥

कलापग्राम । हिम्मालय पर्वतके दक्षिणमें है । यदुकुलका क्षय होनेपर श्रीकृष्णजीकी रानी सत्यभामा सत्राजितकी भगिनी इसी ग्राममें तप करने गई थीं ।

(५) हे ज्ञानिन्! मैंने वहां तुमको सत्तर वर्षका वृद्ध देखा है, परन्तु इस समय यहां तुम वीस वर्षके युवक क्यों दिखाई पड़ते हो?

इयं भार्य्या सहाया ते न तत्रालोकिता क्वचित्।
अहं वा क्व कुतस्तस्मात्कथं वा केन काशितः॥ ६॥

(६) मैं देखता हूं, कि यह नारी तुम्हारी भार्य्या और सहाय है परन्तु इसको मैंने वहां कभी नहीं देखा था। मैं भी कहांसे किस प्रकार किस स्थानपर आया और कौन मुझको यहां पर लाया?

स एव वा न वापि त्वं नाहं वा भिक्षुरेव सः।
आवयोरिह संयोगश्चेन्द्रजाल इवाभवत्॥ ७॥

(७) तुम क्या वही अनन्त हो अथवा अन्य कोई हो? मैं भी क्या वही भिक्षुक हूं अथवा अन्य कोई हूं? हमारा तुम्हारा दोनोंका इस स्थानपर मिलना इन्द्रजालकी समान जान पड़ता है।

त्वं गृहस्थः स्वधर्म्मज्ञो भिक्षुकोऽहं परात्मकः।
आवयोरिह संवादो बालकोन्मत्तयोरिव॥ ८॥

(८) तुम स्वधर्म्मनिष्ठ गृहस्थ हो, मैं परमार्थ चिन्तामें तत्पर भिक्षुक ब्राह्मण हूं। यहांपर हम दोनोंका कथोपकथन बालक और उन्मत्तके समान असंगत जान पड़ता है।

तस्मादीशस्य मायेयं त्रिजन्मोहकारिणी।
ज्ञानाप्राप्याद्वैतलभ्या मन्येहमिति भो द्विज!॥ ९॥

(९) हे ब्रह्मन्! मुझे जान पड़ता है, कि यह जगदीश्वर विष्णुजीकी माया है। इससे ही त्रिलोकके प्राणी मोहित हुए रहते हैं। साधारण ज्ञानसे इसका रहस्य समझमें नहीं आसकता। अद्वैत ज्ञान होनेपर यह माया पूर्णतः समझमें आजाती है

इति भिक्षुः समाश्राव्य यद्दत्यत्प्राह विस्मितः।
मार्कण्डेय! महाभाग! भविष्यं कथयामि ते॥ १०॥

(१०) भिक्षुक परमहंस मुझे विस्मयापन्न अंतःकरणसे यह कहकर मार्कण्डेयसे बोले,—हे महाभाग! मार्कण्डेय! तुमसे भविष्यकी कथा कहता हूं। श्रवण करो!

प्रलये या त्वया दृष्टा पुरुषस्योदरान्तरे।

सा माया मोहजनिका पन्थानं गणिका यथा ॥ ११ ॥

(११) सुना होगा, कि प्रलयके समय परम पुरुष उदराश्रित जलमें राजमार्ग स्थित वेश्याकी भांति सबको मोहित करनेवाली माया रहा करती है ।

तमोह्ययनन्तसन्तापा नोदनोद्यतमक्षरी ।
ययेदमखिलं लोकमावृतया वस्थयास्थितम् ॥ १२ ॥

(१२) यही माया त्रिलोकीमें व्याप्त होकर उसकी स्थिति करती है। यही माया तमोगुण रूप होकर सबको मिथ्या संसारमें चलाती है और यही माया अनंत संतापका कारण है। इसका नाश कोई भी नही कर सका है ।

लये लीने त्रिजगति ब्रह्मतन्मात्रतां गतः ।
निरुपाधौ निरालोके सिसृक्षुरभवत् परः ॥ १३ ॥
ब्रह्मण्यपि द्विधाभूते पुरुष प्रकृती स्वया ।
भासा संजनयामास महान्तं कालयोगतः ॥ १४ ॥

(१३-१४) प्रलय कालमें जब त्रिलोकी लय होजाती है, जब प्रकाश न होनेसे चारों ओर अंधकार होजाता है, जब दिग्देश, कालादिका कोई चिन्ह तक नहीं रहता तब परब्रह्म सृष्टि करनेकी अभिलाषा करके तन्मात्र रूपसे आविर्भूत होते हैं। प्रथम ब्रह्म अपने माहात्म्यसे पुरुष और प्रकृति इन दो अंशोंमें विभक्त हुए फिर कालकी सहायतासे पुरुष प्रकृतिका संयोग होनेपर महतत्व उत्पन्न हुआ ।

कालस्वभावकर्म्मात्मा सोऽहङ्कारस्ततोऽभवत् ।
त्रिवृद्विष्णु-शिव-ब्रह्म-मयः संसारकारणम् ॥ १५ ॥

(१५) काल और स्वभाव सहकृत प्रकृतिसे उत्पन्न हुए । महतत्वसे अहंकार तत्वकी उत्पत्ति होती है। अहंकार तत्व त्रिगुण भेदसे विभक्त होकर ब्रह्मा, विष्णु और महेशको उत्पन्न करता है। फिर यह ब्रह्मा, विष्णु और महेश सारे संसारको उत्पन्न करते हैं ।

तन्मात्राणि ततः पञ्च जज्ञिरे गुणवन्ति च ।
महाभूतान्यपि ततः प्रकृतौ ब्रह्मसंश्रयात् ॥ १६ ॥

(१६) पहले पहल अहङ्कार तत्वसे त्रिगुणयुक्त पंचतन्मात्र उत्पन्न हुआ। पंचतन्मात्रसे पंचमहाभूतका आविर्भाव होता है। प्रकृतिमें पुरुषके अधिष्ठित होने-पर इस प्रकार सृष्टि होती है ।

जाता देवासुरनरा ये चान्ये जीवजातयः ।
ब्रह्माण्डभाण्डसंभार-जन्मनाशक्रियात्मिकाः ॥ १७ ॥

(१७) तदनन्तर देव, असुर, मनुष्य और इस ब्रह्माण्ड भाण्डोदरमें उत्पन्न तथा नाशवान अन्य जो समस्त जीव जन्तु और पदार्थ विद्यमान हैं, उनकी उत्पत्ति होती है।

मायया मायया जीव-पुरुषः परमात्मनः ।
संसारशरणव्यग्रो न वेदात्मगतिं क्वचित् ॥ १८ ॥

(१८) परमात्माकी माया द्वारा सर्व प्रकारसे ढके रहनेके कारण यह समस्त जीव संसारलिप्त तथा सांसारिक कार्य्योंमें बंधे रहते हैं और अपने उद्धारका उपाय कुछ भी नहीं सोच पाते।

अहो बलवती माया ब्रह्माद्या यद्वशे स्थिताः ।
गावो यथा नसि प्रोता गुणबद्धाः खगा इव ॥ १९ ॥

(१९) कैसा आश्चर्य्य है ! माया कैसी प्रवल है ! माया कैसी अद्भुत सामर्थ्य-वान है ! ब्रह्मादि देवतागण भी इसी मायाके वशवर्त्ती होकर नाथे हुए बैल तथा डोरसे बंधे पक्षीकी भांति निरन्तर परिचालित हुआ करते हैं।

तां मायां गुणमय्यां ये तितीर्षन्ति मुनीवराः ! ।
स्रवन्तीं वासनानक्रां त एवार्थविदो भुवि ॥ २० ॥

(२०) जो महर्षिगण इस प्रकारकी वासना रूप नक्र चक्र उत्पन्न करने वाली गुणमयी मायाके पार होनेकी इच्छा करते हैं उनकाही जन्म सार्थक है और वही यथार्थमें तत्त्वज्ञानी हैं।

शौनक उवाच—मार्कण्डेयो वसिष्ठश्च वामदेवादयोऽपरे ।
श्रुत्वा गुरुवचो भूयः किमाहुः श्रवणादृताः ॥ २१ ॥
राजानोऽनन्तवचनमिति श्रुत्वा सुधोपमम् ।
किं वा प्राहुरहो सूत ! भविष्यमिह वर्णय ॥ २२ ॥

(२१-२२) शौनकजीने कहा,—मार्कण्डेय, वशिष्ट, वामदेव तथा अन्यान्य ऋषियोंने यह आश्चर्य्यजनक वाक्य सुनकर क्या कहा ? अनन्तका उपाख्यान सुनने-वाले राजाओंने अनन्तके मुखसे यह अमृतमयी वाक्य सुनकर क्या बोले ? हे सूत ! यह समस्त भविष्य वार्त्ता वर्णन कीजिये।

इति तद्वच आश्रुत्य सूतः सत्कृत्य तं पुनः ।
कथयामास कात्स्न्येन शोकमोहविघातकम् ॥ २३ ॥

(२३) सूतजी यह सुन कर शौनकजीकी प्रसंशा पूर्व्वक शोक मोहनाशक वह समस्त तत्वज्ञानकी वार्त्ता पुनः विस्तारित वर्णन करना आरम्भ किया ।

सूत उवाच—तत्रानन्तो भूपगणैः पृष्टः प्राह कृतादरः ।
तपसा मोहनिधनमिन्द्रियाणाञ्च निग्रहम् ॥ २४ ॥

(२४) सूतजी बोले,—तदन्तर राजाओंने आदर पूर्व्वक अनन्तसे जिज्ञासा किया। अनन्तने तप द्वारा माया का परिहार और इन्द्रियनिग्रहका वृत्तान्त कहा ।

अनन्तउवाच। अतोऽहं वनमासाद्य तपः कृत्वा विधानतः।
नेन्द्रियाणां न मनसो निग्रहोऽभूत्कदाचन ॥ २५ ॥

(२५) अनन्तने कहा,—पुनः वनमें जाकर मैंने विधिविधान सहित तप करना आरम्भ किया, परन्तु किसी प्रकारसे भी इन्द्रिय और मनको वशीभूत न कर सका।

वने ब्रह्म ध्यायतो मे भार्य्यापुत्रधनादिकम् ।
विषयञ्चान्तरा शश्वत्संस्मारयति मे मनः ॥ २६ ॥

(२६) मैं वनमें बैठकर जब ठीक परब्रह्मका ध्यान करूं, उसी समय निरन्तर स्त्री, पुत्र, धन और अन्यान्य समस्त बातें मुझे स्मरण हुआ करें ।

तेषां स्मरणमात्रेण दुःखशोकभयादयः ।
प्रतुदन्ति मम प्राणान्धारणा-ध्याननाशकाः ॥ २७ ॥

(२७) मेरे अन्तःकरणमें स्त्री, पुत्र, ऐश्वर्य आदिका स्मरण होतेही दुःख, शोक भय आदि उपत्म होकर मेरा अन्तरात्मा अतिव्याकुल होने पर मेरे ध्यान धारणामें विघ्न हुआ करे ।

ततोऽहं निश्चितमतिरिन्द्रियाणाञ्च घातने ।
मनसो निग्रहस्तेन भविष्यति न संशयः ॥ २८ ॥

(२८) पुनः मैंने इन्द्रियोंको नाश करनेका संकल्प किया। विचारा कि निःसन्देह इन्द्रियोंको नष्टकरतेही मनको वशमें कर सकूंगा ।

अतो मामिन्द्रियाणाञ्च निगृह्यव्यग्रचेतसम् ।
तदधिष्ठातृदेवाश्च दृष्ट्वा मामीयुरञ्जसा ॥ २९ ॥

(२९) मैं जब इस प्रकारके संकल्पपूर्व्वक इन्द्रियोंको दमन करने लगा तब इन्द्रियोंके अधिष्ठात्री देवतागण मेरी ओर देखने लगे।

रूपिणो मामथोचुस्ते भोऽनन्त ! इति ते दश ।
दिग्वातार्कप्रचेतोऽश्वि-वह्नीन्द्रोपेन्द्रमित्रकाः ॥ ३० ॥

(३०) दश इन्द्रियोंके दश अधिष्ठाताओंने अपने रूप सहित प्रकट हो मुझसे कहा,- हे अनन्त ! हम दिक्, वात, प्रचेता, दो अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र और मित्र हैं।

इन्द्रियाणां वयं देवास्तव देहे प्रतिष्ठिताः ।
नखाग्रकाण्डसंभिन्नान्नास्मान्कर्त्तुमिहार्हसि ॥ ३१ ॥

(३१) दश इन्द्रयोंके हम दश अधिष्ठाता देवता हैं। हम तुम्हारे शरीरमें प्रतिष्ठित हैं। हमको नखाग्रसे छिन्न भिन्न तथा नष्ट करना तुम्हें उचित नहीं है।

न श्रेयो हि तवानन्त ! मनोनिग्रहकर्म्मणि ।
छेदने भेदनेऽस्माकं भिन्नमर्म्मा मरिष्यसि ॥ ३२ ॥

(३२) क्या इस प्रकारसे मनको वशीभूतकर तुम अपना कल्याण कर सकोगे ? कदापि नहीं। इन्द्रियोंको छिन्न भिन्न करनेसे तुम्हारे मर्ममें व्यथा होनेपर तुम मृत्युको प्राप्त होगे।

अन्धानां बधिराणाञ्च विकलेन्द्रियजीविनाम् ।
वनेऽपि विषयव्यग्रं मानसं लक्षयामहे ॥ ३३ ॥

(३३) हम देखते हैं, कि अन्धे, वधिर और विकल इन्द्रियवाले जीव जब निर्जन वनमें वास करते हैं, तब भी उनका मन विषय भोग लालसामें लोलुप होता है।

जीवस्यापि गृहस्थस्य देहो गेहं मनोऽनुगः ।
बुद्धिर्भार्य्या तदनुगा वयमित्यवधारय ॥ ३४ ॥

(३४) जीव रूपी गृहस्थका यह शरीर गृह है, और मनोनुगामी बुद्धि भार्या है, हम सब बुद्धि रूप भार्याके अनुगत सेवक हैं।

कर्म्मायत्तस्य जीवस्य मनो बन्धविमुक्तिकृत् ।
संसारयति लुब्धस्य ब्रह्मणो यस्य मायया ॥ ३५ ॥

(३५) जीवगण अपने अपने कर्म्मके आधीन हैं। मुक्ति और संसारबन्धनका कारण मन है। जगदीश्वरकी मायाके अनुसार मनही लोलुप जीवको संसारचक्रमें घुर्णित करता है।

तस्मान्मनोनिग्रहार्थं विष्णुभक्तिं समाचार ।
सुखमोक्षप्रदा नित्यं दाहिका सर्व्वकर्म्मणाम् ॥ ३६ ॥

(३६) अतएव तुम मनको वशीभूत करनेके अर्थ विष्णुजीमें भक्ति स्थापन करो। विष्णु भक्तिही निरन्तर समस्त कर्म्मका नाश करके सुख और मोक्ष प्रदान करती है।

द्वैताद्वैतप्रदानन्द-सन्दोहा हरिभक्तिका ।
हरिभक्त्या जीवकोष-विनाशान्ते महामते ! ॥ ३७ ॥

(३७) हरिभक्तिसे द्वैत अद्वैतका ज्ञान हो जाता है। हरिभक्ति आनन्द सन्दोह देनेवाली है। हे महामते ! हरिभक्तिसेही जीवकोष दमन होगा।

परं प्राप्स्यसि निर्वाणं कल्केरालोकनांत्त्वया ।
इत्यहं बोधितस्तेन भक्त्या संपूज्य केशवम् ॥ ३८ ॥
कल्किं दिदृक्षुरायातः कृष्णं कलिकुलान्तकम् ॥ ३९ ॥

(३८-३९) इस समय कल्किजीके दर्शनसे तुम परम निर्वाणको प्राप्त कर सकोगे। परमहंसके इस उपदेशको श्रवणकर मैं भक्ति पूर्व्वक केशवकी पूजा करके कलिकुलके नाश करनेवाले कल्किजीके दर्शनार्थ इस स्थानमें आया हूं।

दृष्टं रूपमरूपस्य स्पृष्टस्तत्पदपल्लवः ।
अपदस्य श्रुतं वाक्यमवाच्यस्य परात्मनः ॥ ४० ॥

(४०) इस स्थानमें रूपहीन इश्वरके रूपका दर्शन पाया। पदहीन ईश्वरके चरण पल्लवका स्पर्श कर कृतार्थ हुआ। वाणी रहित जगत्पतिकी बातें श्रवण किया।

जीवकोष। जीवरूपी चैतन्य अविद्यामें फंसकर अपनेको प्रकृतिवत मानने लगा। जीवकी इस अवस्थाका नाम कारण शरीर हुआ। मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कारके एकत्र सम्बन्धको अन्तः करण कहते हैं। कारण शरीर, अन्तः करण, पञ्चतन्मात्रा और पञ्चज्ञान इन्द्रिय मिलकर लिङ्ग शरीर हुआ। लिङ्ग शरीरको ही जीवकोष कहते हैं।

इत्यनन्तः प्रमुदितः पद्मानाथं निजेश्वरम् ।
कल्किं कमलपत्राक्षं नमस्कृत्य ययौ मुनिः ॥ ४१ ॥

(४१) यह कहकर हर्षित हृदय अनन्त मुनि अपने ईश्वर कमलदल लोचन, पद्मानाथ कल्किजीको नमस्कार करके चले गये ।

राजानो मुनिवाक्येन निर्वाण-पदवीं मताः ।
कल्किमभ्यर्च्य पद्माञ्च नमस्कृत्य मुनिव्रताः ॥ ४२ ॥

(४२) इस प्रकार मुनिके वचन सुन नृपतिगण ऋषियोंकी भांति व्रत नियमादि अनुष्ठान पूर्व्वक कल्कि पद्माकी पूजाकर मुक्ति मार्गमें अग्रसर हुए ।

शुक उवाच—अनन्तस्य कथामेतामज्ञानध्वान्त-नाशिनीम
मायानियन्त्रीं प्रपठञ्छृण्वन्बन्धाद्विमुच्यते ॥ ४३ ॥

(४३) शुकने कहा:—"अनन्तकी इस कथाको पाठ करने तथा सुननेसे संसारकी माया छूट जाती है, अज्ञान रूप अंधकार दूर होता है और संसारबन्धनसे मुक्ति हो जाती है ।

संसाराब्धि-विलासलालसमतिः श्रीविष्णुसेवादरो
भक्त्याख्यानमिदं स्वभेद-रहितं निर्माय धर्म्मात्मना ।
ज्ञानोल्लास-निशात-खड्गमुदितः सद्भक्ति-दुर्गाश्रयः
षड्वर्गं जयतादशेषजगतामात्मस्थितं वैष्णवः ॥ ४४ ॥

(४४) जो धर्मात्मा वैष्णव विष्णुसेवापरायण होनेपर भी विलास कामनासे संसार सागरमें आसक्त रहते हैं, वे इस आख्यान द्वारा अभेद ज्ञानरूप उल्लसित तीक्ष्ण खड्गको धारणकर भक्तिरूप दुर्गके आश्रयसे शरीर स्थित काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य्य इन छः शत्रुओंको पराजित करें ।

इति श्रीसानुवादे कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांशे अनन्त माया निरसनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

द्वितीयांशः ।

षष्ठम-अध्याय

सूत उवाच ।

गते नृपगणे कल्किः पद्मया सह सिंहलात् ।
शम्भलग्राम-गमने मतिं चक्रे स्वसेनया ॥ १ ॥

(१) तदनन्तर राजाओंके चले जानेपर कल्किजीने पद्मा तथा सेना सहित सिंहलद्वीपसे गमन करनेकी अभिलाषा की ।

ततः कल्केरभिप्रायं विदित्वा वासवस्त्वरन् ।
विश्वकर्म्माणमाहूय वचनञ्चेदमब्रवीत् ॥ २ ॥

(२) देवराज इन्द्रजीने कल्किजीका आभिप्राय जान तत्काल विश्वकर्म्माको आवाहनकर कहा ।

इन्द्र उवाच—विश्वकर्मञ्छम्भले त्वं गृहोद्यानाट्ट-घट्टितम् ।
प्रासादहर्म्य-संबाधं रचय स्वर्णसञ्चयैः ॥ ३ ॥
रत्नस्फटिक-वैदूर्य्य-नानामणि-विनिर्मितैः ।
तत्रैव शिल्पनैपुण्यं तव यच्चास्ति तत्कुरु ॥ ४ ॥

(३-४) इन्द्र बोले,—"हे विश्वकर्म्मन् ! तुम शम्भल ग्रामको जाओ ! सुवर्ण समूहसे अट्टालिका, महल, अटा, अटारियां, गृह और उद्यानादि निर्माण करो और रत्न, स्फटिक, वैदूर्य आदि अनेक मणियोंसे अपनी शिल्पनिपुणता दिखानेमें कुछ भी त्रुटि मत करो ।

श्रुत्वा हरेर्वचो विश्वकर्मा शर्म निजं स्मरन् ।
शम्भले कमलेशस्य स्वस्त्यादि-प्रमुखान्गृहान् ॥ ५ ॥

(५) विश्वकर्म्मा देवराजके यह वचन सुन और अपना मङ्गल होना जानकर कमलापतिकेलिये शम्भलग्राममें स्वस्ति आदि अनेक प्रकारके गृह निर्म्माण किये ।

हंससिंहसुपर्णादिमुखांश्चक्रे स विश्वकृत् ।

उपर्य्युपरि तापघ्नवातायनमनोहरान् ॥ ६ ॥

(६) हंस, सिंह, गरुड़मुखकी आकृतिवाले अनेक प्रकारके गृह निर्म्मित हुए । समस्त गृह दुतल्ले तितल्ले आदि एक दूसरेके ऊपर बनने लगे । ग्रीष्म निवारणके निमित्त अनेक खिड़कियां सुशोभित होने लगीं ।

नानावनलतोद्यानसरोवापीसुशोभितः ।
शम्भलग्राभवत्कल्केर्यथेन्द्रस्यामरावती ॥ ७ ॥

(७) अनेक प्रकारके बन, लता, उद्यान, सरोवर, दीर्घिका आदिसे कल्किजीका सम्भल ग्राम इन्द्रकी अमरावतीके समान अपूर्व शोभायुक्त हो गया ।

कल्किस्तु सिंहलाद्द्वीपाद्बहिः सेनागणैर्वृतः ।
त्यक्त्वा कारुमतीं कूले पाथोधेरकरोत्स्थितिम् ॥ ८ ॥

(८) इस ओर सिंहलद्वीपमें कल्किजी सेना सहित कारूमती नगरीसे बाहिर्गत हो समुद्र तटपर स्थित हुये ।

बृहद्रथस्तु कौमुद्या सहितः स्नेहकातरः ।
पद्मया सहितायास्मै पद्मानाथाय विष्णवे ॥ ९ ॥
ददौ गजानामयुतं लक्षं मुख्यञ्च वाजिनाम् ।
रथानाञ्च द्विसाहस्त्रं दासीनां द्वे शते मुदा ॥ १० ॥
दत्त्वा वासांसि रत्नानि भक्तिस्नेहाश्रुलोचनः ।
तयोर्मुखालोकनेन नाशकत्कियदीरितुम् ॥ ११ ॥

(९-१०-११) राजा बृहद्रथ कन्यास्नेहसे कातर हो कौमुदी नामक रानीके साथ सन्तुष्ट हृदय पद्मा और पद्मनाथको दश हजार रथ, दो शत दासियां तथा अनेक प्रकारके वस्त्र और रत्न दान दे भक्ति स्नेह पूर्ण नेत्रोंसे जामाता और कन्याके वदन कमलको अवाक् हो देखता रहा ।

महाविष्णुदम्पती तौ प्रस्थाप्य पुनरागतौ ।
पूजितौ कल्किपद्माभ्यां निजकारुमतीं पुरीम् ॥ १२ ॥

(१२) वह कन्या और जामात्रको पूज्य उन्हें विदाकर कारुमती नामक अपनी नगरीमें लौट आया ।

कल्किस्तु जलधेरम्भो विगाह्य पृतनागणैः ।
पारं जिगमिषुं दृष्ट्वा जम्बुकं स्तम्भितोऽभवत् ॥ १३ ॥

(१३) पुनः कल्किजी सेना सहित समुद्र जलमें स्नानकर एक शृगालको जलके ऊपरसे पार होते देखकर बैठ गये ।

जलस्तम्भमथालोक्य कल्किः सबलवाहनः ।
प्रययौ पयसां राशेरुपरि श्रीनिकेतनः ॥ १४ ॥

(१४) पुनः लक्ष्मीपति कल्किजी जलको स्तम्भित देख सेना और वाहन सहित समुद्र जलके ऊपर होकर चले ।

गत्वा पारं शुकं प्राह याहि मे शम्भलालयम् ॥ १५ ॥

(१५) समुद्र पार होनेपर शुकसे कहा:— हे शुक ! तुम शम्भल ग्रामको हमारे स्थान पर जाओ ।

विश्वकर्म्मकृतं यत्र देवराजाज्ञया बहु ।
सद्म संबाधममलं मत्प्रियार्थं सुशोभनम् ॥ १६ ॥

(१६) हमारा प्रियकार्य सिद्धकरनेंके अर्थ इन्द्रकी आज्ञानुसार विश्वकर्म्माने वहांपर बहुतसे सुशोभित निर्म्मल गृह निर्म्माण किये हैं ।

तत्रापि पित्रोर्ज्ञातीनां स्वस्ति ब्रूया यथोचितम् ।
यदत्राङ्ग ! विवाहादि सर्व्वं वक्तुं त्वमर्हसि ॥ १७ ॥

(१७) तुम वहां जाकर हमारे मातापिता और जातिवालोंसे हमारा कुशल सम्वाद कहकर हमारे विवाहादिका समस्त वृत्तान्त विदित करना ।

पश्चाद्यामि वृतस्त्वेतैस्त्वमादौ याहि शम्भलम् ॥ १८ ॥

(१८) मैं सेनाके साथ पीछे आता हूं । तुम आगे शम्भल ग्राममें जाओ ।

कल्केर्वचनमाकर्ण्य कीरो धीरस्ततो ययौ ।
आकाशगामी सर्व्वज्ञः शम्भलं सुरपूजितम् ॥ १९ ॥

(१९) परमधीर सर्व्वज्ञकीर कल्किजीका वचन सुन आकाशमार्गमें उड़ता हुआ कुछ समयके अनन्तर सुरपूजित शम्भल ग्राममें पहुंचा ।

सप्तयोजनविस्तीर्णं चातुर्वर्ण्यजनाकुलम् ।
सूर्य्यरश्मिप्रतीकाशं प्रासादशतशोभितम् ॥ २० ॥

(२०) शम्भल ग्रामके सप्त योजन विस्तारमें ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र चतुवर्ण वास करते हैं। सूर्य्यरश्मिकी भांति उज्वल देदीप्यमान सैकड़ों अटारियें चारों ओर शोभावृद्धि कर रही हैं।

सर्व्वर्त्तुसुखदं रम्यं शम्भलं विह्वलोऽविशत् ॥ २१ ॥
गृहाद्गृहान्तरं दृष्ट्वा प्रासादपि चाम्बरम् ।
वनाद्वनान्तरं तत्र वृक्षाद्वृक्षान्तरं व्रजन् ॥ २२ ॥

(२१-२२) सब ऋतुओंमें सुखदायक रमणीय शम्भल ग्रामको देखकर शुकने विह्वल हो प्रवेश किया। एक गृहसे दूसरे गृहमें, महलके अग्रभागसे आकाश मार्ग द्वारा उद्यानमें उद्यानसे अन्य उद्यानमें और वृक्षसे अन्य वृक्षपर गमन करने लगा।

शुकः स विष्णुयशसः सदनं मुदितोऽव्रजत् ।
तं गत्वा रुचिरालापैः कथयित्वा प्रियाः कथाः २३ ॥

(२३) इसी भांति हर्षितचित्त शुक विष्णुयशाके गृहमें पहुंचा। अनन्तर विष्णु यशाके समीप पहुंचकर अनेक प्रकारकी प्रिय कथा सुमधुरवाणीमें कहा।

कल्केरागमनं प्राह सिंहलात्पद्मया सह ॥ २४ ॥

(२४) सिंहलद्वीपसे पद्माके साथ कल्किजीके आगमनका वृत्तान्त निवेदन किया।

ततस्त्वरन्विष्णुयशाः समानार्य्यप्रजाजनान् ।
विशाखयूपभूपालं कथयामास हर्षितः ॥ २५ ॥

(२५) पुनः विष्णुयशाने शीघ्रतापूर्व्वक पुलकित हृदयसे विशाखयूपराज और अन्य प्रधान तथा मान्य राजाओंसे समस्त समाचार बर्णन किया।

स राजा कारयामास पुर-ग्रामादि मण्डितम् ।
स्वर्णकुम्भैः सदम्भोभिः पूरितैश्चन्दनोक्षितैः ॥ २६ ॥

(२६) विशाखयूपराजने चन्दन चर्चित जलपूर्ण सुवर्णकुम्भसे ग्राम और नगर सुसज्जित किया।

कालागुरुसुगन्धाढ्यैर्दीपलाजाङ्कुराक्षतैः ।
कुसुमैः सुकुमारैश्च रम्भा-पूग-फलान्वितैः ।
शुशुभे शम्भलग्रामो विबुधानां मनोहरः ॥ २७ ॥

(२७) दीपमाला, मनोहर सुगंन्धित पुष्पमाला, अगर आदि सुगन्ध द्रव्य, केदली, पुंगीफल, नवपल्लव, अक्षत और ताम्बूल पत्रादिसे शम्भलग्राम सुशोभित होकर देवताओंकी मनोहर छटा दर्शाने लगा ।

तं कल्किः प्राविशद्भीम-सेनागण-विलक्षणः ।
कामिनी-नयनानन्दमन्दिराङ्गः कृपानिधिः ॥ २८ ॥

(२८) परम सुन्दर, ललना लोचनके आनन्द मन्दर कल्किजी भयानक सेना सहित नगरमें प्रवेश करने लगे ।

पद्मया सहितः पित्रोः पदयोः प्रणतोऽपतत् ।
सुमतिर्मुदिता पुत्रं स्नुषां शक्रं शचीमिव ।
ददर्श त्वमरावत्यां पूर्णकामा दितिः सती ॥ २९ ॥

(२९) कल्किजीने पद्मा सहित माता पिताके चरणोंमें प्रणाम किया । जिस प्रकार देवलोकमें दितिजी इन्द्र और शचीको देखकर पूर्णकाम और आनन्दित हुई थीं उसी प्रकार सतीसुमति, पुत्र कल्कि और पुत्रवधू पद्माको देखकर परम आनन्दित और पूर्ण मनोर्थ हुई ।

शम्भलग्रामनगरी पताका ध्वज-शालिनी ।
अवरोधसुजघना प्रासादविपुलस्तनी ।
मयूरचूचका हंस-संघहारमनोहरा ॥ ३० ॥
पटवासोद्योतधूमवसना कोकिलस्वना ।
सहासगोपुरमुखी वामनेत्रा यथाङ्गना ।
कल्किं पतिं गुणवती प्राप्य रेजे तमीश्वरम् ॥ ३१ ॥

(३०-३१) अन्तःपुर सुजघना, प्रसाद-पीनस्तनी, मयूर-चूचका, हंसमाला-मुक्तावली, सुगन्धधूम-वसना, ध्वजा पताका शालिनी सम्भल नगरी रूप रमणी भगवान कल्किजीको पाकर अपूर्व शोभा युक्त हुई ।

स रेमे पद्मया तत्र वर्षपूगानजाश्रयः।
शम्भले विह्वलाकारः कल्किः कल्कविनाशनः॥ ३२॥

(३२) अज सर्वाश्रय पापनाशक कल्किजीने अपने कर्त्तव्य कार्य्यको विस्मृत कर शम्भलनगरमें पद्माके साथ आनन्द मङ्गलसे अनेक वर्ष व्यतीत किये।

कवेः पत्नी कामकला सुषुवे परमेष्ठिनौ।
बृहत्कीर्त्तिं बृहद्बाहू महाबलपराक्रमौ॥ ३३॥

(३३) कुछ कालके अनन्तर कविकी कामकला नामक भार्य्याने वृहत्कीर्त्ति और बृहद्बाहु नामक महाबली प्राक्रमी और परम धार्म्मिक दो पुत्र प्रसव किये।

प्राज्ञस्य सन्नतिर्भार्या तस्यां पुत्रौ बभूवतुः।
यज्ञविज्ञौ सर्व्वलोकपूजितौ विजितेन्द्रियौ॥ ३४॥

(३४) सन्नति नामक प्राज्ञकी भार्य्याने यज्ञ और विज्ञ नामक दो पुत्र प्रसव किये। यह दोनों जितिन्द्रिय और समस्त लोकमें पूजित हुए।

सुमन्त्रकस्तु मालिन्यां जनयामास शासनम्।
वेगवन्तश्च साधूनां द्वावेतावुपकारकौ॥ ३५॥

(३५) मालिनी नामक सुमंत्रकी भार्य्याके गर्भसे शासन और वेगवान नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। यह दोनों साधुओंके उपकारक हुए।

ततः कल्किश्च पद्मायां जयो विजय एव च।
द्वौ पुत्रौ जनयामास लोकख्यातौ महाबलौ॥ ३६॥

(३६) कल्किजीसे पद्माके गर्भमें जय और विजय नामक दो पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई। यह दोनों लोक विख्यात, महाबली और प्राक्रमी हुए।

एतैः परिवृतोऽमात्यैः सर्व्वसम्पत्समन्वितो।
वाजिमेधविधानार्थमुद्यतं पितरं प्रभुः॥ ३७॥
समीक्ष्य कल्किः प्रोवाच पितामहमिवेश्वरः।
दिशां पालान्विजित्याहं धनान्याहृत्य इत्युत॥ ३८॥
कारयिष्याम्यश्वमेधं यामि दिग्विजयाय भोः!॥ ३९॥

(३७-३८-३९) इस प्रकार कल्किजी परिवार और सम्पतियुक्त होनेपर ब्रह्माजीकी भांति अपने पिताको अश्वमेध यज्ञानुष्ठानमें उद्यत देखकर बोले,—"मैं दिक्पालोंको पराजितकर धन संग्रह करके आपको अश्वमेध यज्ञ कराऊंगा। इस समय दिग्विजयके निमित्त यात्रा करता हूं।"

इति प्रणम्य तं प्रीत्या कल्किः परपुरञ्जयः ।
सेनागणैः परिवृतः प्रययौ कीकटं पुरम् ॥ ४० ॥

(४०) यह कहकर शत्रुपुर जीतनेवाले कल्किजीने प्रसन्न हो पिताको नमस्कार कर सेना सहित कीकटपुरको प्रस्थान किया।

बुद्धालयं सुविपुलं वेदधर्म्मबहिष्कृतम् ।
पितृदेवार्चनाहीनं परलोकविलोपकम् ॥ ४१ ॥

(४१) अतिविस्तारित कीकटपुर नगरी बौद्धोंका प्रधानालय है। यहांके निवासी वैदिक धर्म्म रहित, पितृदेवार्चनाहीन और परलोक विलोपक हैं।

देहात्मावादबहुलं कुलजातिविवर्ज्जितम् ।
धनैः स्त्रीभिर्भक्ष्यभोज्यैः स्वपराभेददर्शिनम् ॥ ४२ ॥

(४२) इस नगरीके अधिकांश जन देहात्मावादी एवं कुलधर्म्म जातिधर्म्म रहित हैं और वे धन, स्त्री, भोजनादि विषयमें परस्पर भेद नहीं मानते हैं।

नानाजनैः परिवृतं पानभोजनतत्परैः ॥ ४३ ॥

(४३) पान भोजन तत्पर अनेक प्रकारके मनुष्योंसे यह नगर परिवृत्त है।

श्रुत्वा जिनो निजगणैः कल्केरागमनं क्रुधा ।
अक्षौहिणीभ्यां सहितः संबभूव पुराद्बहिः ॥ ४४ ॥

(४४) युद्ध करनेके निमित्त सेवकोंके सहित कल्किजीका आगमन सुनकर जिन दो अक्षौहिणी सेना सहित नगरसे बाहर निकला।

अक्षौहणी। २१८७० हाथी, २१८७० रथ, ६५६१० घोड़े, १०९३५० पैदलकी अक्षौहणी संख्या है पत्ति, सेनामुख, गुल्म, गण, वाहिनी, पृतना, चमू, अनाकिनी अक्षौहणी सेना गणना करनेकी संख्याके नाम हैं। जिस प्रकार अङ्गरेज सैन्य गणना करनेकी रीति रेजीमण्ट ब्रिगेड आदि हैं, उसी प्रकार अपने यहां चमू, पत्ति, अक्षौहणी आदि थे।

गजरथतुरगैः समाचिता भूः कनकविभूषण-
भूषितैर्वराङ्गैः ॥ शतशतरथिभिर्धृतास्त्रशस्त्रैः ।
ध्वजपटराजि-निवारितातपैर्बभौ सा ॥ ४५ ॥

(४५) अनेक गज, रथ, तुरंग, सुवर्णभूषण विभूषित श्रेष्ठवर्णके रथी और अस्त्र शस्त्रधारी योद्धाओंसे पृथ्वी आच्छादित होगई। सेनाकी पताकापट समूहसे धूप निवारण होने लगी।

इति श्रीसानुवादे कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांशे
बुद्धनिग्रहे कीकटपुरगमनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

द्वितीयांशः।

सप्तम-अध्याय

सूत उवाच।

ततो विष्णुःसर्व्वजिष्णुःकल्किः कल्कविनाशनः।
कालयामास तां सेनां करिणीमिव केसरी ॥ १ ॥

(१) अनन्तर हथिनीपर आक्रमण करनेवाले सिंहकी भांति पापहारी, सर्व्व विजयी विष्णु कल्किजी उस बौद्धकी सेनापर धावित हुए।

सेनाङ्गनां तां रतिसङ्गरक्षतीं रक्ताक्तवस्त्रां
विवृतोरुमध्याम्। पलायतीं चारुविकीर्ण-
केशां विकूजतीं प्राह स कल्किनायकः ॥ २ ॥

(२) समर रुधिरवसना, कटिनग्ना, चारुकेश विकीर्णा, पलायन्ती, प्रलाप करती, मानो रतियुद्धमें घायल हुई सेना रूपिणी नायकासे सैन्यनायक कल्कीजी बोले।

रे बौद्धा! मा पलायध्वं निवर्त्तध्वं रणाङ्गणे।
युध्यध्वं पौरुषं साधु दर्शयध्वं पुनर्मम ॥ ३ ॥

(३) रे बौद्धगण ! तुम सब समराङ्गणसे न भागो । युद्ध करनेके निमित्त लौटो और अपना बल पौरुष दिखानेमें किसी प्रकारकी त्रुटि न करो ।

जिनो हीनबलः कोपात्कल्केराकर्ण्य तद्वचः ।
प्रतियोद्धुं वृषारूढः खड्गचर्म्मधरो ययौ ॥ ४ ॥

(४) कल्किजीका यह वचन सुनकर बलहीन जिन क्रोधित हो चर्म्म खड्ग ले युद्ध करनेके निमित्त उनके सन्मुख दौड़ा ।

नानाप्रहरणोपेतो नानायुधविशारदः ।
कल्किना युयुधे धीरो देवानां विस्मयावहः ॥ ५ ॥

(५) रणनिपुण, नानायुध-विशारद जिन कल्किजीके साथ युद्ध करने लगा। उसकी युद्धकुशलताको देखकर देवता गण भी विस्मित होगये ।

शूलेन तुरगं विद्धा कल्किं बाणेन मोहयन् ।
क्रोडीकृत्य द्रुतं भूमेर्नाशकत्तोलना हृतः ॥ ५ ॥

(६) शूल द्वारा तुरंगको वेधित किया और बाणसे कल्किजीको मोहितकर शीघ्रतापूर्वक उन्हें गोदीमें उठानेकी चेष्टा करने लगा परन्तु किसी प्रकार न उठासका।

जिनः विश्वम्भरं ज्ञात्वा क्रोधाकुलितलोचनः ।
चिच्छेदास्य तनुत्राणं कल्केः शस्त्रञ्च दासवत् ॥ ७ ॥

(७) जिनने कल्किजीको विश्वम्भर मूर्त्ति जान उन्हें बन्दीकी समान समझ उनका वर्म्म और अस्त्र शस्त्र छिन्न भिन्न कर डाला ।

विशाखयूपोऽपि तथा निहत्य गदया जिनम् ।
मूर्च्छितं कल्किमादाय लीलया रथमारुहत् ॥ ८ ॥

(८) यह देख विशाखयूपराज गदासे जिनको घायलकर लीलासे मूर्च्छित हुए कल्किजीको लेकर रथारूढ़ हुए ।

लब्धसंज्ञस्तथा कल्किः सेवकोत्साहदायकः ।
समुत्पत्य रथात्तस्य नृपस्य जिनमाययौ ॥ ९ ॥

(९) कल्किजी चैतन्य होनेपर भक्तोंको उत्साह देनेके अर्थ विशाखयूपराजके रथसे उछलकर पृथ्वीपर कूद जिनके सामने चले ।

शूलव्यथां विहायजौ महासत्वस्तुरङ्गमः ।
रिङ्गणैर्भ्रमणैः पादविक्षेपहननैर्मुहुः ॥ १० ॥
दण्डाघातैः सटाक्षेपैर्बौद्धसेनागणान्तरे ।
निजघान रिपून्कोपाच्छतशोऽथ सहस्रशः ॥ ११ ॥

(१०-११) महाबली कल्किजीके अश्व शूलव्यथाकी उपेक्षाकर रणभूमिमें कूद, भ्रमण, पदाघात, दन्ताघात और केशसञ्चालन आदिसे बौद्धसेना मध्यस्थित सहस्रों शत्रुओंको क्रोधित हो नाश करने लगे।

निश्वासवातैरुड्डीय केचिद्द्वीपान्तरेऽपतन् ।
हस्त्याश्वरथसंबाधाः पतिता रणमूर्द्धनि ॥ १२ ॥

(१२) भयंकर अश्वोंके श्वासवायुसे उड़कर कोई कोई बीर दूसरे द्वीपमें जागिरे और कोई हाथी घोंड़े रथादिसे टकराकर रणभूमिमें पतित हुए।

गर्ग्यो जघ्नुः षष्टिशतं भर्ग्यः कोटिशतायुतम् ।
विशालास्तु सहस्राणां पञ्चविंशं रणे त्वरन् ॥ १३ ॥

(१३) गर्ग और उसके अनुचरोंने थोड़ेही समयमें बौद्धोंकी छः हजार सेनाका विनाश किया, सैन्य सह भर्ग्यने एक करोड़ दश सहस्र सेनाका संहार किया। विशालने अपनी सेना लेकर बौद्धोंकी पच्चीस हजार सेनाको पराजित किया।

अयुते द्वे जघानाजौ पुत्राभ्यां सहितः कविः ।
दशलक्षं तथा प्राज्ञः पञ्चलक्षं सुमन्त्रकः ॥ १४ ॥

(१४) कविने दोनों पुत्रोंकी सहायतासे संग्राम करके शत्रुओंकी बीस हजार सेनाका संहार किया। इसी प्रकार प्राज्ञने दस लाख और सुमंत्रकने पांच लाख सेनाको हराया।

जिनं प्राह हसन्कल्किस्तिष्ठाग्रे ममदुर्मते ! ।
दैवं मां विद्धि सर्वत्र शुभाशुभफलप्रदम् ॥ १५ ॥

(१५) तदनन्तर कल्किजी हँसकर बौद्धदेव जिनसे बोले,—रे दुर्मते ! भागता क्यों है ? सर्वत्र शुभाशुभ फलदाता अदृष्ट स्वरूप मुझको समझ मेरे सन्मुख आ।

मद्बाणजालभिन्नाङ्गो निःसङ्गो यास्यसि क्षयम् ।

न यावत्पश्य तावत्त्वं बन्धूनां ललितं मुखम् ॥ १६ ॥

(१६) मेरे बाणोंसे घायल शरीर होकर तुम अभी परलोक गमन करोगे। उस समय कोई भी तुम्हारे संग नहीं जायगा। अतएव इस बीचमें तुम भाई बन्धुओंका ललित मुख देखलो।

कल्केरितीरितं श्रुत्वा जिनः प्राह हसन्बली।
दैवं त्वदृश्यं शास्त्रे ते वधोऽयमुररीकृतः।
प्रत्यक्षवादिनो बौद्धा वयं यूयं वृथाश्रमाः ॥ १७ ॥

(१७) कल्किजीके यह बचन सुन बलवान जिन हँसकर बोला,—"अदृष्ट कभी प्रत्यक्ष नहीं होता। हम सब प्रत्यक्षके अतिरिक्त अन्य किसीको न मानने वाले प्रत्यक्ष-वादी बौद्ध हैं।" शास्त्रमें कहा है—"अदृष्ट हमारे द्वारा हत होगा।"

यदि वा दैवरूपस्त्वं तथाप्यग्रे स्थिता वयम्।
यदि भेत्तासि बाणौघैस्तदा बौद्धैः किमत्र ते ॥ १८ ॥

(१८) यद्यपि तुम दैव स्वरूप हो तथापि हम सब सन्मुख स्थित हैं। यदि तुम बाण द्वारा हमको बेधन करोगे, तो क्या बौद्ध गण तुम्हें क्षमा करेंगे?

सोपालम्भं त्वया ख्यातं त्वय्येवास्तु स्थिरो भव।
इति क्रोधाद्बाणजालैः कल्किं घोरैः समावृणोत् ॥ १९ ॥

(१९) हमारे प्रति तुम्हारे कहे हुए तिरस्कृत बचन तुम्हींपर लौटेंगे। तुम स्थिर होओ। जिनने ऐसा कहकर तीक्ष्ण बाणोंसे कल्किजीको आच्छादित कर लिया।

स तु बाणमयं वर्षं क्षयं निन्येऽर्कवद्धिमम् ॥ २० ॥

(२०) जिस प्रकार सूर्य्य दर्शनसे हिमवर्षा नाशको प्राप्त होती है, उसी प्रकार वह बाणवर्षा कल्किजीसे क्षयको प्राप्त होने लगी।

ब्राह्मं वायव्यमाग्नेयं पार्जन्यं चान्यदायुधम्।
कल्केर्दर्शनमात्रेण निष्फलान्यभवन्क्षणात् ॥ २१ ॥

(२१) ब्रह्मास्त्र, वायव्यास्त्र, आग्नेयास्त्र, मेघास्त्र एवं अन्यान्य समस्त अस्त्र कल्किजीको देखतेही क्षणमात्रमें निष्फल होगये।

यथोषरे बीजमुप्तं दानमश्रोत्रिये यथा।

यथा विष्णौ सतां द्वेषाद्भक्तिर्येन कृताप्यहो ॥ २२ ॥

(२२) जिस प्रकार ऊषरमें बीज बपन करनेसे अन्न उत्पन्न नहीं होता है, जिस प्रकार अश्रोत्रिय पात्रको दान देनेसे फल नहीं होता है और जिस प्रकार साधुजनोंका अनिष्ट करके विष्णुभक्ति पुण्य दायक नहीं होती है उसी प्रकार उसके समस्त अस्त्र विफल होनें लगे ।

कल्किस्तु तं वृषारूढमवप्लुत्य कचेऽग्रहीत् ।
ततस्तौ पेततुर्भूमौ ताम्रचूड़ाविव क्रुधा ॥ २३ ॥

(२३) तदनन्तर कल्किजी उछलकर वृषभारूढ़ जिनका केश ग्रहण किये और दोनोंही धरणीतलमें गिरकर क्रोधयुक्त अरुणशिखाकी भांति युद्ध करने लगे ।

पतित्वा स कल्किकचं जग्राह तत्करं करे ॥ २४ ॥

(२४) पृथ्वी तलमें गिरनेपर जिनने अपने एक हाथसे कल्किजीका केश और दूसरे हाथसे उनका हाथ पकड़ लिया ।

ततः समुत्थितौ व्यग्रौ यथा चाणूरकेशवौ ।
धृतहस्तौ धृतकचौ ऋक्षाविव महाबलौ ।
युयुधाते महावीरौ जिनकल्की निरायुधौ ॥ २५ ॥

(२५) पुनः चाणूर और केशवकी भांति दोनोंने पृथ्वी तलसे उठनेपर परस्पर केश और हाथ पकड़ लिये । यह दोनों महावीर आयुध हीन हो दो महाबली रीछोंकी भांति मल्लयुद्ध करने लगे ।

ततः कल्की महायोगी पदाघातेन तत्कटिम् ।
विभज्य पातयामास तालं मत्तगजो यथा ॥ २६ ॥

(२६) उन्मत्त हाथी जिस प्रकार ताल वृक्षको तोड़ डालता है, उसी प्रकार कल्किजीने पदाघात द्वारा जिनकी कमरको तोड़कर उसे धराशायी कर दिया ।

जिनं निपतितं दृष्ट्वा बौद्धा हाहेति चुक्रुशुः ।
कल्केः सेनागणा विप्रा जहृषुर्निहतारयः ॥ २७ ॥

अरुणशिखा । मुर्गको कहते हैं ।

(२७) हे ब्राह्मणो ! जिनको निपतित देख बौद्धगण हाहाकार करने लगे और शत्रुकी मृत्यु देखकर कल्किजीकी सेना अति हर्षित हुई ।

जिने निपतिते भ्राता तस्या शुद्धोदनो बली ।
पादचारी गदापाणिः कल्किं हन्तुं द्रुतं ययौ ॥ २८ ॥

(२८) जिनको रणभूमिमें पतित देख उसका भ्राता महाबली शुद्धोदन गदा ग्रहणकर पैदलही कल्किजीका संहार करनेके निमित्त शीघ्रता पूर्व्वक दौड़ा ।

कविस्तु तं बाणवर्षैः परिवार्य्य समन्ततः ।
अगर्ज्ज परवीरघ्नो गजमावृत्य सिंहवत् ॥ २९ ॥

(२९) गजारूढ़ शत्रुसैन्यसंहारक कविने शुद्धोदनको बाणवर्षासे आच्छादितकर सिंहकी समान गर्जने लगा ।

गदाहस्तं तमालोक्य पत्तिं स धर्म्मवित्कविः ।
पदातिगो गदापाणिस्तस्थौ शुद्धोदनाग्रतः ॥ ३० ॥

(३०) धर्म्मज्ञ कवि गदाधारी शुद्धोदनको पैदल देख स्वयं गदा ग्रहणकर पैदलही शुद्धोदनके सन्मुख खड़ा हुआ ।

स तु शुद्धोदनस्तेन युयुधे भीमविक्रमः ।
गजः प्रतिगजेनेव दन्ताभ्यां सगदावुभौ ॥ ३१ ॥
युयुधाते महावीरौ गदायुद्धविशारदौ ।
कृतप्रतिकृतौ मत्तौ नदन्तौ भैरवान्रवान् ॥ ३२ ॥

(३१-३२) जिस प्रकार हाथी शत्रुके हाथीसे दन्तयुद्ध करता है, उसी प्रकार गदायुद्ध विशारद महावीर कवि और भीमविक्रम शुद्धोदन परस्पर गदायुद्ध करने लगे। रणमदमत्त दोनों वीर भयंकर शब्दकरके गदा द्वारा एक दूसरेकी चोट निवारण करने लगे ।

कविस्तु गदया गुर्व्या शुद्धोदनगदां नदन् ।
करादपास्याशु तया स्वया वक्षस्यताडयत् ॥ ३३ ॥

(३३) तदनन्तर कविने सिंहनाद पूर्व्वक अपने कठिन गदाघातसे शुद्धोदनकी गदा पृथ्वी पर गिराकर शीघ्रही उसके हृदयमें गदा मारी ।

गदाघातेन निहतो वीरः शुद्धोदनो भुवि।
पतित्वा सहसोत्थाय तं जघ्ने गदया पुनः ॥ ३४ ॥

(३४) गदाके लगतेही वीर शुद्धोदन पृथ्वी तलमें गिर पड़ा परन्तु सहसा उठकर पुनः कल्किपर गदा मारी।

संताडितेन तेनापि शिरसा स्तम्भितः कल्किः।
न पपात स्थितस्तत्र स्थाणुवद्विह्वलेन्द्रियः ॥ ३५ ॥

(३५) कल्कि गदाघातसे पृथ्वीमें नहीं गिरा परन्तु विकलेन्द्रिय और अचेत हो स्तम्भवत् खड़ा रहा।

शुद्धोदनस्तमालोक्य महासारं रथायुतैः।
प्रावृतं तरसा माया-देवीमानेतुमाययौ ॥ ३६ ॥

(३६) कल्किको महाबली, पराक्रमी और हजारों रथीयुक्त देख शुद्धोदनने शीघ्र ही माया देवीको आवाहन करनेके निमित्त प्रस्थान किया।

यस्या दर्शनमात्रेण देवासुरनरादयः।
निःसाराः प्रतिमाकारा भवन्ति भुवनाश्रयाः ॥ ३७ ॥
बौद्धा शौद्धोदनाद्यग्रे कृत्वा तामग्रतः पुनः।
योद्धुं समागता म्लेच्छकोटिलक्षशतैर्वृताः ॥ ३८ ॥

(३७-३८) जिस माया देवीके दर्शन मात्रसेही देव, असुर, मनुष्य आदि त्रिलोकीके समस्त प्राणी तेजरहित प्रतिमाकी समान चेष्टाहीन हो जाते हैं, शुद्धोदन आदि बौद्धगण उसी मायादेवीको सन्मुख लाकर म्लेक्ष सेनापतियों सहित युद्धके निमित्त उपस्थित हुए।

सिंहध्वजोत्थितरथां फेरु-काक-गणावृताम्।
सर्वास्त्रशस्त्रजननीं षड्वर्गपरिसेविताम् ॥ ३९ ॥

(३९) मायादेवीने सिंहध्वजसे सुशोभित रथपर आरोहित होकर अनेक अस्त्र शस्त्रों को उत्पन्न किया। उसको चारों ओरसे काक, शृगालोंने घेर लिया और काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सरत आदि छवर्ग उसकी सेवा करने लगे।

नानारूपां बलवतीं त्रिगुणव्यक्तिलक्षिताम्।

मायां निरीक्ष्य पुरतः कल्किसेना समापतत् ॥ ४० ॥

(४०) अनेक रूप धारण करनेवाली बलवती त्रिगुणात्मिका मायादेवीको सन्मुख देखकर कल्किजीकी समस्त सेना समाप्त होगई ।

निःसारा प्रतिमाकाराः समस्ताः शस्त्रपाणयः ॥ ४१ ॥

(४१) शस्त्रधारी योधावृन्द निस्तेज प्रतिमाकी समान सार रहित हो गये।

कल्किस्तानालोक्य निजान्भ्रातृज्ञातिसुहृज्जनान् ।
मायया जायया जीर्णान्विभुरासीत्तदग्रतः ॥ ४२ ॥

(४२) तदनन्तर विभू कल्किजी अपने भ्राता, जाति और सुहृद आदिको माया-रूपी अपनी भार्यासे अभिभूत और जर्जरित होते देख उसके समीप पहुंचे ।

तामालोक्य वरारोहां स्त्रीरूपां हरिरीश्वरः ।
सा प्रियेव तमालोक्य प्रविष्टा तस्य विग्रहे ॥ ४३ ॥

(४३) श्रेष्ठवदनी स्त्रीरूपा मायाकी ओर श्रीहरि भगवान्‌के देखतेही वह प्यारी भार्य्याकी समान उनके शरीरमें प्रवेशकर लीन होगई ।

तामनालोक्य ते बौद्धा मातरं कतिधा वराः ।
रुरुदुः संघशो दीना हीनस्वबलपौरुषाः ॥ ४४ ॥

(४४) अपनी जननी मायाको न देख पानेपर प्रधान प्रधान बौद्ध बलपौरुष हीन हो सैकडों एकत्र होकर वारम्वार आरतनाद करने लगे ।

विस्मयाविष्टमनसः क्व गतेयमथाब्रुवम् ।
कल्किः समालोकनेन समुत्थाप्य निजाञ्जनान् ॥ ४५ ॥
निशातमसिमादाय म्लेच्छान्हन्तुं मनो दधे ।
सन्नद्धं तुरगारूढं दृढहस्तधृतत्सरुम् ॥ ४६ ॥

(४५-४६) वह विस्मयापन्न हो कहने लगे,–"कहां चली गई" । इस ओर कल्कि-जीने अपनी सेनापर दृष्टि डाल उसको उठाया और म्लेच्छोंकी नाश कामनासे तीक्ष्ण असिग्रहण कर घोड़ेपर सवारहो खड्ग धारण किया ।

धनुर्निषङ्गमनिशं बाणजालप्रकाशितम् ।

धृतहस्ततनुत्राणगोधाङ्गुलिविराजितम् ॥ ४७ ॥

४७) बाणपूर्ण तरकस, सुन्दर धनुष, बख्तर और अंगुलित्राणसे उनके शरीरकी अपूर्व छटा विस्तारित हुई।

मेघोपर्य्युप्ततारामं दंशनस्वर्णबिन्दुकम् ।
किरीटकोटिविन्यस्त-मणिराजिविराजितम् ॥ ४८ ॥

(४८) बख्तरके उपरिभागमें सुजटित सुवर्णबिन्दु नीलजलधर मालामें प्रकाशमान ताराकी शोभा दर्शाने लगे। किरीटके अग्रभागमें लगी हुई अनेक प्रकारकी मणियां सुशोभित हुईं।

कामिनीनयनानन्दसन्दोहरसमन्दिरम् ।
विपक्षपक्षविक्षेपक्षिप्तरूक्षकटाक्षकम् ॥ ४९ ॥

(४९) कामिनियोंके नयनानन्ददाता रसमन्दिर कल्किजी विपक्ष पक्षको विक्षिप्त करनेके निमित्त उनकी ओर रूक्ष कटाक्षसे देखने लगे।

निजभक्तजनोल्लास-संवासचरणाम्बुजम् ।
निरीक्ष्य कल्किं ते वौद्धास्तत्र सुधर्म्मनिन्दकाः ॥ ५० ॥

(५०) कल्किजीके कमल चरणका दर्शनकर भक्त जनोंका मन प्रफुल्लित हुआ और धर्म्म निन्दक वौद्धगण भयभीत हुए।

जहृषुः सुरसंघाः खे यागाहुतिहुताशनाः ॥ ५१ ॥

(५१) "यज्ञस्थलस्थित अग्निमें पुनः आहुति दी जायगी" यह कहकर देवतागण परम प्रसन्न हुए।

सुवलमिलनहर्षः शत्रुनाशैतकर्षः समरवरविलासः
साधुसत्कारकाशः। स्वजनदुरितहर्त्ता जीवजातस्य
भर्त्ता रचयतु कुशलं वः कामपूरावतारः ॥ ५२ ॥

(५२) जो सुसज्जित सेना समूह एकत्रितकर समस्त शत्रुओंका संहार करनेके अभिलाषी हैं, जो लीला पूर्वक युद्ध करनेवाले हैं, जो साधुओंको सत्कार देने वाले हैं, जो निज जनोंके दुःखहर्त्ता और समस्त जीवोंके भर्त्ता हैं, वही

साधुओंकी कामना पूर्ण करनेके निमित्त अवतार धारण करनेवाले कल्किजी तुम्हारा मंगल करें ।

इति श्रीसानुवादे कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये द्वितीयांशे बौद्धयुद्धो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

तृतीयांशः ।

प्रथम-अध्याय

सूत उवाच ।

ततः कल्किर्म्लेच्छगणान्करवालेन कालितान् ।
बाणैः संताडितानन्याननयद्यमसादनम् ॥ १ ॥

(१) सूतजी बोले,—अनन्तर कल्किजी कुछेक म्लेक्षोंको बाणों द्वारा वेधकर और कुछेकको खड्गसे मारकर यमालयको भेजते भये ।

विशाखयूपोऽपि तथा कविप्राज्ञसुमन्त्रकाः ।
गार्ग्यभार्ग्यविशालाद्या म्लेच्छान्निन्युर्यमक्षयम् ॥ २ ॥

(२) इसी प्रकारसे विशाषयूप, कवि, प्राज्ञ, सुमंत्रक, गर्ग्य, भर्ग्य, और विशाल आदिने म्लेक्षोंको यमालय भेजा ।

कपोतरोमा काकाक्षः काककृष्णादयोऽपरे ।
बौद्धाः शौद्धोदना याता युयुधुः कल्किसैनिकैः ॥ ३ ॥

(३) कपोतरोमा, काकाक्ष, काककृष्ण, और शुद्धोदन आदि कल्किजीकी सेनाके साथ संग्राम करने लगे ।

तेषां युद्धमभूद्घोरं भयदं सर्व्वदेहिनाम् ।
भूतेशानन्दजनकं रुधिरारुणकर्द्दमम् ॥ ४ ॥

(४) उस घोर युद्धसे भूमण्डलके समस्त प्राणी भयभीत होगये। भूतनाथ आनन्दित हुए। रुधिर युक्त लाल कीचड़से संग्रामभूमि आच्छादित होगई।

गजाश्वरथसंघानां पततां रुधिरस्रवैः ।
स्रवन्ती केशशैवाला वाजिग्राहा सुगाहिको ॥ ५ ॥

(५) रणपतित हाथी, घोड़े और रथियोंके रुधिरकी नदी बहने लगी। इस नदीमें केश शिवारसमूहकी शोभा दिखाने लगे और अश्व रूप ग्राह धारमें मग्न होगये।

धनुस्तरङ्गा दुष्पारा गजरोधःप्रवाहिणी ।
शिरःकूर्म्मा रथतरिः पणिमीनासृगापगा ॥ ६ ॥

(६) धनुष तरंगकी समान दिखाई देने लगे। हाथियोंने इस कठिनतासे पार होने योग्य नदीके सेतुकी समान शोभा धारण की। इस रुधिर प्रवाहिनी नदीमें कटे हुए मस्तक कच्छप, रथ नाव, और कटे हुए हाथ मनिकी भांति सुशोभित हुए।

प्रवृत्ता तत्र बहुधा हर्षयन्तो मनस्विनाम् ।
दुन्दुभेयरवा फेरुशकुनानन्ददायिनी ॥ ७ ॥

(७) इस रुधिर प्रवाहिनी नदीके तटपर दुन्दुभि ध्वनिकी भांति गीदड़ और बाज पक्षियोंकी आनन्दध्वनि होने लगी। यह देख साधुगण प्रसन्न हुए।

गजैर्गजा नरैरश्वाः खरैरुष्ट्रा रथै रथाः ।
निपेतुर्बाणभिन्नाङ्गाः छिन्नबाहूङ्घ्रिकन्धराः ॥ ८ ॥

(८) गजारूढ़ गजारूढ़योधासे, अश्वारोही अश्वारोहीयोधासे उष्ट्रारूढ़ उष्ट्रारूढ़योधासे और रथी रथीके साथ संग्राम करके बाणविद्ध और हाथ, पांव, शिर छिन्न होकर गिरने लगे।

भस्मना गुण्ठितमुखा रक्तवस्त्रा निवारिताः ।
विकीर्णकेशाः परितो तान्ति सन्न्यासिनो यथा ॥ ९ ॥

(९) कुछेक योद्धा भयके कारण गैरिक वस्त्र धारण कर मुखपर भस्म रमा, विकीर्णकेश हो संन्यासी बनकर निवारण करनेपर भी वहांसे जाने लगे।

व्यग्राः केऽपि पलायन्ते याचन्त्यन्य जलं पुनः ।
कल्किसेनाशुगक्षुण्णा म्लेच्छा नो शर्म्म लेभिरे ॥ १० ॥

(१०) कोई कोई व्याकुलतासे भागने लगे, कोई कोई बारम्बार पानी मांगने

लगे । इस प्रकार कल्किजीकी सेनाके बाणोंसे विद्ध म्लेच्छ सेनामें कोई भी कुशलसे न रहा ।

तेषां स्त्रियो रथारूढ़ा गजारूढ़ा विहङ्गमाः ।
समारूढ़ा हयारूढ़ा खरोष्ट्रवृषवाहनाः ॥ ११ ॥
योद्धुं समाययुस्त्यक्त्वा पत्यापत्यसुखाश्रयान् ।
रूपवत्यो युवत्योऽतिबलवत्यः पतिव्रताः ॥ १२ ॥

(११-१२) उनकी रूपवती, बलवान, पतिव्रता युवती रमणियां सन्तानसुख और सन्तान आश्रयकी कामना त्याग कोई रथारूढ़, कोई गजारूढ़, कोई विहङ्गमारूढ़ कोई अश्वारूढ़, कोई गर्दभारूढ़, कोई उष्ट्रारूढ़, कोई वृषभारूढ़ युद्ध करनेके निमित्त अपने पतिके युद्धाश्रयमें आईं ।

नानाभरणभूषाढ्याः सन्नद्धा विशदप्रभाः ।
खड्गशक्तिधनुर्बाणवलयाक्तकराम्बुजाः ॥ १३ ॥

(१३) यह उज्वल कान्तिधारी स्त्रियां अनेक आभूषणाभूषित, युद्धसाजमें सुसज्जित हो धनुष बाण धारणकर आई थीं । इनके कर कमलोंमें खँडुआ अपूर्व शोभा दिखाता था ।

स्वैरिण्योऽप्यतिकामिन्यो पुंश्चल्यश्च पतिव्रताः ।
ययुर्योद्धुं कल्किसैन्यैः पतीनां निधनातुराः ॥ १४ ॥

(१४) रमणीय आकारवाली इन स्त्रियोंमें कोई कोई स्वैरिणी, कोई पतिव्रता और कोई वारविलासिनी थीं । यह पति वियोगसे कातर हो कल्कि सेनाके साथ युद्धके निमित्त आगे बढ़ीं ।

मृद्भस्मकाष्ठचित्राणां प्रभुताम्नायशासनात् ।
साक्षातपतीनां निधनं किं युवत्योऽपि सेहिरे ॥ १५ ॥

(१५) शास्त्रमें कहा है कि,—मनुष्य, मिट्टी, राख और काष्ठादि वस्तुकी प्रभुतापर भी प्राण देनेको प्रस्तुत होजाते हैं । इसलिये युवतियोंको सन्मुख ही प्राण समान पतिकी मृत्यु सहलेना असम्भव है ।

ताः स्त्रियः स्वपतीन्बाणभिन्नान्व्याकुलितेन्द्रियान् ।
कृत्वा पश्चाद्युयुधिरे कल्किसैन्यैर्धृतायुधाः ॥ १६ ॥

(१६) तदन्तर म्लेक्ष स्त्रियां अपने स्वामियोंको बाणविद्ध और विह्वल देख उन्हे पीछे हटा अस्त्र ग्रहणकर कल्किजीकी सेनासे संग्राम करने लगीं।

ताः स्त्रीरुद्वीक्ष्य ते सर्वे विस्मयस्मितमानसाः।
कल्किमागत्य ते योधाः कथयामासुरादरात् ॥ १७ ॥

(१७) उन अवलाओंको युद्ध करती हुई देख कल्किजीकी सेनाने विस्मयापन्न हो कल्किजीके समीप आकर यत्नपूर्वक समस्त वृत्तान्त निवेदन किया।

स्त्रीणामेव युयुत्सूनां कथाः श्रुत्वा महामतिः।
कल्किः समुदितः प्रायात्स्वसैन्यैः सनुगो रथैः ॥ १८ ॥

(१८) युद्धाभिलाषी स्त्रियोंका वृत्तान्त सुन महाबुद्धिमान् कल्किजी हर्षपूर्वक रथारूढ़ सेना और अनुचरोंके साथ उस स्थानमें आये।

ताः समालोक्य पद्मेशः सर्वशस्त्रास्त्रधारिणीः।
नानावाहनसंरूढा कृतव्यूहा उवाच सः ॥ १९ ॥

(१९) अनेक शस्त्रास्त्र धारिणी, अनेक वाहन वाहिनी, व्यूह रचना पूर्वक स्थित उन म्लेछ रमणियोंको देखकर पद्मेश कल्किजी बोले।

कल्किरुवाच—रे स्त्रियः शृणुतास्माकं वचनं पथ्यमुत्तमम्।
स्त्रिया युद्धेन किं पुंसां व्यवहारोऽत्र विद्यते ॥ २० ॥

(२०) कल्किजी बोले:—हे अबलाओ! मैं तुम्हारे हितके लिये उत्तम वाक्य कहता हूं।—श्रवण करो। स्त्रीके साथ पुरुषको युद्ध करनेका व्यवहार नहीं है।

मुखेषु चन्द्रबिम्बेषु राजितालकपंक्तिषु।
प्रहरिष्यन्तिके तत्र नयनानन्ददायिषु ॥ २१ ॥

(२१) अलकावलिसे सुशोभित, सबके मनको आनन्द देनेवाला तुम्हारे इस चन्द्राननपर कौन पुरुष प्रहार करेगा?

विभ्रान्ततारभ्रमरं नवकोकनदप्रभम्।
दीर्घापाङ्गेक्षणं यत्र तत्र कः प्रहरिष्यति ॥ २२ ॥

(२२) जिस मुखरुपी चन्द्रपर दीर्घ अपाङ्ग वाले प्रस्फुटित कमलके समान नेत्रोंमें तारा रूपी भ्रमर भ्रमण कर रहे हैं उसपर कौन पुरुष प्रहार करेगा?

वक्षोजशम्भू सत्तार-हारव्यालविभूषितौ।
कन्दर्पदर्पदलनौ तत्रकः प्रहरिष्यति ॥ २३ ॥

(२३) तुम्हारे हृदयमें कुच रूप शम्भु विराजमान हो रहे हैं, सुन्दर हारने सर्पके समान उन कुचरूपी महादेवजीको विभूषित किया है। जिसे देखनेसे मदनका दर्प भी चूर्ण हो जाता है, उसपर कौन पुरुष अस्त्र प्रहार करेगा ?

लोललीलालकव्रात चकोराक्रान्तचन्द्रिकम्।
मुखचन्द्रं चिह्नहीनं कस्तं हन्तुमिहार्हति ॥ २४ ॥

(२४) तुम्हारे निष्कलंक मुखरूप चकोर चांदनीका पान करते हैं। पृथ्वीपर ऐसा कौन पुरुष है, जो उस मुखपर प्रहार करेगा ?

स्तनुभार-भराक्रान्त-नितान्तक्षीण-मध्यमम्।
तनलोमलताबन्धं कः पुमान्प्रहरिष्यति ॥ २५ ॥

(२५) पीन पयोधरोंके बोझसे कुछेक झुका हुआ तुम्हारा अति पतला मध्यदेश सूक्ष्म रोमावलिसे सुशोभित है। ऐसे अंगमें कौन पुरुष प्रहार करेगा ?

नेत्रानन्देन नेत्रेण समावृतमनिन्दितम्।
जघनं सुघनं रम्यं बाणैः कः प्रहरिष्यति ॥ २६ ॥

(२६) तुम्हारे इन नयनानन्ददायक, वस्त्राच्छादित, परम रमणीय निर्दोष घन-जघनपर कौन पुरुष बाण प्रहार करेगा।

इति कल्केर्वचः श्रुत्वा प्राहस्य प्राहुराहृताः।
अस्माकं त्वं पतीन् हंसि तेन नष्टा वयं विभो !।
हन्तुं गतानामस्त्राणि कराण्येवागतान्युत ॥ २७ ॥

(२७) कल्किजीके यह बचन सुनकर म्लेक्ष स्त्रियां हँसकर बोलीं,—हे महात्मन् ! जब आपने हमारे पतियोंका नाश कर डाला तब हमारा भी नाश हो चुका। यह कहकर वे स्त्रियां कल्किजीका नाश करनेके अर्थ उद्यत हुईं। वह जिन-अस्त्रोंको छोड़ने लगीं, परन्तु अस्त्र उनके हाथमें ही रह गये।

खड्ग-शक्ति-धनुर्बाण-शूल-तोमर-यष्टयः।
ताः प्राहुः पुरतो मूर्त्ताः कार्त्तस्वरविभूषणाः ॥ २८ ॥

(२८) खड्ग, शक्ति, धनुष बाण, शूल, तोमर और यष्टि आदि सुवर्ण विभूषित शस्त्रोंके देवतागण मूर्त्तिमान प्रगट हो म्लेच्छोंकी स्त्रियोंसे कहने लगे।

शस्त्राण्युचुः—यमासाद्य वयं नार्य्यो हिंसयामः स्वतेजसा।
तमात्मानं सर्व्वमयं जानीत कृतनिश्चयाः॥ २९॥

(२९) अस्त्रदेव बोले,—हे स्त्रियो! हमने जिनसे तेज पाया है और जिस तेज द्वारा हम प्राणियोंकी हिंसा करते हैं, वही परमात्मा सर्वमय ईश्वर इन्हें जानकर दृढ़ विश्वास करो।

तमीशमात्मना नार्य्यः! चरामो यदनुज्ञया।
यत्कृता नामरूपादिभेदेन विदिता वयम्॥ ३०॥

(३०) हे स्त्रीगण! हम इन्हीं ईश्वरकी आज्ञानुसार विचरण किया करते हैं। इनसेही हम नाम और रूपको प्राप्त होकर विख्यात हुए हैं।

रूप-गन्ध-रस-स्पर्श-शब्दाद्या भूतपञ्चकाः।
चरन्ति यदधिष्ठानात्सोऽयं कल्किः परात्मकः॥ ३१॥

(३१) रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्दादि पंचगुणके आधार पंचभूत जिनसे अधिष्ठित होकर अपना अपना कार्य्य करते हैं, यह कल्किजी वही परमात्मा हैं।

काल-स्वभाव-संस्कार-नामाद्या प्रकृतिः परा।
यस्येक्षया सृजत्यण्डं महाहङ्कारकादिकान्॥ ३२॥

(३२) इनकी आज्ञानुसारही काल, स्वभाव, संस्कार और नाम आदिकी आविर्भूत परमप्रकृति, महत्तत्त्व अहंकारतत्त्वादि समस्त ब्रह्माण्डको उत्पन्न करती है।

यन्मायया जगद्यात्रा सर्गस्थित्यन्तसंज्ञिता।
य एवाद्यः स एवान्ते तस्यायः सोऽयमीश्वरः॥ ३३॥

(३३) सृष्टि, स्थिति, प्रलयरूप जगतत्प्रपञ्च इनकी मायाके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। यही सबके आदि और अन्त हैं। इनसे ही संसारकी समस्त शुभ बातें होती हैं और यही ईश्वर हैं।

असौ पतिर्मे भार्य्याहमस्य पुत्राश्च बान्धवाः।
स्वप्नोपमास्तु तन्निष्ठा विविधाश्चैन्द्रजालवत्॥ ३४॥

(३४) यह हमारा पति, मैं इनकी स्त्री, यह मेरा पुत्र, यह मेरा आत्मीय, और यह मेरा बन्धु है यह सब स्वप्नवत् और इन्द्रजालके समान विविध व्यवहार इनसेही प्रकाशित होरहे हैं।

स्नेहमोनिबन्धानां यातायातदृशां मतम् ।
न कल्किसेविनां रागद्वेषविद्वेषकारिणाम् ॥ ३५ ॥

(३५) जो केवल स्नेह और मोहाधीन होकर आवागमन करते हैं, जो राग, द्वेष, विद्वेष आदिके कारण कल्किजीके सेवक नहीं है, वही इस संसारको सत्य समझते हैं।

कुतः कालः कुतो मृत्युः क्व यमः क्वास्तिदेवताः ।
स एव कल्किर्भगवान्मायया बहुलीकृतः ॥ ३६ ॥

(३६) काल कहांसे हुआ ? मृत्यु कहांसे आती है ? यम कौन है ? देवतागण कौन हैं ? यह सब भगवान् कल्किजी ही अपनी माया द्वारा अनेक होगये हैं।

न शस्त्राणि वयं नार्य्यः संप्रहार्य्या न च क्वचित् ।
शस्त्रप्रहर्तृभेदोऽयमविवेकः परात्मनः ॥ ३७ ॥

(३७) हे नारीगण ! हम शस्त्र नहीं हैं, हममें किसीपर प्रहार करनेकी शक्ति नहीं है। यह परमात्माही शस्त्र हैं और वही शस्त्र प्रहार कर सकते हैं। इसमें जो दो भेद हैं, वह केवल परमात्माकी माया है।

कल्किदासस्यापि वयं हन्तु नार्हाः कथोद्भुतम् ।
हनिष्यामो दैत्यपतेः प्रह्लादस्य यथा हरिम् ॥ ३८ ॥

(३८) जब दैत्यपति प्रहलादके कथनानुसार नारायणजीने नृसिंह मूर्त्ति धारण की थी, तब जिस प्रकार हम उनपर आघात नहीं कर सके थे, उसी प्रकार कल्किजीके सेवकोंपर भी आघात करनेकी शक्ति हममें नहीं है।

इत्यस्त्राणां वचः श्रुत्वा स्त्रियो विस्मितमानसाः ।
स्नेहमोहविनिर्मुक्तास्तं कल्किं शरणं ययुः ॥ ३९ ॥

(३९) अस्त्रोंके यह वचन सुनकर स्त्रियोंका हृदय विस्मयापन्न होगया और वह स्नेह मोहादि परित्यागकर कल्किजीके शरणागत हुईं।

ताः समालोक्य पद्मेशः प्रणता ज्ञाननिष्ठया।
प्रोवाच प्रहसन् भक्ति-योगं कल्मषनाशनम्॥ ४०॥

(४०) म्लेच्छ रमणियोंको ज्ञाननिष्ठामें प्रणत होते देख पद्मेश कल्किजीने हँसकर उनसे पापपुञ्ज विनाशक भक्तियोग कहना आरम्भ किया।

कर्म्मयोगञ्चात्मनिष्ठं ज्ञानयोगं भिदाश्रयम्।
नैष्कर्म्यलक्षणं तासां कथयामास माधवः॥ ४१॥

(४१) पुनः उन्होंने स्त्रियोंसे आत्मनिष्ठ-ज्ञानयोग, भेदज्ञानका कारण कर्म्मयोग और किस प्रकारसे भाग्याधीन नहीं होना पड़ता है प्रभृति समस्त विषय कहा।

ताः स्त्रियः कल्कि गदित ज्ञानेन विजितेन्द्रियाः।
भक्त्या परमवापुस्तत्योगिनां दुर्लभं पदम्॥ ४२॥

(४२) अनन्तर वह स्त्रियां कल्किजीके उपदेशसे ज्ञान प्राप्त हो, इन्द्रिय विजय पूर्व्वक भक्ति द्वारा योगिदुर्ल्लभ मोक्षपदको प्राप्त हुई।

दत्वा मोक्षं म्लेच्छबौद्धप्रियाणां कृत्वा युद्धं
भैरवं भीमकर्म्मा। हत्वा बौद्धान् म्लेच्छ
संघांश्च कल्किस्तेषां ज्योतिः स्थानमापूर्य्य रेजे॥ ४३॥

(४३) इस प्रकारसे भीमकर्म्मा कल्किजी भयंकर युद्ध करके बौद्ध और म्लेच्छोंका नाशकर उनकी स्त्रियोंको मुक्तिपद दे मृतक, म्लेच्छ और बौद्धोंको ज्योतिर्मय स्थानमें भेजकर सुशोभित हुए।

येऽश्रृण्वन्ति वदन्ति बौद्धनिधनं म्लेच्छक्षयं सादरा-
ल्लोकाः शोकहरं सदा शुभकरं भक्तिप्रदं माधवे।
तेषामेव पुनर्न जन्ममरणं सर्व्वार्थसम्पत्करं
मायामोहविनाशनं प्रतिदिनं संसारतापच्छिदम्॥ ४४॥

(४४) जो लोग बौद्धोंके नाश तथा म्लेच्छोंके क्षयकी यह कथा पठन श्रवण करेंगे उनके समस्त शोक दूर होंगे, सदैव कल्याण होगा, माधवके प्रति भक्ति उत्पन्न होगी और जन्म मरणसे मुक्त होंगे। इस कथाको श्रवण करनेसे सर्व सम्पदा

प्राप्त होती है, माया मोह दूर होता है और पुनः संसारतापसे सन्तापित नहीं होना होता।

इति श्रीसानुवादे कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे म्लेच्छ विनाशनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

तृतीयांशः।

द्वितीय-अध्याय

ततो बौद्धान् म्लेच्छगणान्विजित्य सह सैनिकैः।
धनान्यादाय रत्नानि कीकटात्पुनराव्रजत् ॥ १ ॥

(१) कल्किजी बौद्ध और म्लेक्षोंको पराजितकर रत्न धन ले सेना सहित कीकट नगरसे लौटे।

कल्किः परमतेजस्वी धर्म्माणां परिरक्षकः।
चक्रतीर्थं समागत्य स्नानं विधिवदाचरत् ॥ २ ॥

(२) तदनन्तर धर्म्म रक्षक परम तेजस्वी कल्किजीने चक्रतीर्थमें आकर विधि-वत् स्नान किया।

भ्रातृभिर्लोकपालाभैर्बहुभिः स्वजनैर्वृतः।
समायातान्मुनीं स्तत्र ददृशे दीनमानसान् ॥ ३ ॥

(३) कल्किजी लोकपालके समान भ्रातृगण और अनेक आत्मीय स्वजनोंके साथ वहांपर वास करने लगे। एक समय कल्किजीने हृदयसंतप्त कुछ मुनियोंको वहांपर आये हुए देखा।

समुद्विग्यागतांस्तत्र परिपाहि जगत्पते।
इत्युक्तवन्तो बहुधा ये तानाह हरिः परः ॥ ४ ॥

(४) भयभीत मुनिगण कल्किजीके समीप जाकर बारम्बार कहने लगे,—हे जगन्नाथ! रक्षा करो! अनन्तर नारायणजीने कहा।

बालखिल्ल्यादिकानल्पकायाञ्चीरजटाधरान् ।
विनयावनतः कल्किस्तानाह कृपणान्भयात् ॥ ५ ॥

(५) और लघु शरीरवाले छिन्नबसनाभूषित जटाधारी कातरहोकर आये हुए बालखिल्ल्यादिसे विनय पूर्व्वक नम्रतासे बोले ।

कस्माद्यूयं समायाताः केन वा भीषिता वत ।
तमहं निहनिष्यामि यदि वा स्यात्पुरन्दरः ॥ ६ ॥

(६) आप लोग कहांसे आते हैं ? किससे भीत हुए हैं ? कहिये ! यदि देवराज इन्द्र भी होगा, तौ भी मैं उसका नाश करूंगा ।

इत्याश्रुत्य कल्किवाक्यं तेनोल्लासितमानसाः ।
जगदुः पुण्डरीकाक्षं निकुम्भदुहितुः कथा ॥ ७ ॥

(७) कमलदल लोचन कल्किजीके यह वचन सुनकर ऋषि मुनियोंके चित्त प्रफुल्लित हुए और उन्होंने राक्षस निकुम्भ तनयाकी कथाको कहना आरम्भ किया ।

मुनयऊचुः—शृणुविष्णुयशःपुत्र ! कुम्भकर्णात्मजात्मजा ।
कुथोदरीति विख्याता गगनार्द्धसमुत्थिता ॥ ८ ॥

(८) मुनिबोलेः—हे विष्णु यशोदानन्दन ! सुनिये, कुम्भकर्णके पुत्र निकुम्भकी एक कन्या है । वह आकाश मण्डलसे अर्द्ध ऊंची है । उसका नाम कुथोदरी है ।

कालकञ्जस्य महिषी विकञ्जजननी च सा ।
हिमालये शिरः कृत्वा पादौ च निषधाचले ।
शेते स्तनं पाययन्ती विकञ्जं प्रस्नुतस्तनी ॥ ९ ॥

(९) वह राक्षसी कालकञ्ज नामक राक्षसकी भार्या है । उसके पुत्रका नाम विकञ्ज है । वह अपना मस्तक हिमालय पर्वतपर और चरण निषधाचलपर स्थापित करके विकंजके निकट स्तन रखकर उसको स्तनपान करा रही है ।

तस्या निश्वासवातेन विवशा वयमागताः ।

वालखिल्या । पुलस्त्यकी कन्याके गर्भमें क्रतुके शुक्रसे इन ऋषियोंका जन्म हुआ । गिनतीमें ये ६०००० हैं । इनके शरीर अंगुष्ठके पोरुएकी भांति छोटे छोटे हैं ।

दैवेनैव समानीताः संप्राप्तास्त्वत्पदास्पदम् ।
मुनयो रक्षणीयास्ते रक्षःसु च विपत्सु च ॥ १० ॥

(१०) हम उसके श्वासपवनसे विवश होकर यहांपर आये हैं। दैवही हमको यहांपर लाया है। इसीसे हम आपके चरणोंमें प्राप्त हुए हैं। हे देव ! राक्षससे एवं विपद्से मुनियोंकी रक्षा कीजिये।

इति तेषां वचः श्रुत्वा कल्किः परपुरञ्जयः ।
सेनागणैः परिवृतो जगाम हिमवद्गिरिम् ॥ ११ ॥

(११) मुनियोंके यह वचन सुनकर शत्रुपुरको जीतनेवाले कल्किजी सेना सहित हिमालय पर्वतपर गये।

उपत्यकां समासाद्य निशामेकां निनाय सः ।
प्रातर्जिगमिषुः सैन्यैर्ददृशे क्षीरनिम्नगाम् ॥ १२ ॥

(१२) हिमालय पर्वतपर पहुंचकर वहां एक रात्रि व्यतीतकी। उन्होंने प्रातःकाल ज्योंही सेना सहित यात्रा करनेके अभिलाषा की त्योंही एक दूधकी नदी देखपडी।

शंखेन्दुधवलाकारां फेनिलां बृहतीं द्रुतम् ।
चलन्तीं वीक्ष्यते सर्वे स्तम्भिता विस्मयान्विताः ॥ १३ ॥

(१३) यह नदी शङ्ख और चन्द्रमाका भांति उज्ज्वल, दीर्घाकार द्रुतिमान थी। इसके चारों ओर फेन उठ रहे थे। नदीका दुग्ध अति बेगसे बह रहा था। कल्किजीके सेवक ऐसी दूधकी नदीको देखकर विस्मयापन्न हो चकित होगये।

सेनागणगजाश्वादिरथयोधैः समावृतः ।
कल्किस्तु भगवांस्तत्र ज्ञातार्थोऽपि मुनीश्वरान् ॥ १४ ॥
पप्रच्छ का नदी चेयं कथं दुग्धवहाभवत् ।
ते कल्केस्तु वचः श्रुत्वा मुनयः प्राहुरादरात् ॥ १५ ॥

(१४-१५) भगवान् कल्किजी यद्यपि उसका कारण जानते थे, तथापि उन्होंने गज, अश्व, रथ, पैदल आदि समस्त योद्धाओंसे युक्त हो महर्षियोंसे पूंछा,—इस नदीका नाम क्या है ? इसमें किस कारणसे दूध बहता है ? कल्किजीके यह बचन सुनकर ऋषियोंने आदर पूर्वक कहा।

श्रृणु कल्के पयस्वत्याः प्रभवं हिमवद्गिरौ ।
समायाता कुथोदर्य्याः स्तनप्रस्नवनादिह ॥ १६ ॥

(१६) हे कल्किजी ! इस दुग्धवती नदीकी उत्पत्तिका वृत्तान्त कहता हूं । श्रवण कीजिये ! कुथोदरी नामक राक्षसीके स्तनका दुग्ध इस हिमालय पर्वतसे गिरकर नदी रूपसे प्रवाहित होरहा है ।

घटिकासप्तकैश्चान्या पयो यास्यति वेगितम् ।
हीनसारा तटाकारा भविष्यति महामते ॥ १७ ॥

(१७) इसके उपरान्त सात घड़ीके अनन्तर और एक दूधकी नदी प्रवाहित होगी । हे महामते ! पुनः यह नदी सारहीन तटाकार हो जायगी ।

इति श्रुत्वा मुनीनान्तु वचनं सैनिकैः सह ।
अहो किमस्या राक्षस्याः स्तनादेका त्वियं नदी ॥ १८ ॥

(१८) यह वचन सुनकर सेना सहित कल्किजी बोले,—कैसा आश्चर्य है ! इस राक्षसीके स्तनदुग्धसे इतनी बड़ी नदी उत्पन्न हुई है !

एकं स्तनं पाययति विकञ्जं पुत्रमादरात् ।
न जानेऽस्याः शरीरस्य प्रमाणं कति वा भवेत् ॥ १९ ॥

(१९) एक स्तन विकञ्जको आदर पूर्वक पान करा रही है । इसके शरीरका परिमाण कितना है सो वुद्धिके जानने योग्य नहीं है ।

बलं वास्या निशाचर्य्या इत्यूचुर्विस्मयान्विताः ।
कल्किः परात्मा सन्नह्य सेनाभिः सहसा ययौ ॥ २० ॥

(२०) सबने विस्मययुक्त होकर कहा,—इस राक्षसीमें बल कितना है ? अनन्तर परमात्मा कल्किजी सेना सहित सुसज्जित होकर निशाचरीके समीप चले ।

मुनिदर्शितमार्गेण यत्रास्ते सा निशाचरी ।
पुत्रं स्तनं पाययन्ती गिरिमूर्द्ध्नि घनोपमा ॥ २१ ॥

(२१) मुनिगण उस राक्षसीके वासस्थानका मार्ग दिखाने लगे । उन्होंने जाकर देखा, कि मेघाकार राक्षसी पर्वतशिखरपर बैठकर पुत्रको स्तन पिला रही है ।

श्वासवातातिवातेन दूरक्षिप्तवनद्विपाः।
यस्याः कर्णबिलावासं प्रसुप्ताः सिंहसंकुलाः ॥ २२ ॥

(२२) बनैले हाथी उसकी श्वासपवनसे टकराकर दूर गिर रहे हैं। कर्ण-विवरमें सिंहगण शयन कर रहे हैं।

पुत्रपौत्रपरिवृता गिरिगह्वरविभ्रमाः।
केशमूलमुपालम्ब्य हरिणा शेरते चिरम् ॥ २३ ॥

(२३) गिरिगुहाके भ्रमसे मृगगण पुत्र पौत्रादि सहित उसके रोमछिद्रमें शयन कर रहे हैं।

यूका इव न च व्यग्रा लुब्धजातङ्कया भृशम्।
तामालोक्य गिरेर्मूर्ध्नि गिरितत्परमाद्भुताम् ॥ २४ ॥
कल्किः कमलपत्राक्षः सर्व्वांस्तानाह सैनिकान्।
भयोद्विग्नान्बुद्धिहीनान्त्यक्तोद्यमपरिच्छदान् ॥ २५ ॥

(२४-२५) वह व्याधसे सम्पूर्ण निर्भय हैं एवं लीखकी समान लगे हुए हैं पर्वत-शिखरपर दूसरे पर्वतकी भांति उस राक्षसीको देखकर भयभीत और हतबुद्धि हो अस्त्रादि त्याग करनेके लिये उद्यत सिपाहियोंसे कमलनयन कल्किजी बोले।

कल्किरुवाच—गिरिदुर्गे वह्निदुर्गं कृत्वा तिष्ठन्तु मामकाः।
गजाश्वरथयोधा ये समायान्तु मया सह ॥ २६ ॥

(२६) कल्किजी बोले,—इस पहाड़ी दुर्गमें तुम सब अग्नि दुर्ग बनाकर बास करो एवं गजारूढ, अश्वारूढ़ और रथारूढ़ योद्धागण हमारे साथ आवें।

अहं स्वल्पेन सैन्येन याम्यस्याः संमुखं शनैः।
प्रहर्त्तुं बाणसन्दोहैः खड्गशक्तिपरश्वधैः ॥ २७ ॥

(२७) मैं थोड़ी सेना लेकर बाण समूह, खड्ग शक्ति और परशु प्रहार करनेके निमित्त इनके सन्मुख क्रमशः गमन करता हूं।

इत्युक्त्वास्थाप्य पश्चात्तान्बाणैस्तां समहनद्बली।
सा क्रुधोत्थाय सहसा ननर्द्द परमाद्भुतम् ॥ २८ ॥

(२८) कल्किजी यह कहकर सेनाको पीछे रख बाणोंसे राक्षसीपर आघात करने लगे। राक्षसीने सहसा क्रोधयुक्त उठकर अति अद्भुत ध्वनि की।

तेन नादेन महता वित्रस्ताश्चाभवञ्जनाः ।
निपेतुः सैनिकाः सर्व्वे मूर्च्छिता धरणीतले ॥ २९ ॥

(२९) उस घोर शब्दसे सबही भयभीत होगये। सेनापतिगण मूर्च्छित होकर भूमिपर गिरने लगे।

सा रथांश्च गजांश्चापि विवृतास्या भयानका ।
जघास प्रश्वासवातैः समानीय कुथोदरी ॥ ३० ॥

(३०) कुथोदरी भयानक मुख प्रसार अपने प्रश्वास द्वारा रथ, हाथी, घोड़ा आदिको आकर्षणकर भोजन करने लगी।

सेनागणास्तदुदरं प्रविष्टाः कल्किना सह ।
यथर्क्षमुखवातेन प्रविशन्ति पिपीलिकाः ॥ ३१ ॥

(३१) जिस प्रकार रीक्षके मुखपवनसे चींटियां उसके मुखमें प्रवेश कर जाती हैं, उसी प्रकार सेना सहित कल्किजीने उस राक्षसीके उदरमें प्रवेश किया।

तद्दृष्ट्वा देवगन्धर्व्वा हाहाकारं प्रचक्रिरे ।
तत्रस्था मुनयः शेपुर्जेपुश्चान्ये महर्षयः ॥ ३२ ॥

(३२) यह देखकर देवता और गन्धर्वगण हाहाकार करने लगे। मुनियोंने शाप दिया और महर्षियोंने कल्किजीकी कुशल कामनासे मंत्रका जप करना आरम्भ किया।

निपेतुरन्ये दुःखार्त्ता ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ।
रुरुदुः शिष्टयोधा ये जहृषुस्तन्निशाचराः ॥ ३३ ॥

(३३) वेदविद् ब्राह्मणगण दुःखित होकर उस स्थानमें गिर गये। प्रभु भक्त योद्धा-गण रुदन करने लगे। निशाचरगण आनन्दित हुए।

जगतां कदनं दृष्ट्वा सस्मारात्मानमात्मना ।
कल्किः कमलपत्राक्षः सुराराातिनिषूदनः ॥ ३४ ॥

(३४) देवताओंके शत्रुओंका नाश करनेवाले कल्किजीने इस प्रकार जगत्को दुखी देखकर स्वयं ही अपनेको स्मरण किया ।

बाणाग्निं चेलचर्म्माभ्यां कर्म्मनैर्यानदारुभिः ।
प्रज्वाल्योदरमध्येन करवालं समाददे ॥ ३५ ॥

(३५) अनन्तर कल्किजीने उस अंधकारमय उदरमें बाण द्वारा अग्नि प्रकट की और वस्त्र, चर्म्म एवं रथकाष्ठादिसे उस अग्निको प्रज्ज्वलित करके खड्ग उठाया।

तेन खड्गेन महता दाक्ष्यं निर्भिद्य बन्धुभिः ।
बलिभिर्भ्रातृभिर्वाहैर्वृतः शस्त्रास्त्रपाणिभिः ॥ ३६ ॥
बहिर्बभूव सर्वेशः कल्किः कल्कविनाशनः ।
सहस्राक्षो यथा वृत्रकुक्षिं दम्भोलिनेमिना ॥ ३७ ॥

(३६-३७) जिस प्रकारसे देवराज अपने वज्र द्वारा वृत्रासुरकी कोष भेदकर बहिर्गत हुए थे, उसी प्रकार सर्वेश्वर, पापहारी कल्किजी उस बड़े खड्गसे राक्षसीकी दाहिनी कोष भेदकर बलवान अस्त्र शस्त्रधारी बन्धु बान्धवोंके सहित बहिर्गत हुए।

योनिरंध्राद्गजरथास्तुरगाश्चाभवन्बहिः ।
नासिकाकर्णविवरात्केऽपि तस्या विनिर्गताः ॥ ३८ ॥

(३८) कितने एक हाथी, घोड़े, रथ और पदादिक योद्धागण उस राक्षसीके योनिमार्गसे निकल पड़े और कितने एक उसके नासिका और कर्ण विवरसे बहिर्गत हुए।

ते निर्गतास्ततस्तस्याः सैनिका रुधिरोक्षिताः ।
तां विव्यधुर्निक्षिपन्तीं तरसा चरणौ करौ ॥ ३९ ॥

(३९) अनन्तर रुधिरसे भींगे शरीरवाले योद्धागण बाहर निकलकर राक्षसीको हाथ पांव संचालन करते देखकर तत्क्षण बाण द्वारा उसको बींधने लगे।

ममार सा भिन्नदेहा भिन्नकुक्षिशिरोधरा ।
नादयन्तीं दिशो द्योः खं चूर्णयन्ती च पर्वतान् ॥ ४० ॥

(४०) उदर, मस्तक आदि समस्त अङ्ग छिन्न भिन्न होनेपर उसने घोर नाद द्वारा दशों दिशाएं परिपूर्ण कर दी और आस्फालन द्वारा पर्वतोंको चूर्ण विचूर्ण करके प्राण त्याग किया।

करञ्जोऽपि तथा वीक्ष्य मातरं कातरोऽभवत्।
स विकञ्जः क्रुधा धावन्सेनामध्ये निरायुधः॥ ४१॥

(४१) विकञ्जने अपनी माताकी यह दशा देख कातर और क्रोधयुत हो बिना शस्त्रके ही सेनामें प्रवेश किया।

गजमालाकुलो वक्षोवाजिराजिविभूषणः।
महासर्पकृतोष्णीषः केसरीमुद्रिताङ्गुलिः॥ ४२॥

(४२) उसके हृदयमें गजमाला, समस्त अंगोमें अश्वश्रेणीके आभूषण, मस्तकपर महासर्पकी पगड़ी और उँगलियोंमें सिंह समूह अंगूठी रुपसे आवद्ध हैं।

ममर्द्द कल्किसेनां तां मातुर्व्यसनकर्षितः।
स कल्किस्तं ब्राह्ममस्त्रं रामदत्तं जिघांसया॥ ४३॥
धनुषा पञ्चवर्षीयं राक्षसं शस्त्रमाददे।
तेनास्त्रेण शिरस्तस्य छित्वा भूमावपातयत्॥ ४४॥

(४३-४४) वह माताके शोकसे कातर होकर कल्किजीकी सेनाको पीड़ित करने लगा। कल्किजीने उस पांचवर्षके बालकका नाश करनेके अर्थ ब्रह्मास्त्र धारण किया और उसका मस्तक छिन्नकर पृथ्वीपर डाला।

रुधिराक्तं धातुचित्रं गिरिशृङ्गमिवाद्भुतम्।
सपुत्रां राक्षसीं हत्वा मुनीनां वचनाद्विभुः॥ ४५॥

(४५) मुनियोंके वचनसे कल्किजीने गेरु आदिसे चित्रित पर्वतशिखरके समान अति अद्भुत रुधिरसे लिप्त पुत्र सहित राक्षसीका नाश किया।

गङ्गातीरे हरिद्वारे निवासं समकल्पयत्।
देवानां कुसुमासारैर्मुनिस्तोत्रैः सुपूजितः॥ ४६॥

(४६) कल्किजीने देवतागणकी पुष्पवर्षा और मुनिगणकी स्तुतिसे सुपूजित होनेपर वहांसे चलकर हरिद्वार स्थित गङ्गा तटपर अपनी सेनाका डेरा डाला।

निनाय तां निशां तत्र कल्किः परिजनावृतः ।
प्रातर्ददर्श गङ्गायास्तीरे मुनिगणान्बहून् ।
तस्याः स्नानव्याजविष्णोरात्मनो दर्शनाकुलान् ॥ ४७ ॥

(४७) भगवान कल्किजीने परिजन सहित वह रात्रि उसी स्थानमें व्यतीत की। प्रातःकाल देखा कि मुनिगण गङ्गास्नानके मिष उनको देखनेके लिये व्याकुल हो रहे हैं।

हरिद्वारे गङ्गातटनिकटपिण्डारकवने ।
वसन्तं श्रीमन्तं निजगणवृतं तं मुनिगणाः ।
स्तवैः स्तुत्वा स्तुत्वा विधिवदुदितैर्जन्हुतनयां
प्रपश्यन्तं कल्किं मुनिजनगणा द्रष्टुमगमन् ॥ ४८ ॥

(४८) कल्किजी हरिद्वारमें गङ्गातटके निकट पिण्डारक बनमें परिजन सहित वास करते हैं। एक दिन कल्किजी जन्हु तनयाका दर्शन कर रहे थे। इसी समय मुनिगण उनके दर्शनके निमित्त आकर विधि बोधित स्तुति वाक्य द्वारा उनका स्तव करने लगे।

इति श्रीसानुवादे कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे कुथोदरी वधान्तरं मुनिदर्शनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २ ॥

तृतीयांशः ।

तृतीय-अध्याय

सूत-उवाच ।

सुस्वागतान्मुनीन्हृष्ट्वा कल्किः परमधर्म्मवित् ।
पूजयित्वा च विधिवत्सुखासीनानुवाच तान् ॥ १ ॥

(१) परम धार्मिक कल्किजीने मुनियोंको आनन्दपूर्वक आये हुए सुखासीन देखकर उनकी विधिवत अर्चना करके कहा।

कल्किरुवाच—के यूयं सूर्य्यसङ्काशा मम भाग्यादुपस्थिताः।
तीर्थाटनोत्सुका लोकत्रयाणामुपकारकाः ॥ २ ॥

(२) कल्किजी बोलेः—साक्षात् सूर्य्यवत् तेजस्वी, तीर्थपर्य्यटनमें तत्पर त्रैलोकके हित साधनमें रत आप लोग कौन हैं ? आज हमारे सौभाग्यसे ही आप लोगोंका यहां आना हुआ है !

वयं लोके पुण्यवन्तो भाग्यवन्तो यशस्विनः।
यतः कृपाकटाक्षेण युष्माभिरवलोकिताः ॥ ३ ॥

(३) आज हम लोकमें पुण्यवान, भाग्यवान और यशस्वी हुए क्योंकि आप लोगोंने आज हमको कृपा कटाक्षसे अवलोकन किया है।

ततस्ते वामदेवोऽत्रिर्वसिष्ठो गालवो भृगुः।
पराशरो नारदोऽश्वत्थामा रामः कृपस्त्रितः ॥ ४ ॥
दुर्वासा देवलः कण्वो वेदप्रमितिरङ्गिराः।
एते चान्ये च बहवो मुनयः संशितव्रताः ॥ ५ ॥
कृत्वाग्रे मरुदेवापी चन्द्रसूर्य्यकुलोद्भवौ।
राजानौ तौ महावीर्य्यौ तपस्याभिरतौ चिरम् ॥ ६ ॥
ऊचुः प्रहृष्टमनसः कल्किं कल्कविनाशनम्।
महोदधेस्तीरगतं विष्णुं सुरगणा यथा ॥ ७ ॥

(४-५-६-७) तदनन्तर वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ, गालव, भृगु, पराशर, नारद, अश्वत्थामा, परशुराम, कृपाचार्य्य, त्रित, दुर्वासा, देवल, कण्व, वेदप्रमिति और अंगिरा आदि समस्त मुनिगण तथा अन्यान्य महा व्रतधारी ऋषिगण,—चन्द्र सूर्य्य वंशोद्भव, महावीर्य्यशाली, तपनिरत महाराज मरू और देवापिको सन्मुख देखकर—जिस प्रकार हर्षित अन्तःकरण देवताओंने महासागर तटस्थित विष्णुजीसे कहा था उसी प्रकार पापहारी कल्किजीसे बोले।

मुनय ऊचुः—जयाशेषजगन्नाथ ! विदिताखिलमानस !।
सृष्टिस्थितिलयाध्यक्ष ! परमात्मन्प्रसीद नः ॥ ८ ॥

(८) मुनिगण बोले:—हे! जगन्नाथ! हे समस्त विजयी! हे त्रिलोकीके अन्तः करणकी वृत्ति जानने वाले! हे सृष्टि स्थिति और लयके अध्यक्ष! हे परमात्मन्! प्रसन्न होओ।

कालकर्म्मगुणावास प्रसारितनिजक्रिय!।
ब्रह्मादिनुतपादाब्ज! पद्मानाथ प्रसीद नः॥ ९॥

(९) हे पद्मनाथ! तुम काल स्वरूप हो, जगत्के गुण कर्म्म तुममें ही विद्यमान हैं। देवतागण भी तुह्मारे चरण कमलकी वन्दना किया करते हैं। तुम इस समय हमारे प्रति प्रसन्न होओ।

इति तेषां वचः श्रुत्वा कल्किः प्राह जगत्पतिः।
कावेतौ भवतामग्रे महासत्त्वौ तपस्विनौ॥ १०॥

(१०) इस प्रकार मुनिगणके वचन सुनकर जगत्पति कल्किजी बोले--"हे मुनि गण! तुह्मारे सन्मुख यह महाबली, पराक्रमी और तपनिरत युगल व्यक्ति कौन हैं?"

कथमत्रागतौ स्तुत्वा गङ्गां मुदितमानसौ।
का वा स्तुतिस्तु जाह्नाव्या युवयोर्नामनी च के॥ ११॥

(११) यह किसलिये गंगाजीकी स्तुतिकर प्रसन्न चित्तसे यहां पर आये हैं? तथा किस कारणसे गंगाजीका जप करते हैं? इनके नाम क्या हैं?

तयोर्मरुः प्रमुदितः कृताञ्जलिपुटः कृती।
आदावुवाच विनयी निजवंशानुकीर्त्तनम्॥ १२॥

(१२) तदन्तर उन दोनों कार्य्यचतुर मरू महाशयोंने संतुष्टचित्त हाथजोड़ सन्मुख खड़ेहो विनययुक्त वाणीसे अपने वंशकी कीर्त्ति वर्णन की।

मरुरुवाच—सर्वंवेत्सि परात्मापि अन्तर्यामिहृदि स्थित।
तवाज्ञया सर्वमेतत्कथयामि शृणु प्रभो॥ १३॥

(१३) मरुने कहा,—आप सर्वव्यापी, परमात्मा और अन्तर्यामी हैं—"हे प्रभो! आपको सब कुछ विदित है। आपकी आज्ञासे समस्त वर्णन करता हूं"—"श्रवण कीजिये।"

तव नाभेरभूद्ब्रह्मा मरीचिस्तत्सुतोऽभवत्।

ततो मनुस्तत्सुतोऽभूदिक्ष्वाकुः सत्यविक्रमः ॥ १४ ॥

(१४) आपकी नाभिस्थलसे ब्रह्माने जन्म ग्रहण किया था। ब्रह्माके पुत्र मरीचि, मरीचिसे मनु और मनुसे सत्यविक्रमकारी इक्ष्वाकु उत्पन्न हुए थे।

युवनाश्व इति ख्यातो मान्धाता तत्सुतोऽभवत् ।
पुरुकुत्सस्तत्सुतोऽभूदनरण्यो महामतिः ॥ १५ ॥

(१५) इक्ष्वाकुका पुत्र युवनाश्व, युवनाश्वका पुत्र मान्धाता, मान्धाताका पुत्र पुरुकुत्स, पुरुकुत्ससे महा बुद्धिमान अनरण्य जन्मे।

त्रसदस्युः पिता तस्माद्धर्य्यश्वस्त्वरुणस्ततः ।
त्रिशङ्कुस्तत्सुतो धीमान्हरिश्चन्द्रः प्रतापवान् ॥ १६ ॥

(१६) अनरण्यका पुत्र त्रसदस्यु, उनसे हर्यश्व और हर्यश्वका पुत्र अरुण हुआ। अरुणका पुत्र बुद्धिमान त्रिशंकु, त्रिशंकुसे प्रतापवान् महाराज हरिश्चन्द्रने जन्म लिया था।

हरितस्तत्सुतस्तस्माद्भरुकस्तत्सुतो वृकः ।
तत्सुतः सगरस्तस्मादसमञ्जास्ततोऽशुमान् ॥ १७ ॥

(१७) महाराज हरिश्चन्द्रका पुत्र हरित, हरितका पुत्र भरुक, भरुकका पुत्र वृक, वृकका पुत्र असमञ्जा और असमञ्जासे अंशुमान उत्पन्न हुए।

ततो दिलीपस्तत्पुत्रो भगीरथ इति स्मृतः ।
येनानीता जाह्नवीयं ख्याता भागीरथी भुवि ।
स्तुता नुता पूजितेयं तव पादसमुद्भवा ॥ १८ ॥

(१८) अंशुमानका पुत्र दिलीप, दिलीपके भगीरथ नामक विख्यात पुत्र थे। यही गङ्गाको लाये थे। इसी कारण गङ्गा भगीरथके नामसे प्रसिद्ध हैं। आपके चरणसे उत्पन्न होनेके कारण सांसारिक जन इनकी स्तुति, प्रणाम और पूजा करते हैं।

भगीरथात्सुतस्तस्मान्नाभस्तस्मादभूद्बली ।
सिन्धुद्वीपसुतस्तस्मादायुतायुस्ततोऽभवत् ॥ १९ ॥

(१९) भगीरथका पुत्र नाभ, नाभका पुत्र बलवान सिन्धुद्वीप और सिन्धुद्वीपसे अयुतायुने जन्म ग्रहण किया।

ऋतुपर्णस्तत्सुतोऽभूत्सुदासस्तत्सुतोऽभवत्।
सौदासस्तत्सुतो धीमानश्मकस्तत्सुतो मतः॥ २०॥

(२०) अयुतायुका पुत्र ऋतुपर्ण, ऋतुपर्णका पुत्र सुदास, सुदासका पुत्र सौदास और सौदासका पुत्र बुद्धिमान अश्मक हुआ।.

मूलकात्स दशरथस्तस्मादेडविडस्ततः।
राजा विश्वसहस्तस्मात्खट्वाङ्गो दीर्घबाहुकः॥ २१॥

(२१) अश्मकका पुत्र मूलक, मूलकका पुत्र दशरथ और दशरथसे एडविडने जन्म लिया एडविडका पुत्र विश्वसह, विश्वसहका पुत्र खट्वांग, और खट्वांगका पुत्र दीर्घबाहु था।

ततो रघुरजस्तस्मात्सुतो दशरथःकृती।
तस्माद्रामो हरिः साक्षादाविर्भूतो जगत्पतिः॥ २२॥

(२२) दीर्घबाहुका पुत्र रघु, रघुसे अज, अजके पुत्र दशरथ, और दशरथजीसे साक्षात् जगन्नाथ हरिने श्रीरामरूपसे अवतार लिया था।.

रामावतारमाकर्ण्य कल्किः परमहर्षितः।
मरुं प्राह विस्तरेण श्रीरामचरितं वद॥ २३॥

(२३) रामावतारकी कथा श्रवण करके कल्किजी परम हर्षको प्राप्त हुए और विस्तार सहित श्रीरामचरित्रका वर्णन करनेके लिये मरूसे कहा।

सीतापतेः कर्म्म वक्तुं कः समर्थोऽस्ति भूतले।
शेषः सहस्रवदनैरपि लालायितो भवेत्॥ २४॥
तथापि शेमुषी मेऽस्ति वर्णयामि तवाज्ञया।
रामस्य चरितं पुण्यं पापतापप्रमोचम्॥ २५॥

(२४-२५) मरूने कहा:—इस पृथ्वीमें ऐसा कौन है, जो सीतानाथ श्रीरामचन्द्रजीके कर्म्मोंका वर्णन कर सके। सहस्र मुखवाले अनन्तजी भी उनका यशोगान करनेमें असमर्थ हैं तथापि आपकी आज्ञासे अपनी बुद्धिके अनुसार पाप ताप नाशक पवित्र श्रीरामचरित्रका वर्णन करता हूं।

अजादिविबुधार्थितोऽजनि चतुर्भिरंशैः कले

रवेरजसुतादजो जगति यातुधानक्षयः।
शिशुः कुशिकजाध्वरक्षयकरक्षयो यो बला-
द्वलीललितकन्धरो जयति जानकीवल्लभः॥ २६॥

(२६) पूर्वकालमें ब्रह्मादि देवताओंकी प्रार्थनासे सूर्य्यवंशमें राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, इन चार अंशोंसे दशरथजीके यहां राक्षसोंका विनाश करनेवाले जानकीपति श्रीरामचन्द्रजीने अवतार लिया। उन्होंने शैशवास्थामें विश्वामित्रके यज्ञमें विघ्न करनेवाले राक्षसोंको बलपूर्वक नष्टकर श्रेष्ठताको प्रकाश किया।

मुनेरनुसहानुजो निखिलशस्त्रविद्यातिगो।
ययावतिवनप्रभो जनकराजराजत्सभाम्॥ २७॥

(२७) जिनकी महिमासे कामना पूर्ण जगत्‌में पुनर्जन्म नहीं होता, जो महाबलवान और प्रभासम्पन्न हैं, ऐसे समस्त शस्त्र विद्या विशारद श्रीरामचन्द्रजी जनमोहन-रूप धारणकर लक्ष्मण सहित मुनियोंके साथ राजा जनककी सभामें गमन करते हुए।

विधाय जनमोहनद्युतिमतीव कामदुहः
प्रचण्डकरखण्डिमा भवनभञ्जने जन्मनः॥
तमःप्रतिमतेजसं दशरथात्मजं सानुजं
मुनेरनु यथा विधेः शशिवदादिदेवं परम्।
निरीक्ष्य जनको मुदा क्षितिसुतापतिं संमतं
निजोचितपणक्षमं मनसि भर्त्सयन्नाययौ॥ २८॥

(२८) ब्रह्माजीके पीछे सुशोभित चन्द्रमाकी भांति अनुपम तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण सहित विश्वामित्र मुनिके पीछे विधिवत बैठे। आदि देव परमात्माको साक्षात् देखकर जनकजीने विचारा कि—यह जानकीके योग्य वर हैं और अपने प्रणको अनुचित जानकर अपनेको मनही मनमें धिक्कारते हुए श्रीरामचन्द्रके निकट गये।

स भूपपरिपूजितो जनकजेक्षितैरर्चितः
करालकठिनं धनुः करसोरुहे संहितम्।
विभज्य बलवद्दृढं जय रघूद्वहेत्युच्चकैर्ध्वनिं
त्रिजगतीगतं परिविधाय रामो बभौ॥ २९॥

(२९) जनकजीके आदर और जानकीजीके कटाक्षसे सत्कार पाकर श्रीरामचन्द्रजीने अत्यन्त कठिन धनुष को हाथमें लेकर उसके दो खण्ड कर डाले। उससे श्रीरामचन्द्रजीकी जय! श्रीरामचन्द्रजीकी जय! इस ऊंची ध्वनिसे त्रिलोकी व्याप्त होगई। श्रीरामचन्द्रजी अति शोभाको प्राप्त हुए।

ततो जनकभूपतिर्दशरथात्मजेभ्यो ददौ
चतस्र उषतीर्मुदा वरचतुष्टयं उद्वाहने।
स्वलंकृतनिजात्मजाः पथि ततो बलं भार्गव-
श्चकार उररीनिजं रघुपतौ महोग्रं त्यजन्॥ ३०॥

(३०) तदनन्तर राजा जनकजीने राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न दशरथजीके इन चार पुत्रोंको—सीता, उर्मिला, माण्डवी और श्रुतिकीर्त्ति अपनी यह चार अलंकृता कन्याओंको आनन्दसे दान कर दिया। जब सब लोग विवाह करके अवधपुरीको आरहे थे तब मार्गमें भृगुनन्दन परशुरामजीने रामचन्द्रजीपर अपना अमित विक्रम प्रकट किया।

ततः स्वपुरमागतो दशरथस्तु सीतापतिं
नृपं सचिवसंयुतो निजविचित्रसिंहासने।
विधातुममलप्रभं परिजनैः क्रियाकारिभिः
समुद्यतमतिं तदा द्रुतमवारयत्कैकयी॥ ३१॥

(३१) तदनन्तर राजा दशरथजीने अयोध्यामें पहुंचनेपर मंत्रियोंसे परामर्शकर सीतापति श्रीरामचन्द्रजीको अपने विचित्र सिंहासनको देनेका संकल्प किया। अभिषेककी समस्त तैयारियां होने लगीं। परिजनगण अभिषेककी सामग्री एकत्रित करने लगे। इसी समय कैकईने आकर रामाभिषेकमें उद्योग करते हुए दशरथजीको शीघ्र रोका।

ततो गुरुनिदेशतो जनकराजकन्यायुतः
प्रयाणमकरोत्सुधीर्यदनुगः सुमित्रासुतः।
वनं निजगणं त्यजन्गुहगृहे वसन्नादरात्
विसृज्य नृपलाञ्छनं रघुपतिर्जटाचीरभृत्॥ ३२॥

(३२) तदनन्तर पिताकी आज्ञानुसार लक्ष्मण और सीता सहित श्रीरामचन्द्रजी

वनको गये। आगे साथ जाते हुए पुरवासियोंको छोड़ गुहके गृह पहुंच राज-चिन्होंको त्याग जटा वल्कल धारण किया।

प्रियानुजयुतस्ततो मुनिमतो वने पूजितः
स पञ्चवटिकाश्रमे भरतमातुरं संगतम्।
निवार्य्य मरणं पितुः समवधार्य्य दुःखातुर-
स्तपोवनगतोऽवसद्रघुपतिस्ततस्ताः समाः ॥ ३३ ॥

(३३) वनमें प्रिया अनुज सहित श्रीरामचन्द्रजी मुनिवेषसे सुपूजित हो पंच-वटीमें वास करने लगे। अनन्तर भरतजी कातर हो उनके निकट आये। पिताजीके मरणकी वार्त्ता सुनकर श्रीरामचन्द्रजी दुःखित हुए। भरतजीको समझाया। आगे शेषवर्ष आपने तपोवनमें व्यतीत किये।

दशाननसहोदरां विषमबाणवेधातुरां-
समीक्ष्य वररूपिणीं प्रहसतीं सतीं सुन्दरीम्।
निजाश्रयमभीप्सतीं जनकजापतिर्लक्ष्मणा-
त्करालकरवालतः समकरोद्विरूपां ततः ॥ ३४ ॥

(३४) अनन्तर कामवाणसे पीड़ित, श्रेष्ठ वेषवाली, सुन्दरी, हास्ययुक्त, वरा-भिलाषी रावणकी बहिन शूर्पणखाको देखकर रामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीको संकेत किया और लक्ष्मणजीने तीक्ष्ण असिसे उस राक्षसीको कुरूप किया।

समाप्य पथि दानवं खरशरैः शनैर्नाशयन्
चतुर्द्दशसहस्रकं समहनत्खरं सानुगम्।
दशाननवशानुगं कनकचारुचर्म्मृगं
प्रियाप्रियकरो वने समवधीद्बलाद्राक्षसम् ॥ ३५ ॥

(३५) तदनन्तर मार्गमें दानवको नष्टकर चौदह सहस्र सेनाके स्वामी, रावण अनुगामी खरदूषणको अनुचरों सहित संहार किया। अनन्तर सीताजीकी प्रिय कामनासे चञ्चल सुवर्णमयी मृगरूपी राक्षसका बध किया।

पञ्चवटी। दण्डकारण्यके अन्तर्गत गोदावरी नदीके तटपर बन है। इसका वर्तमान नाम नासिक तीर्थ है।

ततो दशमुखस्त्वरंस्तमभिवीक्ष्य रामं रुषा
व्रजन्तमनुलक्ष्मणं जनकजां जहाराश्रमे ।
ततो रघुपतिः प्रियां दलकुटीरसंस्थापितां
न वीक्ष्य तु विमूर्च्छितो बहु विलप्य सीतेति ताम् ॥३६॥

(३६) तदनन्तर मार्गमें राम लक्ष्मणको गमन करते हुए देख रावणने शीघ्रतापूर्वक उनके आश्रमसे सीताजीको हरण किया । पर्णकुटीमें सीताजीको न देखकर "हा सीते ! हा सीते !" आदि शोकवाणीसे विलापकर श्रीरामचन्द्रजी मूर्च्छित हुए।

वने निजगणाश्रमे नगतले जले पल्वले
विचित्य पतितं खगं पथि ददर्श सौमित्रिणा ।
जटायुवचनात्ततो दशमुखाहृतां जानकीं
विविच्य कृतवान्मृते पितरि वह्निकृत्यं प्रभुः ॥ ३७ ॥

(३७) तदनन्तर ऋषि आश्रम, पर्वत गुहा, जल स्थल समस्त स्थानोंमें सीताजीको ढूंढ़कर मार्गमें मृतवत जटायुको पड़ा हुआ देखा। उससे रावण द्वारा सीताजीका हरणसम्वाद सुन पाया । जटायुकी मृत्यु होनेपर श्रीरामचन्द्रजीने पितृतुल्य उसका मृत कर्म्म किया ।

प्रियाविरहकातरोऽनुजपुरःसरो राघवो
धनुर्धरधुरन्धरो हरिबलं नवालापिनम् ।
ददर्श ऋषभाचलाद्द्विजवालिराजानुज-
प्रियं पवननन्दनं परिणतं हितं प्रेषितम् ॥ ३८ ॥

(३८) सीताजीके वियोगसे धनुर्धरोंके धुरंधर लक्ष्मणजीके साथ श्रीरामचन्द्रजीने नवीन परिचित वानर सेनाके साथ साक्षात किया और सूर्य्यपुत्र बालिके लघु भ्राता सुग्रीवके मंत्री हनुमानजीको देखा।

ततस्तदुदितं मतं पवनपुत्रसुग्रीवयो-
स्तृणाधिपतिभेदनं निजनृपासनस्थापितम् ।

ऋष्यमूक । मन्द्राज प्रान्तान्तर्गत बिलारीसे ३० कोशकी दूरीपर हाम्पि एवं आग्निगन्धिमें किष्किन्ध्यादि पर्वत हैं । किष्किन्धासे ४ कोश ऋष्यमूक पर्वत है । इसी पर्वतकी तराईपर पम्पा सरोवर है ।

विविच्य व्यवसायकैर्निजसखाप्रियं बालिनम्
निहत्य हरिभूपतिं निजसखं स रामोऽकरोत् ॥ ३९ ॥

(३९) अनन्तर सुग्रीव और हनुमानजीके प्रार्थना करनेपर श्रीरामचन्द्रजीने सप्त तालको भेद डाला और बाणसे बालिको मारकर सुग्रीवसे मित्रताकर उन्हें बानरोंका राजा बनाया।

अथोत्तरमिमां हरिर्जनकजां समन्वेषयन्
जटायुसहजोदितैर्जलनिधिं तरन्वायुजः।
दशाननपुरं विशञ्जनकजां समानन्दय
न्नशोकवनिकाश्रमे रघुपतिं पुनः प्राययौ ॥ ४० ॥

(४०) तदनन्तर पवनकुमार हनुमानजी जानकीजीको ढूंढते हुए संपातिके कथनानुसार समुद्र पारकर लङ्कापुरीमें प्रवेश करके अशोकवनमें जानकीजीको संभाषणसे आनन्द देकर फिर रघुनाथजीके निकट आये।

ततो हनुमता बलादमितरक्षसां नाशनं
ज्वलज्ज्वलनसंकुलज्वलितदग्धलङ्कापुरम्।
विविच्य रघुनायको जलनिधिं रुषा शोषयन्
बबन्ध हरियूथपैः परिवृतो नगैरीश्वरः ॥
बभञ्ज पुरपत्तनं विविधसर्गदुर्गक्षमम्
निशाचरपतेः क्रुधा रघुपतिः कृती सद्गतिः ॥ ४१ ॥

(४१) अनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने हनुमानजीके द्वारा बलपूर्वक अनेक राक्षसोंका नाश और लङ्कादहन जानकर क्रोधित हो पर्वतोंसे समुद्र बांधकर वानरयूथके साथ लङ्कामें गमन किया और निशाचरपति रावणके पुर प्राचीर आदिका विध्वंस कर डाला।

ततोऽनुजयुतो युधि प्रबलचण्डकोदण्डभृत्
शरैः खरतरैः क्रुधा गजरथाश्वहंसाकुले।
करालकरवालतः प्रबलकालजिह्वाग्रतो
निहत्य वरराक्षसान्नरपतिर्बभौ सानुगः ॥ ४२ ॥

(४२) अनन्तर लक्ष्मणजी सहित श्रीरामचन्द्रजी अति उग्र शरासन धारणकर हाथी, घोड़े और रथसे युक्त हो तीक्ष्ण बाण और कराल खड्गसे राक्षसोंका संहार करके कराल कालके जिव्हाग्रकी भांति सुशोभित हुए।

ततोऽतिबलवानरैर्गिरिमहीरुहोद्यत्करैः
करालतरताडनैर्जनकजारुषा नाशितान्।
निजघ्नुरमरार्द्दनानतिबलान्दशास्यानुगान्
नलाङ्गदहरीश्वराऽशुगसुतर्क्षराजादयः॥ ४३॥

(४३) अनन्तर बानरराज सुग्रीव, पवनकुमार हनुमानजी, नल, अङ्गद जाम्बवन्त आदि महाबली बानरोंने वृक्ष और पर्वतके भयंकर प्रहारसे महाबली, प्राक्रमी देवताओंके बैरी रावणके सेवक राक्षसोंका संहार किया। जो राक्षस जानकीजीके क्रोधसे पहिलेही नष्ट हो रहे थे।

ततोऽतिबललक्ष्मणस्त्रिदशनाथशत्रुं रणे
जघान घनघोषणानुगगणैरसृक्प्राशनैः।
प्रहस्त विकटादिकानपि निशाचरान्सङ्गतान्
निकुम्भ मकराक्षकान्निशितखड्गपातैः क्रुधा॥ ४४॥

(४४) महाबलवान लक्ष्मणजीने महाघोर शब्दकारी, रूधिर पीनेवाले अनुचरोंसे घिरे हुए इन्द्रजितका वध किया। तदनन्तर क्रोधित हो निकुम्भ, मकराक्ष और विकटादि राक्षसोंको भी मारडाला।

ततो दशमुखो रणे गजरथाश्वपत्तीश्वरै-
रलङ्घ्यगणकोटिभिः परिवृतो युयोधायुधैः।
कपीश्वरचमूपतेः पतिमनन्तदिव्यायुधं
रघूद्वहमनिन्दितं सपदि सङ्गतो दुर्जयः॥ ४५॥

(४५) तदनन्तर रावणने करोड़ों हाथी, रथारूढ अश्वारूढ और पैदल सेनाके साथ संग्राम स्थलमें बानर सेनाके स्वामी सुग्रीवके प्रभु असीम दिव्यास्त्रके धारण करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीके निकट आकर अस्त्रोंसे युद्ध करना आरम्भ किया।

दशाननमरिं ततो विधिवरस्मयावर्द्धितम्

महाबलपराक्रमं गिरिमिवाचलं संयुगे।
जघान रघुनायको निशितसायकैरुद्धतम्
निशाचरचमूपतिं प्रबलकुम्भकर्णं ततः॥ ४६॥

(४६) अनन्तर रघुवीर श्रीरामचन्द्रजीनें ब्रह्माके वरसे वृद्धिप्राप्त महाबली, प्राक्रमी संग्रामभूमिमें पर्व्वतकी भांति अचल शत्रु राक्षस सेनापति रावण और कुम्भकर्णको तीक्ष्ण वाणोंसे वेध डाला।

तयोः खरतरैः शरैर्गगनमच्छमाच्छादितं
बभौ घनघटासमं मुखरमत्तडिद्वह्निभिः।
धनुर्गुणमहाशनिध्वनिभिरावृतं भूतलं
भयङ्करनिरन्तरं रघुपतेश्च रक्षःपतेः॥ ४७॥

(४७) तदनन्तर राम और रावणके परस्पर तीक्ष्ण वाणोंके चलनेसे बादलोंकी घटाके समान आकाश मण्डल ढक गया। वाणोंके परस्पर टकरानेसे शब्द सहित आगकी चिनगारियें निकलने लगीं। उससे विद्युतच्छटाकी शोभा दीखने लगी। बिजलीकी कड़कड़ाहटकी भांति धनुष टङ्कारके रवनेसे पृथ्वी व्याप्त होगई। उससे संग्राम भूमि अति भयंकर प्रतीत होने लगी।

ततो धरणिजारुषा विविधरामबाणौजसा
पपात भुवि राणस्त्रिदशनाथविद्रावणः।
ततोऽतिकुतुकी हरिर्ज्वलनरक्षितां जानकीं
समर्प्य रघुपुङ्गवे निजपुरीं ययौ हर्षितः॥ ४८॥

(४८) तदनन्तर इन्द्रको भी भयदायक रावण सीताजीके कोप और रामचन्द्रजीके अस्त्राग्निसे भस्म होकर पृथ्वीपर गिरगया। रावणके मारे जानेपर कपि श्रेष्ठ हनुमानजीने जानकीजीको शुद्धकरके रामचन्द्रजीको समर्पण किया। आगे हर्षित-चित्त अपने स्थानको गये।

पुरन्दरकथादरः सपदि तत्र रक्षःपतिम्।
विभीषणमभीषणं समकरोत्ततो राघवः॥ ४९॥

(४९) अनन्तर देवराज इन्द्रके कथनानुसार श्रीरामचन्द्रजीने विभीषणको राज्यपर अभिषेकित किया।

हरीश्वरगणावृतोऽवनिसुतायुतः सानुजो
रथे शिवसखेरिते सुविमले लसत्पुष्पके ।
मुनीश्वरगणार्च्चितो रघुपतिस्त्वयोध्यां ययौ
विविच्य मुनिलाञ्छनं गुहगृहेऽतिसख्यं स्मरन् ॥ ५० ॥

(५०) वानर राजाओंके साथ सीता और लक्ष्मण सहित अति सुन्दर शोभायमान पुष्पक विमानपर आरूढ़ होकर श्रीरामचन्द्रजी अयोध्यापुरी आये । मार्गमें आते हुए मध्य वनमें प्रवेश करनेके समय अपना मुनिवेश और गुहकी मित्रता स्मरण करने लगे । अनन्तर मुनिगणने आकर उनकी पूजाकी ।

ततो निजगणावृतो भरतमातुरं सान्त्वयन्
स्वमातृगणवाक्यतः पितृनिजासने भूपतिः ।
वसिष्ठमुनिपुङ्गवैः कृतनिजाभिषेको विभुः
समस्त जनपालकः सुरपतिर्यथा संबभौ ॥ ५१ ॥

(५१) तदनन्तर निजजनोंसे युक्त हो उनके दुःखसे कातर हुए । भरतजीको शान्ति प्रदान करके माताओंकी आज्ञानुसार पितृसिंहासनपर बैठकर राज्याभिषेकित हुए । वशिष्ठ आदि महर्षियोंने उनका अभिषेक किया । अनन्तर वह देवराज इन्द्रकी भांति समस्त लोकोंके स्वामी होकर सुशोभित हुए ।

नरा बहुधनाकरा द्विजवरास्तपस्तत्पराः
स्वधर्म्मकृतनिश्चयाः स्वजनसङ्गता निर्भयाः ।
घनाः सुबहुवर्षिणो वसुमती सदा हर्षिता
भवत्यतिबले नृपे रघुपतावभूत्सज्जगत् ॥ ५२ ॥

(५२) प्रजागण धन सम्पन्न और द्विजगण तपमें तत्पर हुए । सब लोग परस्पर प्रेम भाव स्थापनकर निर्भय चित्तसे स्वधर्म्मानुष्ठान करने लगे । समयपर मेघोंकी सुवृष्टिसे पृथ्वी हर्षित हुई । महाबलवान प्राक्रमी श्रीरामजीके राज्यकालमें समस्त जगत् सत्मार्गमें खडा होगया ।

गतायुतसमाः प्रियैर्निजणैः प्रजा रञ्जयन्
निजां रघुपतिः प्रियां निजमनोभवैर्मोहयन् ।

मुनीन्द्रगणसंयुतोऽप्ययजदादिदेवान्मखै-
र्धनैर्विपुलदक्षिणैरतुलवाजिमेधैस्त्रिभिः ॥ ५३ ॥

(५३) इस प्रकार दश हजार वर्षतक श्रीरामचन्द्रजीने अपने गुणग्रामसे प्रजा-रञ्जनपूर्वक अपना मनोर्थ परिपूर्ण करके अपनी प्यारी जानकीजीके मनको आनन्दित किया। महर्षिगणके सहित अनेक दक्षिणा दान और यज्ञ करके देवताओंको संतुष्ट किया और तीन अश्वमेघ यज्ञ भी निर्विघ्न परिपूर्ण किये।

ततः किमपि कारणं मनसि भावयन्भूपति-
र्जहौ जनकजां वने रघुवरस्तदा निर्घृणः।
ततो निजमतं स्मरन्समनयत्प्रचेतःसुतो
निजाश्रममुदारधीरघुपतेः प्रियां दुःखिताम् ॥ ५४ ॥

(५४) अनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने किसी एक कारणवश निर्दय अन्तःकरणसे जानकीजीको वनमें छोड़ दिया आगे उदारचित्त वाल्मीकिजी अपनी बनाई हुई रामायणको स्मरण करके दुःखित अन्तःकरण श्रीरामचन्द्रजीकी परमप्यारी जानकीजीको अपने आश्रममें लेगये।

ततः कुशलवौ सुतौ प्रसुषुवे धरित्रीसुता
महाबलपराक्रमौ रघुपतेर्यशोगायनौ।
स तामपि सुतान्वितां मुनिवरस्तु रामान्तिके
समर्पयदनिन्दितां सुरवरैः सदा वन्दिताम् ॥ ५५ ॥

(५५) कुश और लव नामक महाबली प्राक्रमी दो पुत्र धरणिसुता जानकीजीसे उत्पन्न हुए। इन युगल कुमारोंने रामचन्द्रजीके निकट आकर उनका यशोगान किया। मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिजीने इन दोनों पुत्रोंके सहित निन्दा रहित देवसुपूजित सीताजीको श्रीरामचन्द्रजीके निकट समर्पण किया।

ततो रघुपतिस्तु तां सुतयुतां रुदन्तीं पुरो
जगाद दहने पुनः प्रविश शोधनायात्मनः।
इतीरितमवेक्ष्य सा रघुपतेः पदाब्जे नता
विवेश जनीयुता मणिगणोज्वलं भूतलम् ॥ ५६ ॥

(५६) सन्मुख रुदन करती हुई पुत्रों सहित जानकीजीसे श्रीरामचन्द्रजीने कहा,--"तुम अपनी शुद्धिके निमित्त पुनः अग्निमें प्रवेश करो। सीताजी, रामचन्द्रजीका यह वाक्य सुनकर उनके चरण कमलोंको प्रणाम कर अपनी माता पृथ्वीके साथ मणिगणसे उज्ज्वल पातालमें प्रवेश कर गईं।

निरीक्ष्य रघुनायको जनकजाप्रयाणं स्मरन्
वसिष्ठगुरुयोगतोऽनुजयुतोऽगमत्स्वं पदम्।
पुरःस्थितजनैःस्वकैः पशुभिरीश्वरः संस्पृशन्
मुदा सरयुजीवनं रथवरैः परीतो विभुः॥ ५७॥

(५७) श्रीरामचन्द्रजी जानकीजीको इस प्रकारसे पातालमें गमन करते देखकर उन्हें स्मरण करके गुरु वशिष्ठ, अनुजगण, परिजन और पशुओंके सहित प्रसन्नचित्त सरयू नदीके जलको स्पर्शकर दिव्य विमानमें सवार हो बैकुण्ठ धामको चले गये।

ये शृण्वन्ति रघूद्वहस्य चरितं कर्णामृतं सादरात्
संसारार्णवशोषणञ्च पठतामामोददं मोक्षदम्।
रोगाणामिह शान्तये धनजनस्वर्गादिसम्पत्तये
वंशानामपि वृद्धये प्रभवति श्रीशः परेशः प्रभुः॥ ५८॥

(५८) इस कर्णामृत रामचरित्रको जो लोग आदर पूर्व्वक श्रवण करेंगे। श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे उनकी समस्त बाधा दूर होगी, रोगकी शान्ति होगी, वंश बढ़ेगा और धनसम्पत्ति, जनसम्पत्ति, स्वर्गादिसम्पति उन्हें प्राप्ति होगी। इसके पाठ करनेसे अन्तःकरणमें आनन्द उत्पन्न होगा, संसारसागर सूख जायगा और परम पुरुषार्थ मुक्तिपद प्राप्त होगा।

इति सानुवादे श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे सूर्यवंशानुवर्णने श्रीरामचन्द्रचरितं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

तृतीयांशः ।

चतुर्थ-अध्याय

रामात्कुशोऽभूदतिथिस्ततोऽभून्निषधान्नभः ।
तस्मादभूत्पुण्डरीकः क्षेमधन्वाऽभवत्ततः ॥ १ ॥

(१) श्रीरामचन्द्रजीके पुत्र कुश, कुशके पुत्र अतिथि, अतिथिके पुत्र निषध, निषधके पुत्र नभ, नभके पुत्र पुण्डरीक, और पुण्डरीकसे क्षमधन्वा उत्पन्न हुए ।

देवानीकस्ततो हीनः परिपात्रोऽथ हीनतः ।
बलाहकस्ततोऽर्कश्च रजनाभस्ततोऽभवत् ॥ २ ॥

(२) क्षेम धन्वाके पुत्र देवानीक, देवानीकके पुत्र हीन, हीनके पुत्र पारिपात्र, पारिपात्रके पुत्र बलाहक, बलाहकके पुत्र अर्क और अर्कसे रजनाभ उत्पन्न हुए ।

खगणाद्विधृतस्तस्माद्धिरण्यनाभसङ्गितः ।
ततः पुष्पाद्ध्रुवस्तस्मात्स्यन्दनोऽथाग्निवर्णकः ॥ ३ ॥

(३) रजनाभके पुत्र खगण, खगणके पुत्र विधृत, विधृतके पुत्र हिरण्यनाभ, हिरण्यनाभके पुत्र पुष्प, पुष्पके ध्रुव, ध्रुवके पुत्र स्यन्दन और स्यन्दनसे अग्निवर्णकी उत्पत्ति हुई ।

तस्माच्छीघ्रोऽभवत्पुत्रः पिता मेऽतुलविक्रमः ।
तस्मान्मरुं मां केऽपीह बुधञ्चापि सुमित्रकम् ॥ ४ ॥

(४) अग्निवर्णके पुत्र शीघ्र हुए । यही अतुल विक्रम वाले शीघ्र हमारे पिता हैं और मैं शीघ्रका पुत्र हूं । मेरा नाम मरु हैं । मुझे कोई कोई बुध और सुमित्र भी कहते हैं ।

कलापग्राममासाद्य विद्धि सत्तपसि स्थितम् ।
तवावतारं विज्ञाय व्यासात्सत्यवतीसुतात् ॥ ५ ॥
प्रतीक्ष्य कालं लक्षाब्दं कलेः प्राप्तस्तवान्तिकम् ।

जन्मकोट्यघसां राशेर्नाशनं धर्म्मशासनम्।
यशःकीर्त्तिकरं सर्वकामपूरं परात्मनः ॥ ६ ॥

(५-६) इतने दिनों तक मैं कलापग्राममें रहकर तप करता था। सत्यवतीके पुत्र व्यासके मुखसे आपके अवतारका वृत्तान्त सुनकर मैं कलिके लक्षवर्ष समयकी प्रतीक्षा करके आपके निकट आया हूं। आप परमात्मा हैं। आपके समीप आनेसे कोटि जन्मोंके पापपुंज क्षय हो जाते हैं और धर्म्म तथा यश कीर्त्तिकी वृद्धि होकर समस्त कामना पूर्ण होती है।

कल्किरुवाच। ज्ञातस्तवान्वयस्त्वञ्च सूर्य्यवंशसमुद्भवः।
द्वितीयः कोऽपरः श्रीमान्महापुरुषलक्षणः ॥ ७ ॥

(७) कल्किजी बोले,—तुह्मारी वंशावली सुनकर मुझे ज्ञात हुआ, कि तुम सूर्य्य वंशोद्भव राजा हो परन्तु तुह्मारे साथ यह दूसरे श्रीमान् और महापुरुषके लक्षणोंसे-युक्त कौन हैं?

इति कल्किवचः श्रुत्वा देवापिर्मधुराक्षराम्।
वाणीं विनयसम्पन्नः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ ८ ॥

(८) कल्किजीके ऐसे मधुर वचन सुनकर देवापिने विनययुक्त वाणीसे कहना आरम्भ किया।

देवापिरुवाच। प्रलयान्ते नाभिपद्मात्तवाभूच्चतुराननः।
तदीयतनयादत्रेश्चन्द्रस्तस्मात्ततो बुधः ॥ ९ ॥
तस्मात्पुरूरवा जज्ञे ययातिर्नाहुषस्ततः।
देवयान्यां ययातिस्तु यदुं तुर्वसुमेव च ॥ १० ॥

(९-१०) देवापि बोले,—प्रलयके अन्तमें आपके नाभिकमलसे श्रीब्रह्माजी उत्पन्न हुए थे। ब्रह्माजीके पुत्र अत्रि अत्रिके पुत्र चन्द्रमा, चन्द्रमाके पुत्र बुध, बुधके पुत्र पुरुरव, पुरुरवाके पुत्र नहुष और नहुषके पुत्र ययाति हुए। ययातिने देवयोनिसे यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्र उत्पन्न किये।

शर्म्मिष्ठायां तथा द्रुह्यु ञ्चानुं पूरुञ्च सत्पते।
जनयामास भूतादिर्भूतानीव सिसृक्षया ॥ ११ ॥

(११) हे साधु पालक! ययातिने शर्म्मिष्ठासे द्रह्यं अनु और पुरु यह तीन पुत्र उत्पन्न किये थे। सृष्टिके समय भूतादि अर्थात् तामस अहंकार जिस प्रकार पंच-भूतको उत्पन्न करता है, उसी प्रकार ययातिने इन पाचों पुत्रोंको उत्पन्न किया।

पूरोर्जन्मेजयस्तस्मात्प्रचिन्वानभवत्ततः।
प्रवीरस्तन्मनस्युर्वै तस्माच्चाभयदोऽभवत् ॥ १२ ॥
उरुक्षयाच्च त्र्यरुणिस्ततोऽभूत्पुष्करारुणिः।
बृहत्क्षेत्रादभूद्धस्ती यन्नाम्ना हस्तिनापुरम् ॥ १३ ॥

(१२-१३) पुरुका पुत्र जन्मेजय, जन्मेजयके पुत्र प्रचिन्वान, प्रचीन्वानके पुत्र प्रवीर, प्रवीरके पुत्र मनस्यु, मनस्युके पुत्र अभयदय, अभयदयके पुत्र उरुक्षय उरुक्षयके पुत्र त्र्यरुणि, त्र्यरूणिके पुत्र पुष्करारुणि, पुष्करारूणिके पुत्र बृहत्क्षेत्र और बृहत्क्षेत्रके पुत्र हस्ती हुए। इन हस्ती राजाके नामसेही हास्तिनापुर नगर स्थापित हुआ था।

अजमीढोऽहिमीढश्च पुरमीढस्तु तत्सुताः।
अजमीढादभूदृक्षस्तस्मात्संवरणात्कुरुः ॥ १४ ॥

(१४) हस्तीके तीनों पुत्रोंका नाम,—अजमीढ़ अहिमीढ़, और पुरुमीढ़ थे। अज-मीढ़के पुत्र ऋक्ष, ऋक्षके पुत्र संवरण और संवरणके पुत्र कुरु हुए।

कुरोः परिक्षित्सुधनुर्जन्हुर्निषध एव च।
सुहोत्रोऽभूत्सुधनुषश्च्यवनाच्च ततः कृती ॥ १५ ॥

(१५) कुरुके पुत्र परीक्षित, परीक्षितके पुत्र सुधनु, जन्हु और निषेध हुए। सुधनुके पुत्र सुहोत्र और सुहोत्रके पुत्र च्यवन हुए।

ततो बृहद्रथस्तस्मात्कुशाग्राद्दृषभोऽभवत्।
ततः सत्यजितः पुत्रः पुष्पवान्नहुषस्ततः ॥ १६ ॥

(१६) च्यवनके पुत्र बृहद्रथ, बृहद्रथके पुत्र कुशाग्र, कुशाग्रके पुत्र ऋषभ, ऋषभके पुत्र सत्यजीत, सत्यजीतके पुत्र पुष्पवान और पुष्पवानके पुत्र नहुष हुए।

बृहद्रथान्यभार्य्यायां जरासन्धःपरन्तपः।
सहदेवस्ततस्तस्मात्सोमापिर्यच्छ्रुतश्रवाः ॥ १७ ॥

(१७) वृहद्रथकी दूसरी भार्य्यासे शत्रुओंको सन्ताप देनेवाले जरासन्धकी उत्पत्ति हुई। जरासिन्धके पुत्र सहदेव, सहदेवके पुत्र सोमापि और सोमापिके पुत्र श्रुतश्रवा हुए।

सुरथाद्विदूरथस्तस्मात्सार्वभौमोऽभवत्ततः।
जयसेनाद्रथानीकोऽभूद्युतायुश्च कोपनः॥ १८॥

(१८) श्रुतश्रवाके पुत्र सुरथ, सुरथके पुत्र विदूरथ, विदूरथके पुत्र सार्वभौम, सार्वभौमके पुत्र जयसेन जयेसनके, पुत्र रथानीक और रथानीकसे क्रोधी स्वभाववाले युतायुका जन्म हुआ।

तस्माद्देवातिथिस्तस्मादृक्षस्तस्माद्दिलीपकः।
तस्मात्प्रतीपकस्तस्य देवापिरहमीश्वर!॥ १९॥

(१९) युतायुके पुत्र देवातिथि, देवातिथिके पुत्र ऋक्ष, ऋक्षके पुत्र दिलीप और दिलीपके पुत्र प्रतीपके हुए। हे ईश्वर! मैं प्रतीपकके पुत्र देवापि हूं।

राज्यं शान्तनवे दत्वा तपस्येकधिया चिरम्।
कलापग्राममासाद्य त्वां दिदृक्षुरिहागतः॥ २०॥

(२०) मैं शान्तनुको अपना राज्य देकर कलापग्राममें रहकर एकान्त चित्तसे तप करता था। तदनन्तर आपके दर्शनाभिलाषसे यहांपर आया हूं।

मरुणाऽनेन मुनिभिरेभिः प्राप्य पदाम्बुजम्।
तव कालकरालास्याद्यास्याम्यात्मवतां पदम्॥ २१॥

(२१) मैंने मरु और समस्त मुनियोंके साथ आपके चरण कमलको प्राप्त किया इसलिये अब हमको कालके करालगालमें नहीं गिरना पड़ेगा और हमको ब्रह्मज्ञानियोंका पद प्राप्त होगा।

तयोरेवं वचः श्रुत्वा कल्किः कमललोचनः।
प्रहस्य मरुदेवापी समाश्वास्य समब्रवीत्॥ २२॥

(२२) मरू और देवापिके ऐसे बचन सुनकर कमलदललोचन कल्किजी प्रसन्न हो उन्हें धैर्य्य देकर कहने लगे।

कल्किरुवाच। युवां परमधर्म्मज्ञौ राजानौ विदितावुभौ।
मदादेशकरौ भूत्वा निजराज्यं भरिष्यथः॥ २३॥

(२३) कल्किजीने कहा,—"मैं जानता हूं कि तुम दोनों परम धर्म्मज्ञ राजा हो। इस समय तुमलोग हमारी आज्ञाके अनुसार राजा होकर अपने अपने राज्यका पालन करो।

मरो त्वामभिषेक्ष्यामि निजयोध्यापुरेऽधुना।
हत्वा म्लेच्छानधर्म्मिष्ठान्प्रजाभूतविहिंसकान् ॥ २४ ॥

(२४) हे मरो! मैं इस समयमें प्रजापीड़क, प्राणियोंकी हिंसा करनेवाले और अधर्म्मी म्लेक्षोंका नाशकरके तुम्हें तुम्हारी निज राजधानी अयोध्यापुरीमें अभिषेकित करूंगा।

देवापे तव राज्ये त्वां हस्तिनापुरपत्तने।
अभिषेक्ष्यामि राजर्षे हत्वा पुक्कसकान्रणे ॥ २५ ॥

(२५) हे राजर्षि देवापि! मैं संग्राम भूमिमें पुक्कसोंका संहार करके तुम्हें तुम्हारी राजधानी हस्तिनापुरमें राज्याभिषेकित करूंगा।

मथुरायामहं स्थित्वा हरिष्यामि तु वो भयम्।
शय्याकर्णानुष्ट्रमुखानेकजङ्घान्विनोदरान् ॥ २६ ॥
हत्वा कृतं युगं कृत्वा पालयिष्याम्यहं प्रजाः।
तपोवेशं व्रतं त्यक्त्वा समारुह्य रथोत्तमम् ॥ २७ ॥

(२६-२७) मैं मथुरा नगरीमें रहकर तुम्हारा भय दूर करूंगा। सय्याकरण, उष्ट्रमुख और एकजंघगणका संहार करके सत्ययुगको स्थापितकर प्रजाका पालन करूंगा। तुम सब भी तपस्वीवेष और व्रतको त्यागकर महारथपर सवार होओ।

युवां शस्त्रास्त्रकुशलौ सेनागणपरिच्छदौ।
भूत्वा महारथौ लोके मया सह चरिष्यथः ॥ २८ ॥

(२८) तुम लोग शस्त्र अस्त्र चलानेमें कुशल और महारथी हो इसलिये तुम सब लोग हमारे साथ विचरण करना।

विशाखयूपभूपालस्तनयां भिनयान्विताम्।
विवाहे रुचिरापाङ्गीं सुन्दरीं त्वां प्रदास्यति ॥ २९ ॥

(२९) हे मरो ! विशाखयूप नामक राजा, परम सुन्दरी सुशीला और रुचिर अङ्गवाली अपनी कन्याके साथ तुह्मारा विवाह कर देगा ।

साधो भूपाल लोकानां स्वस्तये कुरु मे वचः ।
रुचिराश्वसुतां शान्तां देवापे त्वं समुद्वह ॥ ३० ॥

(३०) हे मरो ! तुम राजा होकर संसार मंगलके निमित्त हमारे वचनका प्रतिपालन करो । हे देवापि ! तुम भी शान्ता नामक रुचिराश्वकी पुत्रीसे विवाह करो ।

इत्याश्वासकथाः कल्केः श्रुत्वा तौ मुनिभिः सह ।
विस्मयाविष्टहृदयौ मेनाते हरिमीश्वरम् ॥ ३१ ॥

(३१) कल्किजीके इस प्रकार आशायुक्त वचन सुनकर देवापि और मुनियोंने विस्मित हृदय हो संदेह त्यागकर निश्चय किया, कि यही हरि और ईश्वर हैं ।

इति ब्रुवत्यभयदे आकाशात्सूर्य्यसन्निभौ ।
रथौ नानमणिव्रातघटितौ कामगौ पुरः ।
समायातौ ज्वलद्दिव्यशस्त्रास्त्रैः परिवारितौ ॥ ३२ ॥

(३२) कल्किजी इस प्रकारसे अभय वचन कह रहे हैं, इसी समयमें आकाशमार्गसे इच्छानुगामी दो रथ उतरे; यह दोनों रथ अनेक प्रकारके रत्नों द्वारा निर्म्मित थे । उनका तेज सूर्य्यके समान था । उज्वल दिव्य अस्त्र शस्त्र इनमें भरे थे ।

ददृशुस्ते सदो मध्ये विश्वकर्म्मविनिर्मितौ ।
भूपा मुनिगणाः सभ्याः सहर्षाः किमितीरिताः ॥ ३३ ॥

(३३) सभामें बैठे हुए मुनिगण और भूपाल आदि सबही विश्वकर्म्माके बनाए हुए रथको सभामें उपस्थित देखकर हर्षित हुए । 'यह क्या है!' ऐसा कहकर बिस्मय प्रगट करने लगे ।

कल्किरुवाच । युवामादित्यसोमेन्द्रयमवैश्रवणाङ्गजौ ।
राजानौ लोकरक्षार्थमाविर्भूतौ विदन्त्यमी ॥ ३४ ॥

(३४) कल्किजी बोले,—सभी जानते हैं, कि तुम दोनों राजा होकर संसारकी रक्षा और पृथ्वीका पालन करनेके निमित्त सूर्य्य, चन्द्र, यम और कुबेरके अंशसे अवतारित हुए हो ।

कालेनाच्छादिताकारौ मम सङ्गादिहोदितौ ।
युशां रथावारुहतां शक्रदत्तं ममाज्ञया ॥ ३५ ॥

(३५) इतने दिनों तक तुम सब अपने अपने आकारको छिपाये हुए रहते थ, अब मुझसे मिलनेके लिये यहांपर आये हो इसलिये तुम मेरी आज्ञाके अनुसार इन्द्रजीके दिये हुए इन रथोंपर चढ़ो ।

एवं वदति विश्वेशे पद्मनाथे सनातने ।
देवा ववर्षुः कुसुमैस्तुष्टुवुर्मुनयोऽग्रतः ॥ ३६ ॥

(३६) पद्मानाथ, संसारके स्वामी कल्किजी इस प्रकार वचन कह रहे थे,-इसी समय देवता गण पुष्पवर्षा करने लगे और मुनिगण सन्मुख उपस्थित होकर स्तोत्र कहने लगे ।

गङ्गावारिपरिक्लिन्नशिरोभूतिपरागवान् ।
शनैः पर्व्वतजासङ्गशिववत्पवनो ववौ ॥ ३७ ॥

(३७) पवन मन्द मन्द चलने लगा। शिवजीके जटाजालमें गंगाजल सम्मिलनसे विभूति गीली होगई। सुमन्द पवनने महादेवजीके उस विभूति परागको उड़ाकर भगवती पार्वतीजीके अंगको स्पर्श करके मंगलमयगुण प्रकट किया ।

तत्रायातः प्रमुदिततनुस्तप्तचामीकराभो
धर्म्मावासः सुरुचिरजटाचीरभृद्दण्डहस्तः ।
लोकातीतो निजतनुमरुन्नाशिताऽधर्म्मसंघ-
स्तेजोराशिःसनकसदृशो मस्करी पुष्कराक्षः ॥ ३८ ॥

(३८) इसी समयमें सनक मुनिके समान परम तेजस्वी एक दण्डधारी ब्रह्म-चारी यहांपर आये। उनके शरीरसे संतप्त सुवर्णकी भांति जगमगाती हुई प्रभा प्रस्फुटित हो रही थी। धर्म्मभवन रूप वह जटाधारी ब्रह्मचारी मनोहर वस्त्र पहने हुए थे। उन कमलदल लोचन अलौकिक महापुरुषकी देहसे सुखका अक्षय भाव दिखाई दे रहा था। तेजपुंजमय देहके प्रबल स्पर्शसे लोकके पापपुंज दूर होरहे थे।

इति श्रीसानुवादे कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे चन्द्रसूर्यवंशानु-कीर्त्तनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४ ॥

तृतीयांशः ।

पञ्चम-अध्याय।

शुक-उवाच ।

अथ कल्किः समालोक्य सदसाम्पतिभिः सह ।
समुत्थाय ववन्दे तं पाद्यार्घ्याचमनादिभिः ॥ १ ॥

(१) शुकने कहा:—उस भिक्षुकको देखतेही कल्किजी सभासदोंके सहित उठ खड़े हुए और पाद्य, अर्घ्य तथा आचमनीय आदिसे उनकी पूजा की ।

वृद्धं संवेश्य तं भिक्षुं सर्वाश्रमनमस्कृतम् ।
पप्रच्छ को भवानत्र मम भाग्यादिहागतः ॥ २ ॥

(२) समस्त आश्रमके पूज्य उस भिक्षुकको बैठाकर कल्किजीने पूछा,-"आप हमारे सौभाग्यसे ही यहां आये हैं । आप कौन हैं ?"

प्रायशो मानवा लोके लोकानां पारणेच्छया ।
चरन्ति सर्वसुहृदः पूर्णा विगतकल्मषाः ॥ ३ ॥

(३) जो मनुष्य पाप रहित हैं, जो पूर्ण और सबके सुहृद हैं, वह बहुधा लोकोद्धारके निमित्त पृथ्वीपर भ्रमण करते हैं ।

मस्कर्युवाच—अहं कृतयुगं श्रीश तवादेशकरं परम् ।
तवाविर्भावविभवमीक्षणार्थमिहागतम् ॥ ४ ॥

(४) मस्करीने कहा,'—हे श्रीनाथ ! मैं आपकी आज्ञाका पालन करनेवाला सत्ययुग हूं । आपका यह अवतार और प्रभाव प्रत्यक्ष देखनेकी अभिलाषासे यहां आया हूं ।

निरुपाधिर्भवान्कालः सोपाधित्वमुपागतः ।
क्षणदण्डलवाद्यङ्गैर्मायया रचितं त्वया ॥ ५ ॥

(५) आप उपाधि रहित काल स्वरूप हैं। आप क्षण, दण्ड और लवादि अंगोंसे इस समय सोपाधि हुए हैं। आपकीही मायासे समस्त जगत् उत्पन्न हुआ है।

पक्षाहोरात्रमासर्त्तुसंवत्सरयुगादयः।
तवेक्षया चरन्त्येते मनवश्च चतुर्दश ॥ ६ ॥

(६) आपके समीप रहनेसे पक्ष, दिन रात्रि, मास, ऋतु संवत्सर, युगादि और चौदह मनु यह समस्तही नियमित रूपसे घूमते हैं।

स्वायम्भुवस्तु प्रथमस्ततः स्वारोचिषो मनुः।
तृतीय उत्तमस्तास्चतुर्थस्तामसः स्मृतः ॥ ७ ॥
पञ्चमो रैवतः षष्ठश्चाक्षुषः परिकीर्त्तितः।
वैवस्वतः सप्तमो वै ततः सावर्णिरष्टमः ॥ ८ ॥
नवमो दक्षसावर्णिर्ब्रह्मसावर्णिकस्ततः।
दशमो धर्म्मसावर्णिरेकादशः स उच्यते ॥ ९ ॥
रुद्रसावर्णिकस्तत्र मनुर्वै द्वादशः स्मृतः।
त्रयोदशमनुर्वेदसावर्णिर्लोकविश्रुतः ॥ १० ॥
चतुर्दशेन्द्रसावर्णिरेते तव विभूतयः।
यान्त्यायान्ति प्रकाशन्ते नामरूपादिभेदतः ॥ ११ ॥

(७-८-९-१०-११) प्रथम स्वायम्भुव मनु, दूसरे स्वारोचिष मनु, तीसरे उत्तम मनु, चौथे तामस मनु, पांचवें रैवत मनु, छठें चाक्षुष मनु, सातवें वैवस्वत मनु, आठवें सावर्णिक मनु, नवें दक्षसावर्णि मनु, दशवें ब्रह्मसावर्णि मनु, ग्यारहवें धर्म्म सावर्णि मनु, बारहवें रुद्र सावर्णि मनु, तेरहवें सर्वत्र विख्यात वेद सावर्णि मनु, और चौदहवें इन्द्र सावर्णि आदि समस्त मनुगण आपकी विभूति स्वरूप हैं। यह सभी नाम रूपादि भेदसे गमन करते और प्रकाशित होते हैं।

द्वादशाब्दसहस्रेण देवानाञ्च चतुर्युगम्।
चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं सहस्रगणितं मतम् ॥ १२ ॥

(१२) देवताओंके द्वादश सहस्र वर्षका एक चौकड़ी युग होता है। ऐसेही चार हजार, तीन हजार, दो हजार, और एक हजार, वर्षमें क्रमसे सत्य, त्रेता, द्वापर और कलियुग होता है।

तावच्छतानि चत्वारि त्रीणि द्वे चैकमेव हि।
सन्ध्याक्रमेण तेषान्तु सन्ध्यांशोऽपि तथाविधः॥ १३॥

(१३) इन चारों युगोंकी पूर्व्व सन्ध्या क्रमानुसार चारशत, तिनशत, दोशत, और एकशत वर्षकी होती है। इस चौकड़ी युगकी शेष सन्ध्याका परिमाण भी वैसाही है।

एकसप्ततिकं तत्र युगं भुङ्क्ते मनुर्भुवि।
मनूनामपि सर्वेषामेवं परिणतिर्भवेत्॥
दिवा प्रजापतेस्तत्तु निशा सा परिकीर्त्तिता॥ १४॥

(१४) प्रत्येक मनु इकहत्तर चौकड़ी युगतक पृथ्वीको भोगते हैं। ऐसेही सब मनु परिवर्तित होते हैं। जितने काल तक चौदह मनुका अधिकार रहता है उतने कालको ब्रह्माका एक दिन कहते हैं। इसी समयके बराबर ब्रह्माकी एक रात्रि होती है।

अहोरात्रञ्च पक्षस्ते माससंवत्सरर्त्तवः।
सदुपाधिकृतः कालो ब्रह्मणो जन्ममृत्युकृत्॥ १५॥

(१५) इसी प्रकार काल, दिन-रात्रि पक्ष-मास वत्सर और ऋतु आदि उपाधि धारणकर ब्रह्माजीकी जन्ममृत्यु आदिका विधान करते हैं।

शतसंवत्सरे ब्रह्मा लयं प्राप्नोति हि त्वयि।
लयान्ते त्वन्नाभिमध्यादुत्थितः सृजति प्रभुः॥ १६॥

(१६) जब ब्रह्माकी आयु शत वर्षकी हो जाती है, तब वह आपमें लयको प्राप्त हो जाते हैं। पुनः प्रलय काल व्यतीत होनेपर हे प्रभु! ब्रह्माजी आपके नाभिकमलसे उत्पन्न होते हैं।

तत्र कृतयुगान्तेऽहं कालं सद्धर्म्मपालकम्।
कृतकृत्याः प्रजा यत्र तन्नाम्ना मां कृतं विदुः॥ १७॥

(१७) इन कालोंके अंशमें मैं कृतयुग हूं। मेरे अधिकारमें उत्तम धर्म्म प्रतिपालित होता है। हमारे द्वारा प्रजा धर्म्मानुष्ठान करके कृतकृत्य होती है। इसी कारण मैं कृतयुग नामसे विख्यात हूं।

इति तद्वच आश्रुत्य कल्किर्निजजनावृतः।

प्रहर्षमतुलं लब्धा श्रुत्वा तद्वचनामृतम् ॥ १८ ॥

(१८) सत्ययुगके यह वचन सुनकर कल्किजी अपने अनुचरों सहित परम आनन्दित हुए।

अवहित्थामुपालक्ष्य युगस्याह जनान्हितान्।
योद्धुकामः कलेः पुर्य्यां हृष्टो विशसने प्रभुः ॥ १९ ॥

(१९) कलिकुलके संहार करनेमें समर्थ कल्किजी सत्ययुगके आगमनको देखकर कलिके अधिकारकी विशासन नामकपुरीमें संग्राम करनेकी इच्छा करके अपने पीछे आने वाले मनुष्योंसे बोले।

गजरथतुरगान्नरांश्च योधान्कनकविचित्रविभूषणाचिताङ्गान्। धृतविविधवरास्त्रशस्त्रपूगान्युधिनिपुणान्गणयध्वमानयध्वम् ॥ २० ॥

(२०) जो वीरगण हाथीपर चढ़कर युद्ध करते हैं, जो रथारूढ़ होकर युद्ध करनेमें समर्थ हैं, जो पदातिक सेना हैं, जिनका शरीर विचित्र सुवर्णाभूषणसे विभूषित हैं, जो अनेक प्रकारके शस्त्रास्त्र धारण करनेमें समर्थ हैं और जो संग्राम करनेमें निपुण हैं, ऐसे वीरोंको लाकर उनकी गिनती करो।

इति श्रीसानुवादे कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे कृतयुगागमनंनाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

तृतीयांशः।

षष्ठे-अध्याय।

सूत-उवाच।

इति तौ मरुदेवापी श्रुत्वा कल्केर्वचः पुरः।
कृतोद्वाहौ रथारूढौ समायातौ महाभुजौ ॥ १ ॥

(१) सूतजी बोले,—मरु और देवापिने विवाह कर लिया था। इस समय वह दोनों महाबाहु पुरुष दिव्य रथपर चढ़ेहुए वहां आये।

नानायुधधरैः सैन्यैरावृतौ शूरमानिनौ ।
बद्धगोधाङ्गुलित्राणौ दंशितौ बद्धहस्तकौ ॥ २ ॥

(२) वे दोनों स्वयं अपनी महावीरताका अभिमान करनेवाले हाथ और समस्त शरीरकी वर्मसे ढके हुए उंगलियोंमें गुश्ताना लगाये अगणित सेना साथ लिये और अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र धारण किये हुए थे ।

कार्ष्णायसशिरस्त्राणौ धनुर्द्धरधुरन्धरौ ।
अक्षौहिणीभिः षड्भिस्तु कम्पयन्तौ भुवं भरैः ॥ ३ ॥

(३) उनके मस्तकपर कालेरंगका शिरस्त्राण सुशोभित है और सबसे उत्तम धनुषबाण धारण करके छः अक्षौहिणी सेनांसे पृथ्वीको कम्पायमान कर रहे हैं ।

विशाखयूपभूपस्तु भजलक्षैः समावृतः ।
अश्वैः सहस्त्रनियुतैः रथैः सप्तसहस्त्रकैः ॥ ४ ॥

(४) विशाखयूप नामक राजाके साथ एकलाख हाथी, एक करोड़ अश्व और सात सहस्र रथ थे ।

पदातिभिर्द्विलक्षैश्च सन्नद्धै धृतकार्मुकैः ।
वातोद्धुतोत्तरोष्णीषैः सर्वतः परिवारितः ॥ ५ ॥

(५) उनके साथ दोलाख सुसज्जित पदातिक सेना धनुषबाण धारणकर आई थी । पवन हिल्लोलसे उनकी पगड़ियां और दुपट्टे कांपते थे ।

रुधिराश्वसहस्त्राणां पञ्चाशद्भिर्महारथैः ।
गजैर्दशशतैर्मत्तैर्नवलक्षैर्वृतो बभौ ॥ ६ ॥

(६) तदतिरिक्त उनके साथ पचास सहस्र लालरंगके घोड़े, दश सहस्र मद-वाले हाथी, बहुतसे महारथी और नौलाख पैदल सेना थी ।

अक्षौहिणीभिर्दशभिः कल्किः परपुरञ्जयः ।
समावृतस्तथा देवैरेवमिन्द्रो दिवि स्वराट् ॥ ७ ॥

(७) शत्रुपुरको जीतनेवाले कल्किजी इस प्रकारसे देवलोकमें स्थित देवराज इन्द्रकी भांति दश अक्षौहिणी सेनासे युक्त होकर सुशोभित हुए ।

भ्रातृपुत्रसुहृद्भिश्च मुदितः सैनिकैर्वृतः।
ययौ दिग्विजयाकाङ्क्षी जगतामीश्वरः प्रभुः ॥ ८ ॥

(८) इस प्रकार भ्राता, पुत्र, सुहृद और सेनाके समूहसे युक्त होकर जगत्के ईश्वर कल्किभगवानने दिग्विजय करनेकी अभिलाषासे यात्रा की।

काले तस्मिन्द्विजो भूत्वा धर्म्मः परिजनैः सह।
समाजागाम कलिना बलिनापि निराकृतः ॥ ९ ॥

(९) बलवान कल्किजीके द्वारा निग्रहीत धर्म्म इसी समय ब्राह्मणवेषमें उस स्थानपर आया।

ऋतं प्रसादमभयं सुखं मुदमुथ स्वयम्।
योगमर्थं ततोऽदर्पं स्मृतिं क्षेमं प्रतिश्रयम् ॥ १० ॥

(१०) उसके सेवकोंमें ऋतु, प्रसाद, अभय, सुख प्रीति, योग, अर्थ, अहंकार स्मृति, क्षेम और प्रतिश्रय थे।

नरनारायणौ चोभौ हरेरंशौ तपोव्रतौ।
धर्म्मस्त्वेतान्समादाय पुत्रान्स्त्रीश्चागतस्त्वरन् ॥ ११ ॥

(११) नारायणजीके अंश नर नारायण थे, जो कि तपमें निष्ठ हैं, धर्म्म इन सबको ग्रहण करके स्त्री पुत्र सहित शीघ्रतासे उस स्थानमें आया।

श्रद्धा मैत्री दया शान्तिस्तुष्टिः पुष्टिः क्रियोन्नतिः।
बुद्धिर्मेधा तितिक्षा च ह्रीर्मूर्तिर्धर्म्मपालकाः ॥ १२ ॥
एतास्तेन सहायता निजबन्धुगणैः सह।
कल्किमालोकितुं तत्र निजकार्य्यं निवेदितुम् ॥ १३ ॥

(१२-१३) श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्ति तुष्टि. पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, तितिक्षा, ह्री आदि धर्म्मपालक मूर्त्तिमान अपने बन्धुओंसे युक्त हो कल्किजीके दर्शनार्थ एवं अपने कार्य्यको निवेदन करनेके निमित्त उस स्थानमें आये।

कल्किर्द्विजं समासाद्य पूजयित्वा यथाविधि।
प्रोवाच विनयापन्नः कस्त्वं कस्मादिहागतः ॥ १४ ॥

(१४) कल्किजीने ब्राह्मणका दर्शन करके विनय सहित विधि विधानसे उनकी पूजाकी और कहा:—आप कौन हैं ? कहांसे आते हैं ?

स्त्रीभिः पुत्रैश्च सहितः क्षीणपुण्य इव ग्रहः ।
कस्य वा विषयाद्राज्ञस्तत्तत्त्वं वद तावतः ॥ १५ ॥

(१५) आप पुण्यक्षीण पुरुषके समान स्त्री पुत्रों सहित किस राजाके अधिकारसे आये हैं ? सब यथार्थ समाचार मुझसे वर्णन कीजिये ।

पुत्राः स्त्रियश्च ते दीना हीनस्वबलपौरुषाः ।
वैष्णवाः साधवो यद्वत्पाखण्डैश्च तिरस्कृताः ॥ १६ ॥

(१३) पाखण्डसे पराजित विष्णु परायण साधुओंके समान आप स्त्री पुत्र आदि जन बल पौरुष हीन और अत्यन्त कातर क्यों हुए हैं ?

कल्केरिति वचः श्रुत्वा धर्म्मः शर्म्म निजं स्मरन् ।
प्रोवाच कमलानाथमनाथस्त्वतिकातरः ॥ १७ ॥

(१७) अनाथ और अति कातर धर्म्म कमलापति कल्किजीका यह वचन सुनकर अपने मंगलके लिये बोला ।

पुत्रैः स्त्रीभिर्निजजनैः कृताञ्जलिपुटैर्हरिम् ।
स्तुत्वा नत्वा पूजयित्वा मुदितं तं दयापरम् ॥ १८ ॥

(१८) अनुचरोंके साथ हाथ जोड़ आनन्दमय दयामय नारायणजीकी पूजा एवं नमस्कार कर स्तुति करने लगा ।

धर्म्म उवाच—शृणु कल्के ममाख्यानं धर्म्मोऽहं ब्रह्मरूपिणः ।
तव वक्षःस्थलाज्जातः कामदः सर्वदेहिनाम् ॥ १९ ॥

(१९) तदन्तर धर्म्मने कहा,—'मैं अपना वृत्तान्त कहता हूं। श्रवण कीजिये ! पितामहरूपी आपके वक्षःस्थलसे मैं उत्पन्न हुआ हूं। मेरा नाम धर्म्म है। मैं समस्त प्राणियोंके अभिप्रायको सिद्ध करता हूं।

देवानामग्रणीर्हव्यकव्यानां कामधुग्विभुः ।
तवाज्ञया चराम्येव साधुकीर्त्तिकृदन्वहम् ॥ २० ॥

(२०) देवतओंमें प्रथम गिननेके योग्य मैं यज्ञके मध्य हव्य कव्यके अंशका भागी हूं। मैं यज्ञके फलको दान करके साधुओंकी कामना पूर्ण किया करता हूं। आपकी आज्ञानुसार मैं सदा साधुओंका कार्य्य करता हुआ विचरण करता हूं।

सोऽहं कालेन बलिना कलिनापि निराकृतः।
शककाम्बोजशबरैः सर्वैरावासवासिना ॥ २१ ॥

(२१) इस समय शक, कम्बोज, शबर आदि म्लेक्ष जातियां कलिके अधिकारमें वास करती हैं। उस बलवान कलिके द्वारा मैं कालक्रमसे पराजित हुआ हूं।

अधुना तेऽखिलाधार! पादमूलमुपागताः।
यथा संसारकालाग्निसंतप्ताः साधवोऽर्द्दिताः ॥ २२ ॥

(२२) हे जगदाधार! इस समय साधुगण संसाररूप कालकी अग्निसे संतापित होकर पीड़ित हुए हैं। इसी कारण मैं आपके चरणोंके समीप आया हूं।

इति वाग्भिरपूर्वाभिर्धर्म्मेण परितोषितः।
कल्किः कल्कहरः श्रीमानाह संहर्षयञ्छनैः ॥ २३ ॥

(२३) धर्म्मके यह अपूर्व्व बचन सुनकर पापनाशक श्रीमान् कल्किजी सबको प्रसन्न करते हुए नम्रतासे बोले।

धर्म्म! कृतायुगं पश्य मरुं चण्डांशुवंशजम्।
मां जानासि यथा जातं धातृप्रार्थितविग्रहम् ॥ २४ ॥

(२४) हे धर्म्म! वह देखो,—सत्ययुग आ पहुंचा है। इस सूर्य्यवंशी राजाका नाम मरु है। मैंने ब्रह्माजीकी प्रार्थनाके अनुसार जिस प्रकार शरीर धारण किया है, सो तुम जानतेही हो।

कीटकैर्बौद्धदलनमिति मत्वा सुखी भव।
अवैष्णवानामन्येषां तवोपद्रवकारिणाम्।
जिघांसुर्यामि सेजाभिश्चर मां त्वं निर्विभयः ॥ २५ ॥

(२५) कटीक देशमें बौद्धोंका दमन किया है। यह सुनकर तुम सुखी होगे कि,—जो वैष्णव नहीं हैं, जो लोग तुम्हारे प्रति उपद्रव कियां करते हैं, उनका संहार करनेके निमित्त मैं सेना सहित यात्रा करता हूं। इस समय तुम निर्भयचित्त होकर पृथ्वीमें विचरण करो।

का भीतिस्ते क्व मोहोऽस्ति यज्ञदानतपोव्रतैः ।
सहितैः संचर विभो ! मयि सत्ये व्युपस्थिते ॥ २६ ॥

(२६) जब मैं उपस्थित हूं और सत्ययुग आगया है, तब तुम्हें क्या भय है ? तुम किस कारण मोहसे व्याकुल हो रहे हो। इस समय तुम यज्ञ, दान और व्रतके साथ विचरण करो।

अहं यामि त्वयागच्छ स्वपुत्रैर्बान्धवैः सह ।
दिशां जयार्थं त्वं शत्रुनिग्रहार्थं जगत्प्रिय ॥ २७ ॥

(२७) हे धर्म्म ! तुम जगत्के प्यारे हो। तुम पुत्र और बन्धुओंके साथ दिग्विजय और शत्रुदमनके निमित्त यात्रा करो। मैं भी तुह्मारे साथ चलता हूं।

इति कल्केर्वचः श्रुत्वा धर्मः परमहर्षितः ।
गन्तुं कृतमतिस्तेन आधिपत्यममुं स्मरन् ॥ २८ ॥

(२८) धर्म्मने कल्किजीके यह वचन सुनकर अपार आनन्दको प्राप्त हो अपने स्वामिपनको स्मरण किया और कल्किजीके साथ गमन करनेकी अभिलाषा की।

सिद्धाश्रमे निजजनानवस्थाप्य स्त्रियश्च ताः ॥ २९ ॥

(२९) यात्राके समय धर्म्म अपनी स्त्री और पुत्रोंको सिद्धाश्रममें रखगया।

सन्नद्धः साधुसत्कारैर्वेदब्रह्ममहारथः ।
नानाशास्त्रान्वेषणेषु संकल्पवरकार्मुकः ॥ ३० ॥

(३०) साधुसत्कार, युद्धार्थी धर्म्मका संग्राम वेष हुआ। वेद और ब्रह्म महारथ स्वरूपसे प्रकट हुए। अनेकानेक शास्त्रोंके अन्वेषणसंकल्प धर्म्मका धनुष हुआ।

सप्तस्वराश्वो भूदेवसारथिर्वह्निराश्रयः ।
क्रियाभेदबलोपेतः प्रययौ धर्म्मनायकः ॥ ३१ ॥

(३१) वेदके सात स्वर उसके रथके अश्व, ब्राह्मण सारथि, और अग्नि आश्रय एवं उठने बैठनेका आसन हुआ। इस प्रकार धर्म्म रूप नायकने अनेक प्रकारके क्रियानुष्ठान रूप बड़े बलसे युक्त होकर यात्रा की।

यज्ञदानतपःपात्रैर्यमैश्च नियमैर्वृतः ।

खशकाम्बोजकान्सर्वाञ्छबरान्बर्बरानपि ॥ ३२ ॥
जेतुं कल्किर्ययौ यत्र कलेरावासमीप्सितम् ।
भूतवासबलोपेतं सारमेयवराकुलम् ॥ ३३ ॥

(३२-३३) कल्किजी इस प्रकार यज्ञ, दान, तप, यम, नियम आदि पात्रोंसे युक्त होकर खश, काम्बोज, शबर बर्बरादि म्लेच्छोंको पराजित करनेके लिये कलिके मनमाने स्थानमें गये। कलिका वास स्थान भूतोंका आवास रूप होनेसे दृढ़ होगया था और इस स्थानके चारों ओर कुत्ते बराबर भूंक रहे थे।

गोमांसपूतिगन्धाढ्यं काकोलूकशिवावृतम् ।
स्त्रीणां दुर्द्यूतकलहविवादव्यसनाश्रयम् ॥ ३४ ॥

(३४) यह स्थान गोमांसकी दुर्गन्धिसे पूर्ण, काग उल्लूसे घिरा हुआ एवं नारियोंके क्लेश विवाद आदि अनेक प्रकारके व्यसन और जुआ खेलनेका आश्रय था।

घोरं जगद्भयकरं कामिनीस्वामिनं गृहम् ।
कलिः श्रुत्वोद्यमं कल्केः पुत्रपौत्रवृतः क्रुधा ॥ ३५ ॥
पुराद्विशसनात्प्रायात्पेचकाक्षरथोपरि ।
धर्मः कलिं समालोक्य ऋषिभिः परिवारितः ॥ ३६ ॥
युयुधे तेन सहसा कल्किवाक्यप्रचोदितः ।
ऋतेन दम्भः संग्रामे प्रसादो लोभमाह्वयत् ॥ ३७ ॥

(३५-३६-३७) यह पुरी घोर रूपिणी और जगतको भयदाई थी। इस पुरीमें सभी कोई स्त्रियोंकी आज्ञानुसार चलते थे। वह कल्किजीके युद्धयात्राकी तैयारी सुनकर अति क्रोधित हो अपने बेटे पोतोंके सहित उल्लूकी ध्वजासे युक्त रथपर सवार हो विशसन नामक नगरसे बाहर निकला। कलिको देखकर धर्म्मने ऋषियोंके साथ कल्किजीकी आज्ञानुसार उसके साथ युद्ध करना आरम्भ किया। ऋतके साथ दंभका युद्ध होने लगा। प्रसादने लोभको युद्ध करनेके लिये ललकारा।

समयादभयं क्रोधो भयं सुखमुपाययौ ।
निरयो मुदमासाद्य युयुधे विविधायुधैः ॥ ३८ ॥

(३८) अभयके साथ क्रोधका और सुखके साथ भयका संग्राम होने लगा। निरय प्रीतिके निकट आकर अनेक शस्त्रास्त्रोंसे युद्ध करने लगा।

आधिर्योगेन च व्याधिः क्षेमेण च बलीयसा ।
प्रश्रयेण तथा ग्लानिर्जरा स्मृतिमुपाह्वयत् ॥ ३९ ॥

(३९) अधिने योगके साथ एवं व्याधि बलवान क्षेमके साथ संग्राम करने लगी । ग्लानिने, प्रश्रयसे और जरा स्मृतिसे युद्ध करना आरम्भ किया ।

एवं वृत्तो महाघोरो युद्धः परमदारुणः ।
तं द्रष्टुमागता देवा ब्रह्माद्याः खे विभूतिभिः ॥ ४० ॥

(४०) इस प्रकारसे परम दारुण और महाघोर युद्ध आरम्भ हुआ । ब्रह्मादि देवता युद्धको देखनेके निमित्त अपनी विभूति सह आकाशमार्गमें आये ।

मरुः खशैश्च काम्बोजैर्ययुधे भीमविक्रमैः ।
देवापिः समरे चौनैर्बर्बरैस्तद्गणैरपि ॥ ४१ ॥

(४१) मरु भयंकर प्राक्रम वाले खस एवं काम्बोजगणसे संग्राम करने लगे । देवापिने चीन, बर्बर तथा इनके सेवकोंसे संग्राम किया ।

विशाखयूपभूपालः पुलिन्दैः श्वपचैः सह ।
युयुधे विविधैः सस्त्रैरस्त्रैर्दिव्यैर्महाप्रभैः ॥ ४२ ॥

(४२) राजा विशाखयूपने पुलीन्द और स्वपचादिके साथ महा प्रभावशाली विविध दिव्य अस्त्र समूहोंसे संग्राम किया ।

कल्किः कोकविकोकाभ्यां वाहिनीभिर्वरायुधैः ।
तौ तु कोकविकोकौ च ब्रह्मणो वरदर्पितौ ॥ ४३ ॥

(४३) सेना सहित कल्किजी उत्तम शस्त्रास्त्रोंसे कोक और विकोकके साथ संग्राम करने लगे । यह कोक और विकोक ब्रह्माजीसे वरदान पाकर अत्यन्त दर्पित हुए थे ।

भ्रातरौ दानवश्रेष्ठौ मत्तौ युद्धविशारदौ ।
एकरूपौ महासत्वौ देवानां भयवर्द्धनौ ॥ ४४ ॥

(४४) यह दोनों भ्राता दानवोंमें श्रेष्ठ अत्यन्त उन्मत्त, संग्राम करनेमें सुचतुर, महाबलशाली, देवताओंको भय पहुंचाने वाले एवं परस्पर एक रूपके थे ।

पदातिकौ गदाहस्तौ वज्राङ्गौ जयिनौ दिशाम् ।
शुम्भैः परिवृतौ मृत्युजितावेकत्र योधनात् ॥ ४५ ॥

(४५) इनका शरीर वज्रके समान कठिन था और यह दोनों दिग्विजयी थे । दोनों इकट्ठे होकर संग्राम करने पर मृत्युको भी विजयकर सकते थे । यह दोनों महावीर सेनासे युक्त एवं हाथमें गदा धारणकर पैदलही युद्ध करने लगे ।

ताभ्यां स युयुधे कल्किः सेनागणसमन्वितः ।
शुभानां कल्किसैन्यानां समरस्तुमुलोऽभवत् ॥ ४६ ॥

(४६) सेना युक्त कल्किजी कोक और विकोकके साथ घोर संग्राम करने लगे । उनकी सेनाके प्रधान प्रधान योद्धाओंने युद्ध करना आरम्भ किया ।

ह्रेषितैर्बृंहितैर्दन्तशब्दैष्टङ्कारनादितैः ।
शूरोत्क्रुष्टैर्बाहुवेगैः संशब्दस्तलताडनैः ॥ ४७ ॥

(४७) तुरंगनाद, हाथियोंके चिक्कार, दन्त शब्द, धनुषटङ्कार, शूरबीरोंकी भुजा एवं घूंसों और चपतोंके आघातसे महाशब्द उत्पन्न होने लगा ।

संपूरिता दिशः सर्वा लोका नो शर्म्म लेभिरे ।
देवाश्च भयसंत्रस्ता दिवि व्यस्तपथा ययुः ॥ ४८ ॥

(४८) शब्दसे दशो दिशाएं परिपूर्ण होगईं । उस समय कोई मनुष्य भी छुटकारा नहीं पा सका । देवतागण भयभीत हो आकाशमार्गके टेढ़े उलटेमार्गसे गमन करने लगे ।

पाशैर्दण्डैः खड्गशक्त्यृष्टिशूलैर्गदाघातैर्बाणपातैश्च घोरैः ।
युद्धे शूराश्छिन्नबाह्वङ्घ्रिमध्याः पेतुः संख्ये शतशः कोटिशश्च

(४९) पाश खड्ग, दण्ड, शक्ति, ऋष्टि शूल, गदा और घोर बाणोंसे करोड़ों वीरोंके छिन्नभिन्न हाथ, चरण और कमर आदिसे रणभूमि व्याप्त होने लगी ।

इति श्रीसानुवादे कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे
कल्किसेना संग्रामो नाम षष्ठो अध्याय ॥ ६ ॥

तृतीयांशः।

सप्तम-अध्याय।

सूत-उवाच।

एवं प्रवृत्ते संग्रामे धर्म्मः परमकोपनः।
कृतेन सहितो घोरं युयुधे कलिना सह ॥ १ ॥

(१) सूतजी बोले:—इस प्रकार घोर संग्राम आरम्भ होते देखकर धर्म्मने अत्यन्त क्रोधपूर्वक सत्ययुग सहित कलिसे घोरयुद्ध करना आरम्भ किया।

कलिर्दमित्रबाणैर्घैर्धर्म्मस्यापि कृतस्य च।
पराभूतः पुरीं प्रायात्त्यक्त्वागर्द्दभवाहनम् ॥ २ ॥

(२) अनन्तर कलिने धर्म्म और सत्ययुगके भयंकर बाण वर्षासे हारकर अपनी सवारी गधेको छोड़कर अपनी पुरीमें प्रवेश किया।

विच्छिन्नपेचकरथः स्त्रवद्रक्ताङ्गसञ्चयः।
छच्छुर्गन्धः करालास्यः स्त्रीस्वामिकमगाद्गृहम् ॥ ३ ॥

(३) उसका उलूक ध्वजवाला रथ छिन्न भिन्न होगया। समस्त शरीरसे रुधिर प्रवाहित होने लगा। गात्रसे छछून्दरकी गन्ध निकलने लगी। मुखका आकार अति भयंकर होगया। कलिने इस अवस्थाको प्राप्त होकर स्त्री स्वामिक गृहमें प्रवेश किया।

दम्भः सम्भोगरहितते।द्धृतबाणगणाहतः।
व्याकुलः स्वकुलांगारो निःसारः प्राविशद्गृहम् ॥ ४ ॥

(४) बाणोंसे घायल, सार एवं दम्भ सम्भोग रहित होकर स्वकुलाङ्गार रूपसे व्याकुल हृदय हो अपने घरमें घुस गया।

लोभः प्रसादाभिहतो गदया भिन्नमस्तकः।

स्त्री स्वामिका। जिस घरमें स्त्री जातिका सम्पूर्ण अधिकार हो, उसको स्त्री स्वामिका गृह कहते हैं। स्त्री स्वामिका गृहमें अनेक प्रकारके दोष उत्पन्न होनेसे सनातन धर्म्मके विरोध आचरण होने लगते हैं।

सारमेयरथं छिन्नं त्यक्त्वागाद्रुधिरं वमन् ॥ ५ ॥

(५) प्रसादके पदाघातसे लोभका मस्तक चूर्ण होगया। उसका कुत्तोंसे जुता हुआ रथ भग्न होगया तब वह रथत्याग रुधिर वमन करता हुआ भाग गया।

अभयेन जितः क्रोधः कषायीकृतलोचनः।
गन्धाखुवाहं विच्छिन्नं त्यक्त्वा विशसनं गतः ॥ ६ ॥

(६) क्रोध अभयके साथ संग्राममें पराजित हुआ। उसके नेत्र रक्त वर्ण हो गये। वह मूषक जुते हुए दुर्गन्धपूर्ण छिन्नभिन्न रथको त्यागकर विशसन नगरके भीतर चला गया।

भयं सुखतलाघाताद्गतासुर्न्यपतद्भुवि।
निरयो मुदमुष्टिभ्यां पीडितो यममाययौ ॥ ७ ॥

(७) सुखके चपताघातसे भय मृतक हो पृथ्वीपर गिर पड़ा। निरयने प्रीतिके मुष्टिप्रहारसे पीड़ित होकर यमराजके निकट पलायन किया।

आधिव्याध्यादयः सर्वे त्यक्त्वा वाहमुपाद्रवन्।
नानादेशान्भयोद्विग्न कृतबाणप्रपीडिताः ॥ ८ ॥

(८) आधि व्याधि आदि सभी सत्ययुगके बाणोंसे पीड़ित हो, अपने अपने वाहनोंको त्याग भयभीत चित्तसे अनेक देशोंमें भाग गई।

धर्म्मः कृतेन सहितो गत्वा विशसनं कलेः।
नगरं बाणदहनैर्ददाह कलिना सह ॥ ९ ॥

(९) अनन्तर कृतयुगके साथ धर्म्मने कलिकी प्रधान राजधानी विनशन नामक नगरमें प्रवेश किया और बाणाग्निसे कलिके सहित इस नगरको भस्म कर डाला।

कलिर्विप्लुष्टसर्वाङ्गो मृतदारो मृतप्रजः।
जगामैको रुदन्दीनो वर्षान्तरमलक्षितः ॥ १० ॥

(१०) कलिके समस्त अङ्ग भस्मीभूत होगये। उसके स्त्री पुत्र सभी यमराजके अतिथि हुए और वह अकेला दीन अन्तःकरण रुदन करता हुआ छिपकर दूसरे वर्षमें भाग गया।

मरुस्तु शककाम्बोजाञ्जघ्नेदिव्यास्त्रतेजसा ।
देवापिः शबरांश्चोलान्बर्बरांस्तद्गणानपि ॥ ११ ॥

(११) इस ओर मरुने दिव्यास्त्र समूहके तेजसे शक और काम्बोजोंको मारडाला देवापिने शबर चोल और बर्बरोंको इसी प्रकार विनष्ट कर दिया ।

दिव्यास्त्रशस्त्रसम्पातैरर्द्दयामास वीर्यवान् ।
विशाखयूपभूपालः पुलिन्दान्पुक्कसानपि ॥ १२ ॥

(१२) परम तेजस्वी विशाखयूपराजने दिव्य शस्त्रास्त्रसे पुलिन्द औरपुक्कसोंको पराजित किया ।

जघानत्रिमलप्रज्ञः खड्गपातेन भूरिणा ।
नानास्त्रशस्त्रवर्षैस्ते योधा नेशुरनेकधा ॥ १३ ॥

(१३) निर्मल बुद्धिवाले विशाखयूप लगातार खड्ग प्रहार और अनेक शस्त्रा-स्त्रोंकी वर्षासे शत्रुओंको संहार करने लगा। इस प्रकार शत्रुसैन्यके अधिकांश योद्धागण कालके गालमें प्रवेश हुए ।

कल्किः कोकविकोकाभ्यां गदापाणिर्युधां पतिः ।
युयुधे विन्यासविज्ञो लोकानां जनयन्भयम् ॥ १४ ॥

(१४) गदायुध विशारद महाबीर कल्किजी हाथमें गदाधारणकर समर लोकोंको भयभीत करते हुए कोक और विकोकके साथ संग्राम करने लगे ।

वृकासुरस्य पुत्रौ तौ नप्तारौ शकुनेर्हरिः ।
तयोः कल्किः स युयुधे मधुकैटभयोर्यथा ॥ १५ ॥

(१५) यह दोनों भ्राता वृकासुरके पुत्र शकुनिके पोते थे। जिस प्रकार पूर्व्व कालमें श्रीनारायणजीने मधुकैटभके साथ संग्राम किया था, उसी प्रकार कल्किजी इन दोनों महाबीरोंके साथ संग्राम करते लगे ।

तयोर्गदा प्रहारेण चूर्णितांगस्य तत्पतेः ।
कराच्चयुतापतद्भूमौ दृष्ट्वोचुरित्यहो जनाः ॥ १६ ॥

पुक्कस । वर्णसङ्कर नीच जातिके लोग ।

(१६) कोक और विकोकके गदाघातसे कल्कि भगवान्‌का शरीर चूर्ण होगया। गदा हाथसे छूटकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। सब लोग विस्मयापन्न नेत्रोंसे इस घटनाको देखने लगे।

ततः पुनः क्रुधा विष्णुर्जगज्जिष्णुर्महाभुजः।
भल्लकेन शिरस्तस्य विकोकस्याच्छिनत्प्रभुः॥ १७॥

(१७) तदनन्तर त्रिलोक विजयी महावीर संसारके स्वामी विष्णुजीने पुनः क्रोधित होकर भल्ल नामक अस्त्रसे विकोकका मस्तक काट डाला।

मृतो विकोकः कोकस्य दर्शनादुत्थितो बली।
तद्दृष्ट्वा विस्मिता देवाः कल्किश्च परवीरहा॥ १८॥

(१८) महाबलवान विकोक मृतक होगया परन्तु उसपर उसके भ्राताकी दृष्टि पड़तेही वह मृत्युशय्यासे पुनः उठ खड़ा हुआ। यह देख देवतागण और शत्रुसंहारक कल्किजी अति विस्मयापन्न हुए।

प्रतिकर्त्तुर्गदापाणेः कोकस्याप्यच्छिनच्छिरः।
मृतः कोको विकोकस्य दृष्टिपातात्समुत्थितः॥ १९॥

(१९) कल्किजीने विकोकके पुनः जीवित होनेका कारण गदाधारी कोकका मस्तक काटडाला। कोक मृतक होगया परन्तु विकोके देखते ही वह तत्क्षण ही जीवित हो उठखड़ा हुआ।

पुनस्तौ मिलितौ तेन युयुधाते महाबलौ।
कामरूपधरौ वीरौ कालमृत्यू इवापरौ॥ २०॥

(२०) तदनन्तर इच्छानुसार रूप धारण करने वाले महाबलवान कोक और विकोक एकत्रित होकर द्वितीय कालकी भांति कल्किजीसे युद्ध करने लगे।

खड्गचर्म्मधरौ कल्किं प्रहरन्तौ पुनः पुनः।
कल्किः क्रुधा तयोस्तद्वद्बाणेन शिरसी हते॥ २१॥

(२१) वह ढाल तलवार धारणकर कल्किजीपर वारम्वार चोट करने लगे। कल्किजीने क्रोधित हो बाणों द्वारा उन दोनोंकी मस्तक काट डाली।

पुनर्लग्ने समालोक्य हरिश्चिन्तापरोऽभवत्।

विसस्त्वस्त्वमथालोक्य तुरगस्तावताडयत् ॥ २२ ॥

(२२) दोनोंके मस्तक धड़में पुनःयुक्त होते देखकर नारायणजी अति चिन्तित हुए। अनन्तर कल्किजीके अश्वोंने कोक विकोकको प्रहार करते देखकर उनपर कठिन प्रहार किया।

कालकल्पौ दुराधर्षौ तुरगेणार्दितौ भृशम् ।
कल्केस्तं जघ्नतुर्बाणैरमर्षाताम्रलोचनौ ॥ २३ ॥

(२३) यमकी समान दुद्धर्ष कोक और विकोक कल्किजीके अश्वोंसे अति घायल होनेपर क्रोधयुक्त लाल नेत्रकर उनपर बाणवर्षा करने लगे।

तयोर्भुजान्तरं सोऽश्वः क्रुधा समदशद्भृशम् ।
तौ तु प्रभिन्नास्थिभुजौ विशस्ताङ्गदकार्मुकौ ।
पुच्छं जगृहतुः सप्तेर्गोपुच्छं बालकाविव ॥ २४ ॥

(२४) अश्वने क्रोधित होकर कोक और विकोककी भुजमूल को काट खाया। उनके वाहोंकी अस्थि चूर्ण विचूर्ण होगई। वाजू और धनुष दोनों छिन्न भिन्न होगये। अनन्तर जिस प्रकार बालक गोपुच्छको पकड़ता है, उसी प्रकार उन दोनों महावीरोंने घोड़ेकी पूंछ पकड़ लिया।

धृतपुच्छौ तु तौ ज्ञात्वा सप्तिः परमकोपनः ।
पश्चात्पद्भ्यां दृढं जघ्ने तयोर्वक्षसि वज्रवत् ॥ २५ ॥

(२५) उन्हें पूंछ पकड़े हुए देखकर घोड़ेने अति क्रोधित हो पिछले पावोंसे दृढ़ वज्रके समान उनकी छातीमें प्रचण्ड प्रहार किया।

त्यक्तपुच्छौ मूर्च्छितौ तौ तत्क्षणात्पुनरुत्थितौ ।
पुरतः कल्किमालोक्य बभाषाते स्फुटाक्षरौ ॥ २६ ॥

(२६) कोक और विकोकने मूर्च्छित हो पूंछको छोड़ पृथ्वीतलमें गिरकर तत्कालही फिर खड़े हुए और कल्किजीको सन्मुख देखकर स्पष्टवाणीसे युद्ध करनेके निमित्त पुकारा।

ततो ब्रह्मा तमभ्येत्य कृताञ्जलिपुटः शनैः ।
प्रोवाच कल्किं नैवामू शस्त्रास्त्रैर्वधमर्हतः ॥ २७ ॥

(२७) इसी समय श्रीब्रह्माजी कल्किजीके समीप आकर हाथजोड़ धीरे धीरे बोले,—"यह कोक और विकोक अस्त्र शस्त्रसे नहीं मारे जायंगे ।"

कराघातादेककाले उभयोर्निर्मितो वधः ।
उभयोर्दर्शनादेव नोभयोर्मरणं क्वचित् ।
विदित्वेति कुरुष्वात्मन्युगपच्चानयोर्वधम् ॥ २८ ॥

(२८) हे परमात्मन्! एक समयमें ही थप्पड़ मारकर दोनोंका वध किया जा सकता है । इन दोनोंमें एकके देखते हुए दूसरेकी मृत्यु नहीं होगी । अतएव इस बातको स्मरण रखकर आप एक साथही दोनोंका वध कीजिये ।

इति ब्रह्मवचः श्रुत्वा त्यक्तशस्त्रास्त्रवाहनः ।
तयोः प्रहरतोः स्वैरं कल्किर्दानवयोः क्रुधा ।
मुष्टिभ्यां वज्रकल्पाभ्यां बभञ्ज शिरसी तयोः ॥ २९ ॥

(२९) ब्रह्माजीके यह बचन सुन कल्किजीने वाहन और शस्त्रास्त्र त्याग अल्प प्रहार करनेवाले उन दोनों दानवोंके वीचमें होकर बज्रके समान एक साथही दो मुष्टिक प्रहारसे उनका मस्तक चूर्ण करडाला ।

तौ तत्र भग्नमस्तिष्कौ भग्नशृङ्गावगाविव ।
पेततुर्दिवि देवानां भयदौ भुवि बाधकौ ॥ ३० ॥

(३०) देवलोक स्थित देवताओंको भयदेने वाले एवं समस्त प्राणियोंके अनिष्ट-कर्त्ता वे दोनों दानव मस्तिष्कभग्न होकर टूटे हुए दो पर्वतशिखरोंकी भांति पृथ्वीपर गिर पड़े ।

तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।
ननृतुर्जगुस्तुष्टुवुश्च मुनयः सिद्धचारणाः ।
देवाश्च कुसुमासारैर्ववर्षुर्हर्षमानसाः ॥ ३१ ॥

(३१) इस अद्भुत कार्य्यको देखकर गन्धर्वगण गाने लगे । अप्सरायें नृत्य करने लगीं । मुनियोंने स्तुति किया । देव, सिद्ध एवं चारणगण हर्षितहृदय पुष्पवर्षा करने लगे ।

दिवि दुन्दुभयो नेदुः प्रसन्नाश्चाभवन्दिशः ।

तयोर्वधप्रमुदितः कविर्द्दशसहस्रकान् ।
साश्वान्महारथान्साक्षाद्दहनद्दिव्यसायकैः ॥ ३२ ॥

(३२) कोक और विकोककी मृत्यु देख कविने आनन्दित और उत्साहित होकर दिव्यास्त्रोंसे रथास्त्र सहित दशहजार महारथवीरोंका नाश किया।

प्राज्ञः शतसहस्राणां योधानां रणमूर्द्धनि ।
क्षयं निन्ये सुमन्त्रस्तु रथिनां पञ्चविंशतिः ॥ ३३ ॥

(३३) प्राज्ञने रणभूमिमें एक लक्ष योद्धाओंका संहार किया और सुमन्त्रकके हाथसे पच्चीस रथी मारे गये।

एवमन्ये गार्गभर्ग्यविशालाद्या महारथान् ।
निजघ्नुः समरे क्रुद्धा निषादान्म्लेच्छबर्बरान् ॥ ३४ ॥

(३४) इसी प्रकार उस समय गर्ग्य, भर्ग्य और विशालादि वीरोंने भी क्रोधित हो म्लेक्ष, वर्बर, और निषादोंका संहार किया।

एवं विजित्य तान्सर्व्वान्कल्किर्भूपगणैः सह ।
शय्याकर्णैश्च भल्लाटनगरञ्जेतुमाययौ ॥ ३५ ॥
नानावाद्यैर्लोकसंघैर्वरास्त्रैर्नानावस्त्रैर्भूषणैर्भूषिताङ्गैः ।
नानावाहैश्चामरैर्वीज्यमानैर्यातो योद्धुं कल्किरत्युग्रसेनः ३६

(३५-३६) कल्किजीने वृहत् सेना लेकर युद्ध करनेके निमित्त प्रस्थान किया। अनेक प्रकारके बाजोंकी ध्वनि होने लगीं। उत्तम अस्त्रधारीगण उनके साथ चले। अनेक प्रकारके वाहन आने लगे। चारों ओरसे चामर व्यजन होना आरम्भ हुआ।

इति श्रीसानुवादे कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे
कोकविकोकादीनां वधोनाम सप्तमोऽध्याय ॥ ७ ॥

तृतीयांशः ।

अष्टम-अध्याय ।

सूतउवाच ।

सेनागणैः परिवृतः कल्किर्नारायणः प्रभुः ।
भल्लाटनगरंप्रायात्खड्गधृक्सप्तिवाहनः ॥ १ ॥

(१) सूतजी बोले,—जगत्पति नारायण कल्किजी घोड़ेपर सवार हो खड्ग धारणकर अनेक सेनासहित भल्लाटनगरको गये ।

स भल्लाटेश्वरो योगी ज्ञात्वा विष्णुं जगत्पतिम् ।
निजसेनागणैः पूर्णो योद्धुकामो हरिं ययौ ॥ २ ॥

(२) कल्किजी को संसारस्वामी हरि और विष्णुजीका पूर्ण अवतार जानकर परमयोगी भल्लाटनरेश संग्राम करनेकी अभिलाषाके सेनासहित नगरके बाहर निकले ।

स हर्षोत्पुलकः श्रीमान्दीर्घाङ्गः कृष्णभावनः ।
शशिध्वजो महातेजा गजायुतबलः सुधीः ॥ ३ ॥

(३) बुद्धिमान, श्रीमान, दीर्घाकार, महातेजस्वी, कृष्णभक्त राजा शशिध्वज हर्षसे रोमाञ्चित हो गये ।

तस्य पत्नी महादेवी विष्णुव्रतपरायणा ।
सुशान्ता स्वामिनं प्राह कल्किना योद्धुमुद्यतम् ॥ ४॥

(४) राजा शशिध्वजकी सुशान्तानामक भार्य्या महादेवी विष्णुव्रत परायणा थी । अपने स्वामी को कल्किजीसे युद्ध करनेके निमित्त उद्यत देखकर सुशान्ताने कहा ।

नाथ कान्तं जगन्नाथं सर्वान्तर्यामिनं प्रभुम् ।
कल्किं नारायणं साक्षात्कथं त्वं प्रहरिष्यसि ॥ ५ ॥

(५) हे नाथ! सर्वान्तर्यामी, जगन्नाथ प्रभु कल्किजी साक्षात् नारायण हैं, उनपर आप किस प्रकार प्रहार करेंगे।

शशिध्वज उवाच—सुशान्ते परमो धर्म्मः प्रजापतिविनिर्मितः।
युद्धे प्रहारः सर्व्वत्र गुरौ शिष्ये हरेरिव ॥ ६ ॥

(६) शशिध्वजने कहा,—हे सुशान्ते! पितामह ब्रह्माजीने जिस प्रकार परम धर्म्म स्थिर किया है, उससे संग्रामभूमिमें नारायण, गुरु, शिष्य प्रभृति सबपर प्रहार किया जा सकता है।

जीवतो राजभोगः स्यान्मृतः स्वर्गे प्रमोदते।
युद्धे जयो वा मृत्युर्वा क्षत्रियाणां सुखावहः ॥ ७ ॥

(७) संग्रामभूमिसे जीवित लौट आनेपर अखण्डराज्यभोग होता है और मृत्यु होनेपर स्वर्गानन्द सन्दोहभोग मिलता है। इस कारण क्षत्रियोंके लिये युद्धमें जय और मृत्यु दोनों सुखदायी हैं।

सुशान्तोवाच—देवत्वं भूपतित्वं वा विषयाविष्टकामिनाम्
उन्मदानां भवेदेव न हरेः पादसेविनाम् ॥ ८ ॥

(८) सुशान्ता बोली,—जो लोग कामी हैं, जिनका चित्त सदा विषयासक्त रहता है, जो विषयमदमें उन्मत्त रहते हैं उनके लिये युद्धमें जय होनेपर अखण्ड राज्य और पराजय होनेपर देवत्व प्राप्त होना गिना गया है परन्तु जो नारायणजीके सेवक हैं उनके लिये वह सब कुछ भी नहीं है।

त्वं सेवकः स चापीशस्त्वं निष्कामः स चाप्रदः।
युवयोर्युद्धमिलनं कथं मोहाद्भविष्यति ॥ ९ ॥

(९) आप सेवक हैं। वह ईश्वर हैं। आप निष्काम हैं। वह फलप्रदान करनेवाले नहीं हैं। ऐसी अवस्थामें मोहकार्य्यसे दोनोंमें युद्ध होना कैसे सम्भव हो सकता है।

शशिध्वज उवाच-द्वन्द्वातीते यदि द्वन्द्वमीश्वरे सेवके तथा।
देहावेशाल्लीलयैव सा सेवा स्यात्तथा मम ॥ १० ॥

(१०) राजा शशिध्वजने कहा,—परमपुरुष भगवान सुखदुःखादि द्वन्द्वोंसे परे

हैं। यदि ईश्वर और सेवकमें देहधारण करनेके कारण द्वन्द्व युद्ध होजाय, तो वह विलासलीला सेवारूप मानी जायगी।

देहावेशादीश्वरस्य कमाद्या दैहिका गुणाः।
मायाङ्गा यदि जायन्ते विषयाश्च न किं तथा ॥ ११ ॥

(११) जब भगवानने मूर्त्ति धारण की, तब कामादि माया अंशस्वरूप शरीरके गुणोंकी परम्परा नारायणके शरीरमें आरोपित हुई। कामादिके आरोपित होनेसे उनके देहमें कामादिक विषय क्यों नहीं आरोपित होंगे?

ब्रह्मतो ब्रह्मतेशस्य शरीरित्वे शरीरिता।
सेवकस्याभेददृशस्त्वेवं जन्मलयोदयाः ॥ १२ ॥

(१२) पूर्ण स्वरूप ब्रह्मभावयुक्त ईश्वरको ब्रह्म कहते हैं और मूर्तिमान् शरीरधारी भगवान्को शारीरिता कहते हैं। जिस सेवककी भेददृष्टि अलग होगई है और उसमें अभेद ज्ञानका संचार हुआ है, उसका जन्मलय और उदय भी योंही होता है।

सेव्यसेवकता विष्णोर्माया सेवेति कीर्त्तिता।
द्वैताद्वैतस्य चेष्टैषा त्रिवर्गजनिका सताम् ॥ १३ ॥

(१३) सेव्य और सेवकभावही सेवा कही जाती है। यह केवल वैष्णवी मायाका कार्य्य है। इस द्वैताद्वैत चेष्टासे साधुओंको त्रिवर्गकी प्राप्ति होती है।

अतोऽहं कल्किना योद्धुं यामि कान्ते स्वसेनया।
त्वं तं पूजय कान्तेऽद्य कमलापतिमीश्वरम् ॥ १४ ॥

(१४) हे कान्ते! इसी कारण मैं कल्किजीके साथ संग्राम करनेको सेना सहित यात्रा करता हूं। हे प्रिये! अब तुम कमलापति नारायणजीकी पूजा करो!

सुशान्तोवाच—कृतार्थाऽहं त्वया विष्णुसेवासंमिलितात्मना
स्वामिन्निह परत्रापि वैष्णवी प्रथिता गतिः ॥ १५ ॥

(१५) सुशान्ता बोली,—स्वामिन्! आप विष्णुजीकी सेवा करके विष्णुजीमेंही लीन होगये। उससे मैं भी कृतार्थ होगई। इसलोक और परलोकमें विष्णोपासनाके अतिरिक्त अन्यगति नहीं है।

इति तस्या वल्गुवाग्भिः प्रणतायाः शशिध्वजः।

आत्मानं वैष्णवं मेने साश्रुनेत्रो हरिं स्मरन् ॥ १६ ॥

(१६) सुशान्ताके इस प्रकार विनयपूर्व्वक मनोहर वचन सुनकर महाराज शशिध्वज नेत्रोंमें जल भरकर बिष्णुजीको स्मरण करने लगे और अपनेको परम वैष्णव समझा ।

तामालिङ्ग्य प्रमुदितः शूरैर्बहुभिरावृतः ।
वदन्नाम स्मरन्रूपं वैष्णवैर्योद्धुमाययौ ॥ १७ ॥

(१७) अनन्तर राजा शशिध्वजने हर्षपूर्वक प्यारी सुशान्ताको हृदयसे लगाया। आगे बीरोंके सहित हरिनाम स्मरण करते हुए युद्ध करनेके निमित्त वैष्णवोंके साथ यात्रा की ।

गत्वा तु कल्किसेनायां विद्राव्य महतीं चमूम् ।
शय्याकर्णगणैर्वीरैः सन्नद्धैरुद्यतायुधैः ॥ १८ ॥

(१८) राजा शशिध्वजने कल्किजीकी सेनामें प्रवेश करके बड़ीभारी सेनाको तितरवितर कर दिया । उद्यत महावीर शय्याकर्णगण शस्त्रास्त्र उठाकर उनके साथ मिलकर संग्राम करने लगे ।

शशिध्वजसुतः श्रीमान्सूर्य्यकेतुर्महाबलः ।
मरुभूपेन युयुधे वैष्णवो धन्विनां वरः ॥ १९ ॥

(१९) महाधनुषधारी, अतिबलवान, परम वैष्णव राजा शशिध्वजका पुत्र श्रीमान् सूर्य्यकेतु सूर्य्यवंशीय राजा मरुके साथ संग्राम करने लगा ।

तस्यानुजो बृहत्केतुः कान्तः कोकिलनिस्वनः ।
देवापिना स युयुधे गदायुद्धविशारदः ॥ २० ॥

(२०) सूर्य्यकेतुका लघुभ्राता बृहत्केतु अत्यन्त कमनीय मूर्तिवाला कोकिलके समान मधुरध्वनिकारी और गदायुद्ध विशारद था। वह देवापिके साथ युद्ध करने लगा ।

विशाखयूपभूपस्तु शशिध्वजनृपेण च ।
युयुधे विविधैः शस्त्रैः करिभिः परिवारितः ॥ २१ ॥

(२१) राजा विशाखयूप गजयूथसे युक्तहो अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र ले राजा शशिध्वजके साथ युद्ध करने लगे ।

रुधिराश्वो धनुर्धारी लघुहस्तः प्रतापवान्।
रजस्यनेन युयुधे भर्ग्यः शान्तेन धन्विना ॥ २२ ॥

(२२) लाल अश्वपर सवार, फुर्तीले हाथवाला, धनुषधारी, प्रतापवान भर्ग्य धूरिपटलके मध्यमें धनुषधारी शान्तके साथ संग्राम करने लगा।

शूलैः प्रासैर्गदाघातैर्बाणशक्त्यृष्टितोमरैः।
भल्लैः खड्गैर्भुशुण्डीभिः कुन्तैः समभवद्रणः ॥ २३ ॥

(२३) इस प्रकार शूल, प्रास, गदा, बाण, शक्ति, ऋष्ट, तोमर, भल्ल, खड्ग, भुशुण्डी और कुन्त अस्त्रके प्रहारसे युद्ध चलने लगा।

पताकाभिर्ध्वजैश्छत्रैस्तोमरैश्छत्रचामरैः।
प्रोद्धूतधूलिपटलैरन्धकारो महानभूत् ॥ २४ ॥

(२४) चामर एवं ध्वजापताकाकी छाया और गाढ़ी धूलिपटलसे संग्रामभूमि अन्धकारमय हो गई।

गगनेऽनुघना देवाः के वा वासं न चक्रिरे।
गन्धर्व्वैः साधुसन्दर्भैर्गायनैरमृतायनैः ॥ २५ ॥

(२५) देवतागण मेघान्तरमें स्थित होकर युद्ध देखने लगे। गन्धर्वगण अमृतकी भांति मधुरस्वरसे गानकरते हुए युद्ध देखनेके निमित्त आये।

द्रष्टुं समागताः सर्व्वे लोकाः समरमद्भुतम्।
शंखदुन्दुभिसन्नादैरास्फोटैर्बृंहितैरपि ॥ २६ ॥
ह्रेषितैर्योधनोत्कुष्टैर्लोका मूका इवाभवन्।
रथिनो रथिभिः साकं पदाताश्च पदातिभिः ॥ २७ ॥
हया हयैरिभाश्चेभैः समरोऽमरदानवैः।
यथाभवत्स तु घनो यमराष्ट्रविवर्द्धनः ॥ २८ ॥

(२६-२७-२८) समस्त लोकही अद्भुत संग्राम देखनेके निमित्त आये। शंख नक्कारोंकी ध्वनि, वीरोंके तालशब्द, हाथियोंके चिङ्घाड़, घोड़ोंके हिनकार, और युद्धास्त्रोंके टङ्कारसे रणभूमि शब्दपूर्ण होगई। सबलोग मूककी समान ज्ञात होनेलगे। कोई

किसीकी बात नहीं सुन सकता था। रथी, रथियोंसे, पैदल पैदलोंसे और अश्वारोही अश्वारोहीके साथ संग्राम करने लगे। यह युद्ध देवासुर संग्रामकी भांति यमराजकी प्रजासंख्या बढ़ाने लगा।

शशिध्वजचमूनाथैः कल्किसेनाधिपैः सह ।
निपेतुः सैनिका भूमौ छिन्नबाह्वङ्घ्रिकन्धराः ॥ २९ ॥

(२९) शशिध्वजके सेनापतिगण, कल्किजीके सेनापति और योद्धाओंसे हाथ पांव और मस्तकहीन होकर पृथ्वीपर गिरने लगे।

धावन्तोऽतिब्रुवन्तश्च विकुर्वन्तोऽसृगुक्षिताः ।
उपर्य्युपरि संच्छन्ना गजाश्वरथमर्द्दिताः ॥ ३० ॥

(३०) कोई घायल होकर भाग रहे हैं, कोई चिल्ला रहे हैं, कोई विकृतस्वरसे आर्तनाद कर रहे हैं, कोई रुधिरधारसे भीग रहे हैं, कोई एक दूसरेपर गिरकर पृथ्वीको ढके हुए हैं और कोई हाथी घोड़ोंके पांव एवं रथसे मर्द्दित होरहे हैं।

निपेतुः प्रधने वीराः कोटिकोटिसहस्रशः ।
भूते सानन्दसन्दोहाः स्रवन्तो रुधिरोदकम् ॥ ३१ ॥

(३१) इस प्रकार इस संग्राममें सहस्रोंकोटि वीर बिनष्ट हुए। रणभूमिमें रुधिरकी नदी प्रवाहित होचली। रुधिर नदीका यह प्रवाह पिशाच, राक्षस, शृगाल और गृध्रादि प्राणियोंको आनन्द देनेवाला हुआ।

उष्णीषहंसाः संछिन्नगजरोधोरथप्लवाः ।
करोरुमीनाभरणमसिकाञ्चनवालुकाः ॥ ३२ ॥

(३२) इस रुधिर प्रवाहमें गिरीहुई पगड़ियां हंसोंके समान दिखाई देने लगीं, गिरेहुए हाथी टापुओंके समान प्रतीत होने लगे, रथसमूह नावकी भांति जान पड़े, छिन्न हाथपांव मच्छसमूहकी शोभा दर्शाने लगे, और खड्गसुवर्णकी रेतीके समान ज्ञात हुए।

एवं प्रवृत्ताः संग्रामे नद्यः सद्योऽतिदारुणाः ।
सूर्य्यकेतुस्तु मरुणा सहितो युयुधे बली ॥ ३३ ॥

(३३) इस प्रकार संग्रामभूमिमें अति दारुण नदी उत्पन्न हुई। बलवान सूर्यकेतु मरुके साथ संग्राम करने लगा।

कालकल्पो दुराधर्षो मरुं बाणैरताडयत्।
मरुस्तु तत्र दशभिर्मार्गणैरर्दयद्भृशम् ॥ ३४ ॥

(३४) कालके समान दुर्द्धर्ष सूर्य्यकेतुने बाणोंसे मरुको घायल कर दिया। मरुने भी दश बाणोंसे सूर्य्यकेतुको बेध डाला।

मरुबाणाहतो वरीः सूर्य्यकेतुरमर्षितः।
जघान तुरगान्कोपात्पादोद्घातेन तद्रथम् ॥ ३५ ॥
चूर्णयित्वाऽथ तेनापि तस्य वक्षस्यताडयत्।
गदाघातेन तेनापि मरुर्मूर्च्छामवापह ॥ ३६ ॥

(३५-३६) वीर सूर्य्यकेतुने मरुके बाणोंसे घायल होनेपर अत्यन्त क्रोधित होकर उसके समस्त अश्वोंका संहार कर दिया और पदाघातसे उसका रथ चूर्ण विचूर्ण करके गदा द्वारा उसकी छातीमें कठिन आघात किया। आघातसे मरु मूर्च्छित होकर गिर पड़ा।

सारथिस्तमपोवाह रथेनान्येन धर्म्मवित्।
बृहत्केतुश्च देवापिं बाणैः प्राच्छादयद्बली ॥ ३७ ॥

(३७) धर्म्मवित् सारथि अपने प्रभु मरुको अन्य रथमें उठाकर लेगया। बलवान बृहत्केतुने बाण समूहसे देवापिको आच्छादित कर दिया।

धनुर्विकृष्य तरसा नीहारेण यथा रविम्।
स तु बाणमयं वर्षं परिवार्य्य निजायुधैः ॥ ३८ ॥

(३८) जिस प्रकार सूर्य्यदेव कुहरेसे ढक जाते हैं, उसी प्रकार बाणाच्छादित देवापिने तत्काल धनुष ग्रहण करके अपनी बाणवर्षासे शत्रुकी बाणधाराको निवारण किया।

बृहत्केतुं दृढं जघ्ने कङ्कपत्रैः शिलाशितैः।
भिन्नं शूलमथालोक्य धनुर्गृह्य पतत्रिभिः ॥ ३९ ॥
शितधारैः स्वर्णपुंखैर्गार्द्ध्रपत्रैरयोमुखैः।
देवापिमाशुगैर्जघ्ने बृहत्केतुः ससैनिकम् ॥ ४० ॥

(३९-४०) बृहत्केतुने शिलापर शान लगे हुए तीक्ष्ण बाणोंसे अपने शूलतकको छिन्न भिन्न देखकर पुनः धनुष ग्रहण किया एवं सुवर्णखचित, लौह मुखवाले, गृद्ध पंख युक्त तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा कर देवापि और उसकी सेनापर प्रहार करना आरम्भ किया ।

देवापिस्तद्धनुर्दिव्यं चिच्छेद निशितैः शरैः ।
छिन्नधन्वा बृहत्केतुः खड्गपाणिर्जिघांसया ॥ ४१ ॥

(४१) देवापिने भी तीक्ष्ण बाणोंसे बृहतत्केतुका वह दिव्य धनुष काट डाला । धनुष विनष्ट होनेपर बृहत्केतुने देवापिका वध करनेके अभिप्रायसे खड्ग धारण किया ।

देवापेः सारथिं साश्वं जघ्ने शूरो महामृधे ।
स देवापिर्धनुस्त्यक्त्वा तलेनाहत्य तं रिपुम् ॥ ४२ ॥

(४२) आगे वीर बृहत्केतुने उस महासंग्राममें देवापिके अश्वों और सारथीका वध किया । देवापिने धनुष त्याग शत्रुपर एक झपत मारा ।

भुजयोरन्तरानीय निष्पिपेष स निर्द्दयः ।
तं द्व्यष्टवर्षं निष्क्रान्तं मूर्च्छितं शत्रुणार्द्दितम् ॥ ४३ ॥

(४३) उसको दोनों भुजाओंके मध्य दबाकर पीसना आरंभ किया । अट्ठारह वर्षका बृहत्केतु शत्रुसे पीड़ित होकर मूर्च्छित और मृतकके समान होगया ।

अनुजं वीक्ष्य देवापिमूर्ध्नि सूर्य्यध्वजोऽवधीत् ।
मुष्टिना वज्रपातेन सोऽपतन्मूर्च्छितो भुवि ।
मूर्च्छितस्य रिपुः क्रोधासेनागणमताडयत् ॥ ४४ ॥

(४४) अपने लघु भ्राताकी यह दशा देख राजा सूर्य्यकेतुने देवापिके शिरपर एक वज्रके समान घूंसा मारा । मुष्टिप्रहारसे देवापि मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा । उसका शत्रु सूर्य्यकेतुने देवापिको मूर्च्छित जान क्रोधित हो उसकी सेनापर प्रहार करना आरम्भ किया ।

शशिध्वजः सर्व्वजगन्निवासं कल्किं पुरस्तादभिसूर्य्यवर्च्चसम् ।
श्यामं पिशङ्गाम्बरमम्बुजेक्षणं बृहद्भुजं चारुकिरीटभूषणम् ॥

(४५) इस ओर राजा शशिध्वजने, संग्रामभूमिमें सूर्य्यके समान तेजस्वी, समस्त ब्रह्माण्डके आधार, कमलनेत्रवाले, पीताम्बरधारी, विशालबाहु, मनोहर किरीटसे सुशोभित मस्तकवाले कल्किजीको सन्मुखमें देखा।

नानामणिव्रातचिताङ्गशोभया निरस्तलोकेक्षणहृत्तमोमयम्
विशाखयूपादिभिरावृतं प्रभुं ददर्श धर्मेण कृतेन पूजितम् ॥४६

(४६) अनेकमणि समूहसे सुशोभित अङ्गवाले, लोगोंके नेत्र और हृदयके अंधकारको दूर करनेवाले कल्किजीके चारों ओर विशाखयूप आदि भूपालगण दण्डायमान हैं। सत्य और धर्म्म उन सनातन भगवानकी पूजा कर रहे हैं।

इति श्रीसानुवादे कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे
शशिध्वजकल्किसेनयोर्युद्धं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

तृतीयांशः ।

नवम-अध्याय ।

सूतउवाच ।

हृदि ध्यानास्पदं रूपं कल्केर्दृष्ट्वा शशिध्वजः ।
पूर्णं खड्गधरं चारुतरगारूढमब्रवीत् ॥ १ ॥

(१) सूतजी बोले,—हृदयमें ध्यान करने योग्य, मनोहर अश्वारोहित, खड्गधारी, पूर्णावतार, कल्किजीका रूप देखकर राजा शशिध्वज कहने लगे।

धनुर्बाणधरं चारु-विभूषणवराङ्गकम् ।
पापतापविनयाशार्थमुद्यतं जगतां परम् ॥ २ ॥

(२) यह मनोहर आभूषणोंसे विभूषित जगत्पति कल्किजी धनुर्बाण धारणकर संसार पाप तापको नाश करनेके अर्थ उद्यत हैं।

प्राह तं परमात्मानं हृष्टरोमा शशिध्वजः ।

एह्येहि पुण्डरीकाक्ष ! प्रहारं कुरु मे हृदि ॥ ३ ॥

(३) राजाशशिध्वजने रोमाञ्चित शरीर होकर उन परमात्मा कल्किजीसे कहा,- हे पुण्डरीकाक्ष ! आगमन करो ! हमारे हृदयमें प्रहार करो !

अथवात्मन् बाणभिया तमोऽन्धे हृदि मे विश ।
निर्गुणस्य गुणज्ञत्वमद्वैतस्यास्त्रताडनम् ॥ ४ ॥
निष्कामस्य जयोद्योगसहायं यस्य सैनिकम् ।
लोकाः पश्यन्तु युद्धं मे द्वैरथे परमात्मनः ॥ ५ ॥

(४-५) हे परमात्मन् ! हमारे बाणोंके भयसे मेरे तमाच्छण हृदयमें प्रवेश करके छिप रहो, जो निर्गुण होकर भी गुणको जानते हैं, जो अद्वैत होकर भी अस्त्र प्रहार करनेको तैयार हुए हैं, जिन्होंने निष्काम होकर भी जयके अर्थ सेनाका संहार किया है, उन्हीं परमात्माके साथ द्वैरथ युद्ध करता हूं। सब लोग देखें ।

परबुद्धिर्यदि दृढं प्रहर्त्ता विभवे त्वयि ।
शिवविष्णोर्भेदकृते लोकं यास्यामि संयुगे ॥ ६ ॥

(६) तुम विभू हो । मैं तुमपर दृढ़ प्रहार करूंगा । परन्तु प्रहार करनेके समय यदि मैं आपको अन्य समझूं तो मुझको वह लोक प्राप्त हो, जो लोक कि शिव और विष्णुमें भेद समझने वालेको प्राप्त होता है ।

इति राज्ञो वचः श्रुत्वा अक्रोधः क्रुद्धवद्विभुः ।
बाणैरताडयत्संख्यं धृतायुधमरिन्दमम् ॥ ७ ॥

(७) अस्त्रधारी, शत्रु सन्तापकारी राजा शशिध्वज, इन वचनों सुननेपर क्रोध रहित विभू कल्किजीको क्रोधाकार देखकर उनपर बाण प्रहार करने लगा ।

शशिध्वजस्तत्प्रहारमगणय्य वरायुधैः ।
तं जघ्ने बाणवर्षेण धाराभिरिव पर्वतम् ॥ ८ ॥

(८) राजा शशिध्वजने उस प्रहारको विफल समझ पर्वतपर वर्षा करनेवाले मेघकी भांति उनपर अनेक अस्त्रोंकी वर्षा की ।

तद्बाणवर्षभिन्नान्तः कल्किः परमकोपनः ।

दिव्यैः शस्त्रास्त्रसंघातैस्तयोर्युद्धमवर्त्तत ॥ ९ ॥

(९) बाणोंसे कल्किजीका शरीर छिन्नभिन्न होनेपर उन्हें अत्यन्त क्रोध हुआ। आगे दिव्यास्त्रोंसे उन दोनोंमें महायुद्ध होने लगा।

ब्रह्मास्त्रस्य च ब्रह्मास्त्रैर्वायव्यस्य च पार्वतैः ।
आग्नेयस्य च पार्ज्जन्यैः पन्नगस्य च गारुडैः ॥ १० ॥

(१०) ब्रह्मास्त्रसे ब्रह्मास्त्र, पर्वतास्त्रसे वायव्यास्त्र, मेघास्त्रसे आग्नेयास्त्र और गारूणास्त्रसे पन्नगास्त्र खंडित होने लगे।

एवं नानाविधैरस्त्रैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ।
लोकाः सपाला संत्रस्ता युगान्तमिव मेनिरे ॥ ११ ॥

(११) इस प्रकार राजा शशिध्वज और कल्किजी परस्परमें अनेक दिव्यास्त्रोंसे प्रहार करने लगे, लोक और लोकपाल सबही महा भयभीत हुए। वह मनमें समझने लगे, कि आज प्रलयकाल आपहुंचा है।

देवा बाणाग्निसंत्रस्ता अगमन्खगमाः किल ।
ततोऽतिवितथोद्योगौ वासुदेवशशिध्वजौ ॥ १२ ॥
निरस्त्रौ बाहुयुद्धेन युयुधाते परस्परम् ।
पदाघातैस्तलाघातैर्मुष्टिप्रहरणैस्तथा ॥ १३ ॥

(१२-१३) युद्ध देखनेके निमित्त आकाशमार्गमें आये हुए देवतागण बाणाग्निसे भीत होने लगे। कल्किजी और राजा शशिध्वजने देवास्त्रका प्रयोग विफल देखकर अस्त्र त्याग परस्पर बाहुयुद्ध करने लगे। पदाघात, चपताघात, और मुष्टि प्रहारसे दोनोंमें संग्राम होने लगा।

नियुद्धकुशलौ वीरौ मुमुदाते परस्परम् ।
वराहोद्धृतशब्देन तं तलेनाहनद्धरिः ॥ १४ ॥

(१४) दोनोंही युद्धविद्यामें कुशल बीर परस्पर युद्ध चातुरताको देखकर प्रसन्न हुए। जिस प्रकार सृष्टिके आरम्भ कालमें पृथ्वी उद्धारके समय बाराहजीने शब्द किया था, उसी प्रकार कल्किजीने महाशब्दसे चपत प्रहार किया।

स मूर्च्छितो नृपः कोपात्समुत्थाय च तत्क्षणात् ।
मुष्टिभ्यां वज्रकल्पाभ्यामवधीत्कल्किमोजसा ।
स कल्किस्तत्प्रहारेण पपात भुवि मूर्च्छितः ॥ १५ ॥

(१५) राजा शशिध्वज मूर्च्छित होगया । आगे उसने तत्काल ही उठकर क्रोधपूर्ण हो कल्किजीपर बल पूर्वक वज्रके समान मुष्टि प्रहार किया । कल्किजी उस प्रहारसे मूर्च्छित होकर पृथ्वीमें गिर पड़े ।

धर्म्मः कृतञ्च तं दृष्ट्वा मूर्च्छितं जगदीश्वरम् ।
समागतौ तमानेतुं कक्षे तौ जगृहे नृपः ॥ १६ ॥

(१६) जगदीश्वर कल्किजीको मूर्च्छित देखकर उनको लेजानेके निमित्त धर्म्म और सत्ययुग वहांपर आये । राजा शशिध्वजने धर्म्म और सत्ययुगको दो कक्षाओंमें लिया ।

कल्किं वक्षस्युपादाय लब्धार्तः प्रययौ गृहम् ।
युद्धेन नृपाणामन्येषां पुत्रौ दृष्ट्वा सुदुर्ज्जयौ ॥ १७ ॥

(१७) पुनः वह कल्किजीको गोदमें उठाकर कृतकृत्य हो अपने गृहकी ओर चलागया और विचारने लगा, कि अन्य कोई राजा मेरे दोनों पुत्रोंको संग्राममें पराजित नहीं कर सकेगा ।

कल्किं सुराधिपपतिं प्रधने विजित्य धर्म्मं कृतञ्च
निजकक्षयुगे निधाय । हर्षोल्लसद्धृदय उत्पुलकः
प्रमाथी गत्वा गृहं हरिगृहे ददृशे सुशान्ताम् ॥ १८ ॥

(१८) इस प्रकार राजा शशिध्वज देवताओंके स्वामी कल्किजीको संग्राममें पराजित एवं धर्म्म और सत्ययुग दोनोंको काखमें ग्रहणकर प्रफुलित हृदय और पुलकायमान शरीरसे सेना समूहको मर्दन एवं उच्छिन्नकर अपने गृहको गया । वहां पहुंचकर देखा, कि रानी सुशान्ता नारायणजीके गृहमें विराजमान हैं ।

दृष्ट्वा तस्याः सुललितमुखं वैष्णवीनाञ्च मध्ये
गायन्तीनां हरिगुणकथास्तामथ प्राह राजा ।
देवादीनां विनयवचसा शम्भले जन्मनावा

विद्यालाभं परिणयविधिं म्लेच्छपाषण्डनाशम् ॥ १९ ॥
कल्किः स्वयं हृदि समायमिहागोऽद्धा मूर्च्छिच्छ-
लेन तव सेवनीक्षणार्थम् । धर्म्मं कृतञ्च मम कक्षा-
युगे सुशान्ते ! कान्ते विलोकय समर्च्चय संविधेहि ॥२०॥

(१९-२०) उसके चारों ओर वैष्णवियां बैठी हुई नारायणजीका गुण गानकर रही हैं। सुशान्ताका सुललित मुख देखकर राजाने कहा,—जिन्होंने दीन देवताओंकी विनयवाणीसे शम्भल ग्राममें जन्म ग्रहण किया है, जिन्होंने विद्या प्राप्तकर पाषण्डी और म्लेछोंका नाश किया है, हे सुशान्ते ! वही हृदयविहारी कल्किजी तुम्हारी शक्ति देखनेके निमित्त मायाका अवलम्बन करके मूर्च्छाछलसे इस समय यहां पर आये हैं। हे कान्ते ! यह देखो धर्म्म और सत्ययुग हमारी दोनों कक्षाओंमें स्थित हैं। तुम इनकी पूजा करो।

इति नृपवचसा विनोदपूर्णा हरिकृतधर्म्मयुतं प्रणम्य नाथम्।
सह निजसखिभिर्ननर्त्त रामा हरिगुणकीर्त्तनवर्त्तना विलज्जा।

(२१) राजा शशिध्वजके ऐसे वचन सुनकर सुशान्ता अति प्रसन्न हुई। शशिध्वजके नाभिस्थलमें नारायण एवं दोनों कक्षाओंमें धर्म्म और सत्ययुग थे। रानी सुशान्ता उनको प्रणाम करके हरिनाम कीर्त्तन करने लगी। क्रमसे उसकी लज्जा दूर होगई और वह सखियोंके साथ नृत्य करने लगी।

इति श्रीसानुवादे कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे
धर्म्मकल्किकृतानामानयनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

तृतीयांशः ।

दशम-अध्याय ।

सुशान्तोवाच—जयहरेऽमराधीशसेवितं तव पदाम्बुजं
भूरिभूषणम् । कुरु ममाग्रतः साधुसत्कृतं त्यज महा
मते ! मोहमात्मनः ॥ १ ॥

(१) सुधाम्ना बोली,—"हरे जय हो ! हे महामते ! मोह आच्छन्नताको त्याग-कर अमरावीशसेवित, सुन्दर आभूषणाभूषित, साधुगण सत्कृत अपने चरणकमल हमारे सन्मुख स्थापन करो ।

तव वपुर्जगद्रूपसम्पदा विरचितं सतां मानसे स्थितम् ।
रतिपतेर्मनोमोहदायकं कुरु विचेष्टितं कामलम्पटम् ॥२॥

(२) संसारकी श्रेष्ठ रूप सम्पतिसे विरचित, साधु हृदय स्थित, तुम्हारा शरीर मदन मनको भी विमोहित करने वाला है । आप इस समय हमारी मनोकामनाको पूर्ण करें ।

तव यशो जगच्छोकनाशनं मृदुकथामृतप्रीतिदायकम् ।
स्मितसुधोक्षितं चन्द्रवन्मुखं तवकरोत्वलं लोकमङ्गलम् ॥३॥

(३) आपका यश संसारशोकको नाश करनेवाला है, चन्द्रवदन अमृतमय मीठी वाणी वर्षाकर सबको प्रसन्न करता है, मधुर मुस्कान सुधा प्रवाहित है; हे भगवान् ! तुम्हारा वदनकमल संसारका मंगल विधान करे ।

मम पतिस्स्वयं सर्वदुर्जयो यदि तवाप्रियं कर्म्मणाचरेत् ।
जहि तदात्मनः शत्रुमुद्यतं कुरु कृपां न चेदीदृगीश्वरः ॥४॥

(४) हमारे पतिको कोई भी कभी पराजित नहीं कर सका है । यदि यह किसी कार्य्यवश आपको अप्रसन्न किये हों तो इस शत्रु भावको त्यागकर कृपा कीजिये । नहीं तो लोग आपको कृपासागर परमेश्वर क्यों कहेंगे ?

महदहंयुतं पञ्चमात्रया प्रकृतिजायया निर्म्मितं वपुः ।
तव निरीक्षणाल्लीलया जगत्स्थितिलयोदयं ब्रह्मकल्पितम् ॥

(५) तुम्हारी भार्य्या प्रकृति, महतत्व अहंकारतत्व और पंचतन्मात्र आदिसे शरीर निर्माण करती हैं । तुम्हारे निरीक्षण लीलासेही इस ब्रह्म कल्पित संसारमें सृष्टि, स्थिति और प्रलय होती है ।

भूवियन्मरुद्वारितेजसां राशिभिः शरीरेन्द्रियाश्रितैः ॥
त्रिगुणया स्वया मायया विभो कुरु कृपां भवत्सेवनार्थिनाम् ॥

(६) हे देव ! क्षिति, जल, तेज, पवन एवं आकाश यह पंचभूत देह और इन्द्रियोंके आश्रय हैं । इन पंचभूत और त्रिगुणमयी अपनी मायासे अपने भक्तोंपर कृपा करो ।

तव गुणालयं नाम पावनं कलिमलापहं कीर्त्तयन्ति ये।
भवभयक्षयं तापतापिता मुहुरहो जनाः संसरन्ति नो ॥७॥

(७) हे भगवन् ! तुम्हारे नाम गुणसे कलिकालके पापसमूह दूर हो जाते हैं। अनंत गुणोंका भाण्डार भवभयभंजन आपके पवित्र नामको जो लोग संसार तापसे जर्जर होकर स्मरण करते हैं, वह जन्म बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं।

तव जन्म सतां मानवर्द्धनं निजकुलक्षयं देवपालकम्।
कृतयुगार्पकं धर्म्मपूरकं कलिकुलान्तकं शन्तनोतु मे ॥८॥

(८) तुम्हारे अवतारसे साधुओंका मान बढ़ता है, ब्राह्मणोंकी लक्ष्मी बढ़ती हैं, देवताओंका पालन होता है, सत्ययुगको पुनः अधिकार प्राप्त होता है, एवं धर्म्मकी वृद्धि और कलिकुलका संहार होता है। इस समय तुम्हारे इस अवतारसे हमारा मंगल हो।

मम गृहं पतिपुत्रनप्तृकं गजरथैर्ध्वजैश्चामरैर्धनैः।
मणिवरासनं सत्कृतिं विना तव पदाब्जयोः शोभयन्ति किम्

(९) हमारे गृहमें पति, पुत्र, पौत्र, रथ, ध्वज, चामर, ऐश्वर्य्य एवं मणिमय आसनादि सबही विद्यमान हैं परन्तु तुम्हारे चरण कमलकी पूजा विना वह सभी शोभाहीन हैं।

तव जगद्वपुः सुन्दरस्मितं मुखमनिन्दितं सुन्दरारवम्।
यदि नमे प्रियं वल्गुचेष्टिते परिकरोत्यहो मृत्युरस्त्विह ।१०।

(१०) हे जगदात्मन् ! सुन्दर मुस्कानसे शोभायमान, सर्व्वाङ्ग सुन्दर, मनोहर वाणी विभूषित, रमणीक चेष्टा सम्पन्न आपका यह मुख यदि हमारा प्रियकार्य्य न करे, तो अभी हमारी मृत्यु होवे।

हयचरभयहरकरहरशरणखरतरवरदशबलमदन।
जयहतपरभरभववरनशनशशधरशतसमरसभरवदन॥११॥

(११) तुम सबको अभयदान करते हुए अश्वारोहित हो विचरण करते हो, हे देव ! तुम्हारे तीव्रवाण प्रवाहसे बहुतसे वीर पुरुष मृतक हुए हैं, जो बलवान योद्धा संग्राममें मारे गये हैं तुम उनका प्रतिपालन करते हो, तुम्हारे रसीले मुख मण्डलपर शत शत चन्द्रमाओंकी कान्ति विराजमान है, महादेव ब्रह्माजी तुम्हारे आश्रयकी भीख चाहते हैं, हे देव ! तुम निःसन्देह सनातन पूर्ण ब्रह्म हो।

इति तस्याः सुशान्ताया गीतेन परितोषितः ।
उत्तस्थौ रणशय्यायाः कल्किर्युद्धस्थवीरवत् ॥ १२ ॥

(१२) अनन्तर कल्किजी इस प्रकार सुशान्ताके गीतसे संतुष्ट हो संग्राम स्थित वीरकी भांति रणसय्यासे उठे ।

सुशान्तां पुरतो दृष्ट्वा कृतं वामे तु दक्षिणे ।
धर्मं शशिध्वजं पश्चात्प्राहेति व्रीडितानन: ॥ १३ ॥

(१३) उन्होंने सन्मुखमें सुशान्ता, वामपार्श्वमें सत्ययुग एवं दाहिनी ओर धर्म्म और पीछे राजा शशिध्वजको देखकर लज्जासे अवनत मुख करके कहा ।

का त्वं पद्मपलाशाक्षि ! मम सेवार्थमुद्यता ।
कान्ते शशिध्वजः शूरो मम पश्चादुपस्थितः ॥ १४ ॥

(१४) हे पद्मपलाशाक्षि ! तुम कौन हो ? किस कारण हमारी सेवा करनेके लिये तैयार हुई हो ? यह महावीर शशिध्वज किस लिये हमारे पीछे आये हैं ?

हे धर्म्म ! हे कृतयुग ! कथमत्रागता वयम् ।
रणाङ्गणं विहायास्याः शत्रोरन्तःपुरे वद ॥ १५ ॥

(१५) हे धर्म्म ! हे कृतयुग ! हम लोग रणभूमि त्यागकर किस निमित्त शत्रुके अन्तःपुरमें आये ? मुझसे वर्णन करो !

शत्रुपत्न्यः कथं साधु सेवन्ते मामरिं मुदा ।
शशिध्वजः शूरमानी मूर्च्छितं हन्ति नो कथम् ॥ १६ ॥

(१६) मैं शत्रु हूं । शत्रुकी स्त्रियां किस कारण प्रसन्न हृदयसे हमारी सेवा करती हैं ? मैं मूर्च्छित हो गया था । शूरमानी शशिध्वजने किस कारणसे मेरा नाश नहीं किया ?

सुशान्तोवाच-पाताले दिवि भूमौ वा नरनागसुराऽसुराः ।
नारायणस्य ते कल्के केवा सेवां न कुर्व्वते ॥ १७ ॥

(१७) सुशान्ता बोली,—"पृथ्वीवासी, स्वर्गवासी एवं रसातलवासी–मनुष्य, देवता, असुर एवं नागमें ऐसा कौन है जो नारायण कल्किजीकी सेवा नहीं करता है ?"

यत्सेवकानां जगतां मित्राणां दर्शनादपि ।
निवर्त्तन्ते शत्रुभावस्तस्य साक्षात्कुतो रिपुः ॥ १८ ॥

(१८) जगत् जिसका सेवक है, जगत् जिसका मित्र रूप है, जिसके दर्शनसे शत्रुभाव दूर हो जाता है, उसका क्या कोई साक्षात् सम्बन्धसे शत्रु हो सकता है ?

त्वया सार्द्धं मम पतिः शत्रुभावेन संयुगे ।
यदि योग्यस्तदानेतुं किं समर्थो निजालयम् ॥ १९ ॥

(१९) हमारे स्वामी यदि शत्रुभावसे तुह्मारे साथ संग्राम करते तो क्या तुमको वह अपने स्थानमें ला सकते थे ?

तव दासो मम स्वामी अहं दासी निजा तव ।
आवयोः संप्रसादाय आगतोऽसि महाभुज ॥ २० ॥

(२०) हमारे स्वामी तुह्मारे दास हैं एवं मैं तुह्मारी दासी हूं । हे महाभुज ! मुझपर प्रसन्न होकर तुम स्वयंही यहांपर आये हो ।

धर्म्मउवाच—अहं तवैतयोर्भक्त्या नामरूपानुकीर्त्तनात् ।
कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि कलिक्षय ॥२१॥

(२१) धर्म्म बोले,—हे कलिनाशन ! यह दोनोंही जिस प्रकार आपकी भक्ति करते हैं, आपका नाम कीर्त्तन करते हैं, एवं आपकी स्तुति करते हैं, उसे देखकर,—"मैं कृतार्थ हुआ—अत्यन्त कृतार्थ हुआ ।"

कृतयुग उवाच—अधुनाहं कृतयुगं तव दासस्य दर्शनात् ।
त्वमीश्वरो जगत्पूज्यसेवकस्यास्य तेजसा ॥ २२ ॥

(२२) कृतयुगने कहा,—आज मैं आपके इस दासका दर्शनप्राप्तकर सत्ययुग नामसे गिना गया । आप भी इस सेवकके तेजसे ईश्वर और जगत्पूज्य हुए ।

शशिध्वज उवाच—दण्डयं मां दण्डय विभो योद्धृ-
त्वादुद्यतायुधम् । येन कामादिरागेणत्वय्यात्मन्यपि
वैरिता ॥ २३ ॥

(२३) शशिध्वजने कहा,—मैंने युद्ध करके आपके शरीरमें अस्त्रका आघात

किया है। आप हमारे आत्मा हैं। मैंने काम क्रोधादि रागके वशीभूत होकर आपसे शत्रुता की है।

इति कल्किर्वचस्तेषां निशम्य हसितानन: ।
त्वया जितोऽस्मीति नृपं पुन:पुनरुवाच ह ॥ २४ ॥

(२४) यह वचन सुनकर कल्किजीने मुस्कराकर कहा,—"तुमने हमको जीत लिया है।"

ततः शशिध्वजो राजा युद्धादाहूय पुत्रकान् ।
सुशान्ताया मतिं बुद्धा रमां प्रादात्सकल्कये ॥ २५ ॥

(२५) तदनन्तर राजा शशिध्वजने संग्रामस्थलसे पुत्रोंको आवाहनकर शान्ताका अभिप्राय जान कल्किजीको रमा नामक कन्या दान करदी।

तदेत्य मरुदेवापी शशिध्वजसमाहृतौ ।
विशाखयूपभूपश्च रुधिराश्वश्च संयुगात् ॥ २६ ॥
शय्याकर्णनृपेणापि भल्लाटं पुरमाययु: ।
सेनागणैरसंख्यातैः सा पुरी मर्द्दिताभवत् ॥ २७ ॥

(२६-२७) उस समय मरु, देवापि, विशाखयूपराज एवं रुधिराश्व आदि नृपतिगण राजा शशिध्वज द्वारा निमंत्रित होकर संग्रामस्थलसे शय्याकर्ण नामक राजाके साथ भल्लाट नगरमें आये। अगणित सेना समूहसे वह पुरी मर्द्दित होने लगी।

गजाश्वरथसंबाधैः पत्तिच्छत्ररथध्वजैः ।
कल्किनापि रमायाश्च विवाहोत्सवसम्पदाम् ॥ २८ ॥

(२८) अगणित हाथी, घोड़े, रथ, पयदल, छत्र और ध्वजा आदिसे कल्कि और रमाका परस्पर विवाहोत्सव पूर्ण हुआ।

द्रष्टुं समीयुस्त्वरिता हर्षोत्सवलवाहनाः ।
शंखभेरीमृदङ्गानां वादित्राणाञ्च निस्वनैः ॥ २९ ॥
नृत्यगीतविधानैश्च पुरस्त्रीकृतमङ्गलैः ।
विवाहो रमया कल्केरभूदतिसुखावहः ॥ ३० ॥

(२९-३०) सभी हर्षके निमित्त दलबलसे वह उत्सव देखनेके निमित्त आये। शंख, भेरी, मृदङ्ग प्रभृति बाजोंकी ध्वनि, नृत्य गीतादि अनुष्ठान एवं पुरस्त्रियोंके मंगलाचारसे रमा और कल्किजीका विवाह अत्यन्त सुखदायी हुआ।

नृपा नानाविधैर्भोज्यैः पूजिता विविशुः सभाम्।
ब्राह्मणाः क्षत्त्रिया वैश्याः शूद्राश्चावरजातयः ॥ ३१ ॥
विचित्रभोगाभरणाः कल्किं द्रष्टुमुपाविशन्।
तस्यां सभायां शुशुभे कल्किः कमललोचनः ॥ ३२ ॥

(३१-३२) राजा लोगोंने अनेक प्रकारके भक्ष्य भोज्य द्वारा सत्कार प्राप्तकर सभामें प्रवेश किया। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्यान्य जातिवाले विचित्र भूषण एवं अनेक प्रकारकी भोग्यवस्तु पाकर पद्मलोचन कल्किजीसे सुशोभित उस सभामें बैठे।

नक्षत्रगणमध्यस्थः पूर्णः शशधरो यथा।
रेजे राजगणाधीशो लोकान्सर्वान्विमोहयन् ॥ ३३ ॥

(३३) तारागणमें शोभायमान पूर्ण चन्द्रकी भांति राजाओंके अधिपति कल्किजी सर्वलोकको मोहित करके सुशोभित हुए।

रमापतिं कल्किमवेक्ष्य भूपः सभागतं पद्मदलायतेक्षणम्।
जामातरं भक्तियुतेन कर्म्मणा विबुध्य मध्ये निषसाद तत्र ह॥

(३४) पद्मलोचन कल्किजीने रमाका पाणिग्रहण किया। राजा शशिध्वज उनको जामातृ भावसे प्राप्त हो सभामें भक्ति सहित सुशोभित हुए।

इति श्रीसानुवादे कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे
कल्किना रमाविवाहो नाम दशमो अध्याय ॥ १० ॥

तृतीयांशः ।

एकादश-अध्याय ।

सूतउवाच ।

तत्राहुस्ते सभामध्ये वैष्णवं तं शशिध्वजम् ।
मुनिभिः कथिताशेष-भक्तिव्यासक्तविग्रहम् ॥ १ ॥
सुशान्ताञ्च कृतेनापि धर्म्मेण विधिवद्युताम् ॥ २ ॥

(१-२) सूतजी बोले,—महर्षियों द्वारा शेषकथित भक्तिपूर्णशरीरवाले, परम वैष्णव, कृतयुग धर्म्म एवं सुशान्तासे सम्मिलित राजा शशिध्वजको देखकर आगन्तुक नृपतिगण और ब्राह्मणोंने कहा ।

राजान ऊचुः—युवां नारायणास्यास्य कल्केः श्वशुरतां गतौ ।
वयं नृपा इमे लोका ऋषयो ब्राह्मणाश्च ये ॥ ३ ॥
प्रेक्ष्य भक्तिवितानं वां हरौ विस्मितमानसाः ।
पृच्छामस्त्वामियं भक्तिः क्व लब्धा परमात्मनः ॥ ४ ॥

(३-४) राजाओंने कहा,—इस समय आप साक्षात् नारायण कल्किजीके श्वसुर हुए, परन्तु हम सब राजा, ऋषि, ब्राह्मण, वैश्य एवं साधारण जन हरिमें आपकी भक्तिका विस्तार देखकर विस्मययुक्त हुए हैं और जानना चाहते हैं, कि आपको यह परमात्मा विषयक भक्ति कहांसे प्राप्त हुई है ?

कस्य वा शिक्षिता राजन् ! किंवा नैसर्गिकी तव ।
श्रोतुमिच्छामहे राजन् ! त्रिजगज्जनपावनीम् ।
कथां भागवती त्वत्तः संसाराश्रमनाशिनीम् ॥ ५ ॥

(५) हे राजन् ! यह भक्ति क्या किसीसे सीखी है ? अथवा यह आपकी स्वाभाविक भक्ति है । हे राजन् ! हमको आपसे इस भगवद्भक्तिका कारण जाननेकी इच्छा है । इसको श्रवण करके भी त्रिलोकीके लोग पवित्र होते हैं एवं संसार प्रवृत्ति विनष्ट होती है ।

शशिध्वज उवाच-स्त्रीपुंसोरावयोस्तत्तच्छृणुतामोघविक्रमाः ।
वृत्तं यज्जन्मकर्म्मादि स्मृतिं सद्भक्तिलक्षणम् ॥ ६ ॥

(६) हे अमोघ विक्रम राजागण ! स्त्री पुरुष हम दोनोंके जैसे जन्म कर्म्मादि हुए हैं और जिस प्रकार हम लोगोंको भक्तिकी स्मृति हुई है, वह श्रवण कीजिये ।

पुरा युगसहस्रान्ते गृध्रोऽहं पूतिमंसभुक् ।
गृध्रीयं मे प्रियारण्ये कृतनीडो वनस्पतौ ॥ ७ ॥

(७) सहस्र युग व्यतीत होगये होंगे, मैं पहले सड़े हुए मांसका खानेवाला गृध था एवं यह हमारी प्रिया क्रान्ता गृद्धिनी थी । हम गृध्र गृद्धिनी दोनों एक बड़े वृक्षपर घोंसला बनाकर निवास करते थे ।

चचार कामं सर्वत्र वनोपवनसंकुले ।
मृतानां पूतिमांसौघैः प्राणिनां वृत्तिकल्पकौ ॥ ८ ॥

(८) हम वन और उपवन युक्त समस्त स्थानोंमें इच्छानुसार भ्रमण किया करते थे एवं दोनोंही मृतक जीवोंके दुर्गन्धित मांससे जीवनयात्रा निर्वाह करते थे ।

एकदा लुब्धकः क्रूरो लुलोभ पिशिताशिनौ ।
आवां वीक्ष्य गृहे पुष्टं गृध्रं तत्राप्ययोजयत् ॥ ९ ॥

(९) एक समय एक क्रूर व्याधने हम दोनोंको देख पकड़नेके लिये लालायित होकर अपने पोषित गृध्रको छोड़ा ।

तं वीक्ष्य जातविस्रम्भौ क्षुधया परिपीडितौ ।
स्त्रीपुंसौ पतितौ तत्र मांसलोभितचेतसौ ॥ १० ॥

(१०) उस समय मैं क्षुधासे आतुर था । पोषित गृध्रको देख विश्वासित अंतःकरण मांसके लोभ उसके स्थानमें गिरा ।

बद्धावावां वीक्ष्य तदा हर्षादागत्य लुब्धकः ।
जग्राह कण्ठे तरसा चञ्चवाग्राघातपीडितः ॥ ११ ॥

(११) व्याधने हम दोनोंको बंधा हुआ देखकर हर्षितहृदय उस स्थानमें आकर शीघ्रता पूर्वक हमारा गला पकड़ लिया । हम भी यथाशक्ति उसको चोंचसे काटने लगे ।

आवां गृहीत्वा गण्डक्याः शिलायां सलिलान्तिके ।
मस्तिष्कं चूर्णयामास लुब्धकः पिशिताशनः ॥ १२ ॥

(१२) पुनः मांसलोभी व्याधने हम दोनोंको पकड़ गंगाजलके निकट गंडकी शिलापर पटककर दोनोंके शिर चूर्ण कर डाले ।

चक्राङ्कितशिलागङ्गामरणादपि तत्क्षणात् ।
ज्योतिर्मयविमानेन सद्यो भूत्वा चतुर्भुजौ ॥ १३ ॥
प्राप्तौ वैकुण्ठनिलयं सर्वलोकनमस्कृतम् ।
तत्र स्थित्वा युगशतं ब्रह्मणो लोकमागतौ ॥ १४ ॥

(१३-१४) गंगातट और चक्रांकित शिलापर मृत्यु होनेके कारण हम तत्काल चतुर्भुज मूर्त्ति धारणकर प्रकाशमान विमानमें सवार हो स्वर्गलोक सुपूजित वैकुण्ठ धाममें गये । उस स्थानमें शतयुग तक वास करके ब्रह्मलोकमें गये ।

ब्रह्मलोके पञ्चशतं युगानामुपभुज्य वै ।
देवलोके कालवशाद्गतं युगचतुःशतम् ॥ १५ ॥

ब्रह्मलोकमें पांच शतयुगतक सुख भोगकर अन्तको कालके वशीभूत हुए । आगे ४०० युगतक देवलोकमें स्वर्गीय सुख सम्भोग किया ।

ततो भुवि नृपास्तांवद्वद्धसूनुरहं स्मरन् ।
हरेनुग्रहं लोके शालग्रामशिलाश्रमम् ॥ १६ ॥

(१६) हे राजन् ! तदनन्तर हमने इस मर्त्यलोकमें जन्म ग्रहण किया है, परन्तु शालिग्राम शिलाका स्थान और नारायणजीका अनुग्रह यह समस्त हमारी स्मृतिमें जाग रहा है ।

जातिस्मरत्वं गण्डक्याः किं तस्याः कथयाम्यहम् ।
यज्जलस्पर्शमात्रेण महात्म्यं महदद्भुतम् ॥ १८ ॥

(१७) गण्डकी नदीके तटपर मृत्यु प्राप्त होनेसे जाति स्मरणकी अद्भुत शक्ति उत्पन्न होती है । उसके जलको स्पर्श करतेही एक अपूर्व माहात्म्य होता है ।

चक्रांकितशिलास्पर्शमरणस्येदृशं फलम् ।

न जाने वासुदेवस्य सेवया किं भविष्यति ॥ १८ ॥

(१८) चक्राङ्कित शिलाको स्पर्श करनेसे मृत्युके पश्चात् जब ऐसा फल मिलता है, तब भगवान् वासुदेवकी सेवा करनेका फल किसी रीतिसे नहीं कहा जा सकता ।

इत्यावांहरिपूजासु हर्षविह्वलचेतसौ ।
नृत्यन्तावगायन्तौ विलुठन्तौ स्थिताविह ॥ १९ ॥

(१९) यही विचारकर हम कभी नृत्य करते हैं, कभी नारायणजीकी उपासनामें एकाग्र चित्तसे आसक्त रहते हैं, कभी उनका गुण गान करते हैं एवं कभी भक्तिभावसे विलुण्ठित होते हैं । हम इसी प्रकारसे यहांपर समय व्यतीत करते आते हैं ।

कल्केर्नारायणांशस्य अवतारः कलिक्षयः ।
पुरा विदितवीर्य्यस्य पृष्टो ब्रह्ममुखाच्छ्रुतः ॥ २० ॥

(२०) हमने ब्रह्माजीके मुखसे प्रथमही सुनकर जान लिया था, कि कलिका नाश करनेके अर्थ नारायण अंशरूपसे कल्किजी अवतार लेंगे । हम उनके वीर्य्यको भली भांति जानते हैं ।

इति राजसभायां सः श्रावयित्वा निजाः कथाः ।
ददौ गजानामयुतम श्वानां लक्षमादरात् ॥ २१ ॥
रथानां षट्सहस्रन्तु ददौ पूर्णस्य भक्तितः ।
दासीनां युवतीनाञ्च रमानाथाय षट्शतम् ॥ २२ ॥
रत्नानि च महार्घाणि दत्त्वा राजा शशिध्वजः ।
मेने कृतार्थमात्मानं स्वजनैर्बान्धवैः सह ॥ २३ ॥

(२१-२२-२३) राजा शशिध्वजने इस प्रकार सभामें अपना वृत्तान्त वर्णनकर; कल्किजीको भक्तिपूर्ण हृदयसे आदर एवं दश हजार हाथी, एक लाख घोड़े, छः हजार रथ, छः सौ युवतीदासी और अनेक बहुमूल्य रत्न देकर बन्धु बान्धवोंके साथ अपनेको कृतार्थ समझा ।

सभासद इतिश्रुत्वा पूर्वजन्मोदिताः कथाः ।

विस्मयाविष्टमनसः पूर्णं तं मेनिरे नृपम् ॥ २४ ॥

(२४) इस प्रकार राजाके पूर्व जन्मका वृत्तान्त सुनकर सभासदोंने मनमें विस्मित हो उनको पूर्ण जाना।

कल्किं स्तुवन्तो ध्यायन्तो प्रशंसन्तो जगज्जनाः।
पुनस्तमाहूराजानं लक्षणं भक्तिभक्तयोः ॥ २५ ॥

(२५) अनन्तर वहांके सब लोग कल्किजीकी स्तुति और ध्यान करने लगे। पुनः उन सबोंने राजा शशिध्वजसे अन्यान्य भक्तोंका लक्षण पूछना आरम्भ किया।

नृपा ऊचुः—भक्तिकाभ्यद्भगवतः को वा भक्तो विधानवित्।
किं करोति किमश्नाति क्वा वसति वक्ति किम् ॥ २६ ॥

(२६) राजाओंने कहा,—"भगवद्भक्ति किसका नाम है? विधान जाननेवाला भक्त किसको कहा जाता है? यह भक्त क्या कार्य्य करता है? क्या आहार है? कहां रहता है एवं किस प्रकारसे वार्त्तालाप करता है?"

एतान्वर्णय राजेन्द्र! सर्वं त्वं वेत्सि सादरात्।
जातिस्मरत्वात्कृष्णस्य जगतां पावनेच्छया ॥ २७ ॥
इति तेषां वचः श्रुत्वा प्रफुल्लवदनो नृपः।
साधुवादैः समामन्त्र्य तानाह ब्रह्मणोदितम् ॥ २८ ॥

(२७-२८) हे राजेन्द्र आप सब जानते हैं, इस लिये आप आदर पूर्वक समस्त वर्णन करें। उनके यह बचन सुनकर राजा प्रफुल्ल वदन हुए एवं धन्यवाद देकर जाति स्मरताके हेतु कृष्ण नामसे जगत्‌को पवित्र करनेके अभिप्रायसे ब्रह्माजीसे सुने हुए साधु चरित्र कहना आरम्भ किया।

शशिध्वज उवाच—पुरा ब्रह्मसभामध्ये महर्षिगणसंकुले।
सनको नारदं प्राह भवद्भिर्यास्त्विहोदिताः ॥ २९ ॥

(२९) राजा शशिध्वजने कहा,—प्राचीन कालमें ब्रह्मसभाके बीच महर्षिगण बैठे थे। इसी समय यह कथा सनकादिजीने नारदजीसे पूछी थी, उसीको आप लोग मुझसे पूंछते हैं।

तेषामनुग्रहेणाहं तत्रोषित्वा श्रुताः कथाः।

यास्ताः संकथयामीह शृणुध्वं पापनाशनाः ॥ ३० ॥

(३०) उस समय मैं भी उस स्थानमें उपस्थित था । अतएव मैंने उनके अनुग्रहसे उस समस्त वाक्यको श्रवण किया था । हे पापनाशक सभासदो ! मैंने जो जो बातें सुनी थी, वह इस समय कहता हूं,—"श्रवण कीजिये ।"

सनक उवाच—का भक्तिः संसृतिहरा हरौ लोकनमस्कृता ।
तामादौ वर्णय मुने नारदावहिता वयम् ॥ ३१ ॥

(३१) सनकने पूंछा,—हे महर्षि नारद ! हरिमें किस प्रकारकी भक्ति करनेसे जन्म ग्रहण नहीं करना पड़ता एवं किस प्रकारकी भक्ति प्रसंशनीय है ? सो आप प्रथम वर्णन करें । हम सावधानहृदयसे श्रवण करते हैं ।

नारद उवाच—मनःषष्ठानीन्द्रियाणि संयम्य परया धिया ।
गुरावपि न्यसेद्देहं लोकतन्त्रविचक्षणः ॥ ३२ ॥

(३२) नारदजीने कहा,—लोकतंत्रका जाननेवाला चतुरसाधक उत्तमबुद्धिसे नेत्र, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वचा इन पंच ज्ञानेन्द्रिय और मनको रोककर परम ज्ञानका आश्रयले गुरूके चरणोंमें देहसमर्पण करे ।

गुरौ प्रसन्ने भगवान्प्रसीदति हरिः स्वयम् ।
प्रणवाग्निप्रियामध्ये मवर्णं तन्निदेशतः ॥ ३३ ॥
स्मरेदनन्यया बुध्या देशिकः सुसमाहितः ।
पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः स्नानवासोविभूषणैः ॥ ३४ ॥
पूजयित्वा वासुदेवपादपद्मं समाहितः ।
सर्वाङ्गसुन्दरं रम्यं स्मरेद्धृत्पद्ममध्यगम् ॥ ३५ ॥

(३३-३४-३५) गुरूदेव प्रसन्न होनेपर स्वयं हरि भगवान् भी प्रसन्न हो जाते हैं । शिष्यको चाहिये कि प्रणवाग्नि प्रियाके बीचमें "ॐ" वर्णको अनन्य हृदयसे स्मरण करते हुए सावधान वा पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय आदि एवं स्नानीय वस्त्रभूषणोंसे युक्त हो एकाग्र चित्तसे नारायणजीके कमलचरणकी पूजा करे । अनन्तर हृदय कमलके बीचमें विराजमान रमणीय, सर्व्वाङ्ग सुन्दरनारायणजीकी चिन्तना करे ।

एवं ध्यात्वा वाक्यमनोबुद्धीन्द्रियगणैः सह ।

आत्मानमर्पयेद्विद्वान्हरावेकान्तभाववित् ॥ ३६ ॥

(३६) इस प्रकारसे ध्यान करके ज्ञानी भावुक वाक्य, मन, बुद्धि एवं इन्द्रियोंके सहित आत्माको नारायणमें समर्पण करे ।

अङ्गानि देवास्त्वेषान्तु नामानि विदितान्युत ।
विष्णोः कल्केरनन्तस्य तान्येवान्यन्न विद्यते ॥ ३७ ॥

(३७) देवमूर्त्ति कल्किमूर्त्ति अनन्त विष्णुजीके अंगरूप हैं; जिन सब नामोंको आप जानते हैं, वह उनके सिवाय और कुछ नहीं हैं ।

सेव्यः कृष्णः सेवकोऽहमन्ये तस्यात्ममूर्त्तयः ।
अविद्योपाधयो ज्ञानद्वदन्ति प्रभावदयः ॥ ३८ ॥

(३८) कृष्णजी सेव्य हैं, मैं सेवक हूं और समस्त जीव कृष्णजीकी मूर्त्ति हैं। ज्ञानीगण कहते हैं, कि अविद्योपाधिके वशीभूत होकरही इन सबकी उत्पत्ति होती है

भक्तस्यापि हरौ द्वैतं सेव्यसेवकवत्तदा ।
नान्यद्विना तमित्येव क्वच किञ्चन विद्यते ॥ ३९ ॥

(३९) भक्तोंके लिये भी सेव्य सेवकरूप द्वैतभाव उदय होता है, परिणाम यह है कि नारायणके अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु कहीं भी नहीं है ।

भक्तः स्मरति तं विष्णुं तन्नामानि च गायति ।
तत्कर्म्माणि करोत्येव तदानन्दसुखोदयः ॥ ४० ॥

(४०) भक्त उन विष्णुजीको स्मरण करता है; उनके नामका गान करता है, एवं उनके ही निमित्त समस्त कर्म्म किया करता है इसीलिये उसको आनन्द और सुखका उदय होता है ।

नृत्यत्युद्धतवद्रौति हसति प्रैति तन्मनाः ।
विलुंठत्यात्मविस्मृत्या न वेत्ति कियदन्तरम् ॥ ४१ ॥

(४१) भक्त विह्वल होकर नृत्य करता है, रुदन करता है, हंसता है, तन्मय होकर गमन करता है; अपनेको भूलकर विलुण्ठित होता है एवं कहीं भी किसी भेदको नहीं देखता ।

एवंविधा भगवतो भक्तिरव्यभिचारिणी ।

पुनाति सहसा लोकान्सदेवासुरमानुषान् ॥ ४२ ॥

(४२) यही भगवद्विषयिनी, अव्यभिचारिणी भक्ति है; इसी भक्तिके बलसे देव दानव गन्धर्व एवं मानवादि समस्त लोग तत्काल पवित्र हो जाते हैं।

भक्तिः सा प्रकृतिर्नित्या ब्रह्मसम्पत्प्रकाशिता।
शिवविष्णुब्रह्मरूपा वेदाद्यानां वरापि वा ॥ ४३ ॥

(४३) जो नित्या प्रकृति है, जो ब्रह्म सम्पत्ति है, वही भक्तिके रूपसे प्रकाशित हुई है। यह भक्तिही वेदादिके बीचमें श्रेष्ठ है एवं यह भक्तिही विष्णु, ब्रह्मा और शिव स्वरूपा है।

भक्ताः सत्वगुणाध्यासाद्रजसेन्द्रियलालसाः।
तमसा घोरसंकल्पा भजन्ति द्वैतदृग्जनाः ॥ ४४ ॥

(४४) द्वैतज्ञानियोंमेंसे जिनमें सत्वगुणका अध्यास होता है वह इन्द्रिय व्यापारमें लालसा करते हैं एवं जिनमें तमोगुणका आगमन होता है, वह घोर कार्य्यमें रत रहते हैं।

सत्वान्निर्गुणतामेति रजसा विषयस्पृहा।
तमसा नरकं यान्ति संसाराद्वैतधर्म्मिणि ॥ ४५ ॥

(४५) संसारमें जो लोग द्वैतज्ञान सम्पन्न हैं उनमें सत्वगुणका आगमन होनेपर निर्गुणता प्राप्त होती है, रजोगुणका आगमन होनेपर विषयभोगमें स्पृहा होती है एवं तमोगुणकी आधिक्यता होनेपर नरकगामी होते हैं।

उच्छिष्टमवशिष्टं वा पथ्यं पूतमभीप्सितम्।
भक्तानां भोजनं विष्णोर्नैवेद्यं सात्विकं मतम् ॥ ४६ ॥

(४६) विष्णुजीका उच्छिष्ट पवित्रपथ्य एवं इच्छा किया हुआ नैवेद्य सात्विक कहा जाता है; यह सात्विक आहारही भक्तोंको भोजन करना चाहिये।

इन्द्रियप्रीतिजननं शुक्रशोणितवर्द्धनम्।
भोजनं राजसं शुद्धमायुरारोग्यवर्द्धनम् ॥ ४७ ॥

अव्यभिचारिणी भक्ति। अधिक समय पर्यन्त सत्कारादिके साथ सेवाको अव्यभिचारिणी भक्ति कहते हैं।

(४७) जो इन्द्रियोंको प्रसन्न करने वाला है, जिससे वीर्य्य और रुधिर बढ़ता है, जिससे परमायुकी वृद्धि होती है एवं जिससे शरीर आरोग्य रहता है ऐसे शुद्ध भोजनको राजस भोजन कहते हैं ।

अत:परं तामसानां कट्वम्लोष्णविदाहिकम् ।
पूतिपर्य्युषितं ज्ञेयं भोजनं तामसप्रियम् ॥ ४८ ॥

(४८) अब तामस आहार कहते हैं,-"कडु, खट्टा, दुग्ध, दुर्गन्ध और बासी आहार तामसी मनुष्योंको प्यारा है ।

सात्विकानां वने वासो ग्रामे वासस्तु राजसः ।
तामसं द्यूतमद्यादिसदनं परिकीर्त्तितम् ॥ ४९ ॥

(४९) सत्वगुणका अवलम्बन करनेवाले वनमें, रजोगुणका अवलम्बन करनेवाले ग्राममें एवं तमोगुणका अवलम्बन करनेवाले जुएघर अथवा सुरालयमें वास करते हैं ।

न दाता स हरिः किञ्चित्सवेकस्तु न याचकः ।
तथापि परमा प्रीतिस्तयोः किमिति शाश्वती ॥ ५० ॥

(५०) नारायणजी स्वयं हाथ उठाकर किसीको कुछ भी नहीं देते हैं, सेवक भी उनसे कुछ नहीं मांगता है, परन्तु तौ भी उनकी परस्पर परम प्रीति सर्वदा दिखाई देती है, यह असाधारण और अद्भुत बात है ।

इत्येतद्भगवत ईश्वरस्य विष्णोर्गुणकथनं सनको विबुध्य भक्त्या
सविनयवचनैः सुरर्षिवर्य्यं परिणुत्वेन्द्रपुरं जगाम शुद्धः ॥ ५१ ॥

(५१) शुद्ध हृदयवाले महर्षि सनक भक्ति सहित देवर्षि नारदजीसे साक्षात् परमेश्वर भगवान् नारायणजीके गुण श्रवण करके विनययुक्त वचनोंसे देवर्षि श्रेष्ठ नारदजीकी स्तुति एवं प्रणाम कर इन्द्रलोकको पधारे ।

इति श्रीसानुवादे कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे नृपगणशशिध्वजसंवादे जातिस्मरत्वकथनं नाम एकादश अध्याय ॥ १८ ॥

तृतीयांशः ।

द्वादश-अध्याय ।

शशिध्वज उवाच—एतद्वः कथितं भूपाः कथनीयोरुकर्म्मणः ।
कथा भक्तस्य भक्तेश्च किमन्यत्कथयाम्यहम् ॥ १ ॥

(१) राजा शशिध्वजने कहा,—"हे भूपालगण! जिनका असाधारणकर्म्म कीर्त्तन करना चाहिये ऐसे भक्त और भक्तिका माहात्म्य मैंने कहा। अब क्या कहनेकी आज्ञा है?"

भूपा ऊचुः—त्वं राजन्वैष्णवश्रेष्ठः सर्व्वसत्वहिते रतः ।
तवावेशः कथं युद्धरङ्गे हिंसादिकर्म्मणि ॥ २ ॥

(२) राजाओंने कहा,—"हे राजन्! आप परम वैष्णव हैं, आप समस्त प्राणियोंके कल्याण साधनमें रत हैं, फिर किस कारणसे आप हिंसादि दोष दूषित युद्ध कार्य्यमें प्रवृत्त हुए?"

प्रायशः साधवो लोके जीवानां हितकारिणः ।
प्राणबुद्धिधनैर्वाग्भिः सर्व्वेषां विषयात्मनाम् ॥ ३ ॥

(३) हमने देखा है कि साधु लोग बहुधा प्राण, बुद्धि, धन एवं वाक्य द्वारा विषयासक्त जीवोंका हितानुष्ठान किया करते हैं।

शशिध्वज उवाच-द्वैतप्रकाशिनी या तु प्रकृतिः कामरूपिणी
सा सूते त्रिजगत्कृत्स्नं वेदांश्च त्रिगुणात्मिका ॥ ४ ॥

(४) राजा शशिध्वजने कहा,—"सत, रज, तम यह तीन गुणवाली प्रकृतिसेही द्वैतभाव प्रकट होता है। यह प्रकृतिही काम रूपिणी है एवं इस प्रकृतिसेही समस्त वेद और त्रिलोक उत्पन्न हुए हैं।

ते वेदास्त्रिजगद्धर्म्मशासना धर्म्मनाशनाः ।
भक्तिप्रवर्त्तका लोके कामिनां विषयैषिणाम् ॥ ५ ॥

(५) वेद त्रिजगत्में धर्म्म शासन और अधर्म्मका नाश करके विषयाभिलाषी कामी लोगोंमें भक्ति उत्पन्न करते हैं।

वात्स्यायनादिमुनयो मनवो वेदपारगाः।
वहन्ति बलिमीशस्य वेदवाक्यानुशासिताः॥ ६॥

(६) वेदके जाननेवाले वात्स्यायन आदि महर्षि एवं मानवगण वेद वाक्यके अनुगामी होकर उन भगवान् ईश्वरके लिये बलिदान करते हैं।

वयं तदनुगाः कर्म्म धर्म्म निष्टा रणप्रियाः।
जिघांसन्तं जिघांसामो वेदार्थकृतनिश्चयाः॥ ७॥

(७) हम लोग उनके अनुवर्त्ती हो धर्म्म कर्म्ममें रत होते हुए संग्राम करते हैं। वेदके तात्पर्य्यानुसार संग्रामके मध्य हम आततायीके प्राणोंका नाश करते हैं।

अवन्ध्यस्य वधे यावांस्तावान्वध्यस्य रक्षणे।
इत्याह भगवान्व्यासः सर्व्ववेदार्थतत्परः॥ ८॥

(८) सर्व वेदार्थ विशारद भगवान् वेदव्यासजीने कहा है कि अवध्यका वध करनेसे जैसा पाप होता है मारने योग्य जीवको न मारनेसे भी वैसाही पाप होता है।

प्रायश्चित्तं न तत्रास्ति तत्राधर्म्मः प्रवर्तते।
अतोऽत्र वाहिनीं हत्वा भवतां युधि दुर्जयाम्॥ ९॥
धर्म्मं कृतञ्च कल्किन्तु समानीयागता वयम्।
एषा भक्तिर्मम मता तवाभिप्रेतमीरय॥ १०॥

(९-१०) ऐसा आचरण न करनेसे इतना अधर्म्म होता है कि जिसका प्रायश्चित नहीं है। इसी कारणसे मैं संग्रामस्थलमें अपनी अजीत सेना समूहका संहारकर धर्म्म, सत्ययुग और कल्किजीको ले आया हूं। मेरे विचारमें यही यथार्थ भक्ति है। अब इस विषयमें आप अपनी अभिलाष प्रकट कीजिये।

अहं तदनुवक्ष्यामि वेदवाक्यानुसारतः।
यदि विष्णुः स सर्व्वत्र तदा कं हन्ति को हतः॥ ११॥

(११) तदतिरिक्त मैं वेद वाक्यके अनुसार प्रमाण दूंगा। विष्णुजी सर्वव्यापी हैं, यदि यह सिद्धान्त निश्चय है तो कौन नाश करता है और किसका नाश होता है?

हन्ता विष्णुर्हतो विष्णुर्वधः कस्यास्ति तत्र चेत्।

युद्धयज्ञादिषु वधे न वधो वेदशासनात् ॥ १२ ॥

(१२) वधकर्त्ता विष्णु और हत होनेवाले भी विष्णु हैं, फिर किसका वध होगा? विशेष करके वेदकी आज्ञा है, कि यज्ञ और युद्धका वध वधमें नहीं गिना जाता है।

इति गायन्ति मुनयो मनवश्च चतुर्दश ।
इत्थं युद्धैश्च यज्ञैश्च भजामो विष्णुमीश्वरम् ॥ १३ ॥

(१३) महर्षिगण एवं चौदह मनु ऐसाही कीर्त्तन करते हैं। हम भी इसी प्रकार यज्ञ और युद्धसे विष्णुजीकी पूजा किया करते हैं।

अतो भागवतीं मायामाश्रित्य विधिना यजन् ।
सेव्यसेवकभावेन सुखी भवति नान्यथा ॥ १४ ॥

(१४) इस प्रकार भगवती मायाका अवलम्बनकर विधि विधान द्वारासेव्य सेवकभावसे पूजा करके साधक सुखी होता है अन्यथा किसी प्रकारसे भी सुखी नहीं हो सकता।

भूपा ऊचुः—निमेर्भूपस्य भूपाल! गुरोः शापान्मृतस्य च ।
तादृशे भोगायतने विरागः कथमुच्यताम् ॥ १५ ॥

(१५) राजाओंने कहा,—"हे राजन्! राजा निमिने गुरु वशिष्ठजीके शापसे शरीर त्याग किया था, परन्तु इस प्रकारके भोगायतन शरीरमें क्योंकर विराग हुआ? जब यज्ञके अन्तमें देवताओंने प्रसन्न हो उसको बचाकर देहमें प्रवेश करनेकी अनुमति दी तब वह किस कारणसे त्यागी हुई देहमें प्रवेश करनेके सम्मत न हुए?'

शिष्यशापाद्वशिष्ठस्य देहावाप्तिमृतस्य च ।
श्रूयते किल मुक्तानां जन्म भक्तविमुक्तता ॥ १६ ॥

(१६) सुना है, कि महर्षि वशिष्ठजीने शिष्यके शापसे देह त्यागकर पुनः देहको ग्रहण किया। भक्तको तो मुक्ति प्राप्त होती है, अतएव मुक्तजनका पुनः किस प्रकारसे जन्म हो सकता है?

अतो भागवती माया दुर्बोध्याविजितात्मनाम् ।
विमोहयति संसारे नानात्वादिन्द्रजालवत् ॥ १७ ॥

(१७) ऐसे स्थानमें भगवानकी मायाका वर्णन करनेमें ज्ञानी लोग भी असमर्थ हैं। यह माया इन्द्रजालकी भांति संसारमें विस्तारित होकर प्राणियोंको मोहित करती है।

इति तेषां वचो भूयः श्रुत्वा राजा शशिध्वजः ।
प्रोवाच वदतां श्रेष्ठो भक्तिप्रवणया धिया ॥ १८ ॥

(१८) वचन बोलनेमें श्रेष्ठ राजा शशिध्वजने उनके यह वाक्य सुनकर भक्ति सहित हृदयमें प्रणाम करके पुनः कहना आरम्भ किया।

शशिध्वज उवाच—बहूनां जन्मनामन्ते तीर्थक्षेत्रादियोगतः
दैवाद्भवेत्साधुसंगस्तस्मादीश्वरदर्शनम् ॥ १९ ॥

(१९) शशिध्वजने कहा,—"तीर्थ, क्षेत्रादि दर्शनफलसे अनेक जन्मोंके अनन्तर दैव कृपा द्वारा साधु संग प्राप्त होता है; इस साधु संगसेही जीव ईश्वर दर्शनको प्राप्त होता है।

ततः सालोक्यतामप्राप्य भजन्त्याहृतचेतसः ।
भुक्त्वा भोगाननुपमान्भक्तो भवति संसृतौ ॥ २० ॥

(२०) पुनः विष्णु लोकमें जाकर आनन्दपूर्ण हृदयसे भगवद्भजन करता है। इस प्रकारसे जीव अनुपम भोग्यवस्तु भोग करके संसारमें भक्त होता है।

रजोजुषः कर्म्मपराः हरिपूजापराः सदा ।
तन्नामानि प्रगायन्ति तद्रुपस्मरणोत्सुकाः ॥ २१ ॥

(२१) रजोगुणावलम्बी सर्व्वदा कर्म्म द्वारा नारायणजीकी उपासना करते हैं, एवं उनका नाम गान और रूप स्मरण करनेको उन्मुख रहते हैं।

अवतारानुकरणपर्वव्रतमहोत्सवाः ।
भगवद्भक्तिपूजाढ्याः परमानन्दसंप्लुताः ॥ २२ ॥

(२२) वह लोग भगवानके अवतारका अनुकरण करते हैं, एकादशी आदि पर्वकालमें व्रत करते हैं एवं भगवदूमहोत्सव, भगवद्भक्ति, भगवदपूजा आदि कार्य्यों सेही उनके हृदयमें आनन्दका प्रवाह प्रवाहित होता है।

अतो मोक्षं न वांछन्ति हृष्टभक्तिफलोदयाः ।

मुक्त्वालभन्ते जन्मानि हरिभावप्रकाशकाः ॥ २३ ॥

(२३) वे समस्त भक्तजन भोगफलको प्रत्यक्ष उदय पाकर मोक्षकी प्रार्थना नहीं करते स्वर्ग भोग करनेके अनन्तर जन्म ग्रहण करके हरिभाव प्रगट किया करते हैं।

हरिरूपाः क्षेत्रतीर्थपावना धर्म्मतत्पराः।
सारासारविदः सेव्यसेवका द्वैतविग्रहाः ॥ २४ ॥

(२४) भक्त जन नारायणकेही रूप हैं। वे समस्त क्षेत्र और तीर्थोंको पवित्र करते हैं, धर्म्मानुष्ठानमें तत्पर रहते हैं, समस्त सार असारको जानते हैं एवं सेव्य सेवक इन दो मूर्त्तियोंमें निवास करते हैं।

यथावतारः कृष्णस्य तथा तत्सेविनामिह।
एवं निमेर्निमिषता लीला भक्तस्य लोचने ॥ २५ ॥

(२५) जैसे श्रीकृष्णजीने अवतार लिया था· वैसेही उनके सेवक भी समय समय-पर अवतार लिया करते हैं। इसी कारणसे निमि, भक्तोंके नेत्रोंपर निमेष रूपसे स्थिति करते हैं। यह भी केवल भगवानकी लीला है।

मुक्तस्यापि वशिष्ठस्य शरीरभजनादरः।
एतद्वः कथितं भूपा माहात्म्यं भक्तिभक्तयोः ॥ २६ ॥

(२६) वशिष्ठजीने मुक्त होनेपर भी जो शरीर ग्रहण किया था, उसका कारण यही है। हे नृपगण ! मैंने आपसे यह भक्ति और भक्तका माहात्म्य कहा।

सद्यः पापहरं पुंसां हरिभक्तिविवर्द्धनम्।
सर्व्वेन्द्रियस्थदेवानामानन्दसुखसञ्चयम्।
कामरागादिदोषघ्नं मायामोहनिवारणम् ॥ २७ ॥

(२७) इसको श्रवण करनेसे मनुष्यके समस्त पाप तत्काल दूर हो जाते हैं, हरि भक्तिकी वृद्धि होती है, इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवतागणको आनन्द प्राप्त होता है एवं काम रागादि समस्त दोष दूर होकर माया मोह निवारण होता है।

नानाशास्त्रपुराणवेदविमलव्याख्यामृताम्भोनिधिं
संमथ्यातिचिरं त्रिलोकमुनयो व्यासादयो भावुकाः।

कृष्णे भावमनन्यमेवममलं हैयङ्गवीनं नवं
लब्ध्वा संमृतिनाशनं त्रिभुवने श्रीकृष्णतुल्यायते ॥ २८ ॥

(२८) त्रिलोकीका विचार करनेवाले व्यासादि भावुक मुनियोंने वेद पुराणादि अनेक प्रकारके शुद्ध शास्त्रीय व्याख्यारूप अमृतसारको अनेक कालतक मथनकर यह परम पवित्र असाधारण कृष्ण प्रीति रूप हैयङ्गवीन प्राप्त किया था। इससे भव बन्धन टूट जाता है। व्यासादि मुनियोंको ऐसा फल प्राप्त करते देखकर लोगोंने भगवान श्री कृष्णजीके साथ उनकी तुलनाकी है।

इति श्रीकल्किपुराणे सानुवादेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे
भक्तिभक्तमाहात्म्यं नाम द्वादश अध्याय ॥ १२ ॥

तृतीयांशः ।

त्रयोदश-अध्याय ।

सूतउवाच—इति भूपः सभायां स कथयित्वा निजाः कथाः ।
शशिध्वजः प्रीतमनाः प्राह कल्किं कृताञ्जलिः ॥ १ ॥

(१) सूतजी बोले,—राजा शशिध्वज प्रसन्न हृदयसे सभामें स्थित हुए मनुष्योंके सन्मुख अपना वृत्तान्त प्रकटकर हाथ जोड़ कल्किजीसे कहने लगे।

शशिध्वज उवाच—त्वंहि नाथ त्रिलोकेश एतेभुपास्त्वदाश्रयाः
मां तथा विद्धि राजानं त्वन्निदेशकरं हरे ॥ २ ॥

(२) राजा शशिध्वजने कहा,—"हे हरे! तुम त्रिलोकीके नाथ हो! वे समस्त राजा तुम्हारे आश्रय हैं। इन राजाओंको एवं मुझको अपनी आज्ञा प्रतिपालन करनेमें उद्यत जानो।"

तपस्तप्तुं यामि कामं हरिद्वारं मुनिप्रियम् ।
एते मत्पुत्रपौत्राश्च पालनीयास्त्वदाश्रयाः ॥ ३ ॥

हैयङ्गवीन। तत्काल दुहे हुए दूधसे मक्खन निकालकर जो घी तय्यार होता है उसे हैयङ्गवीन कहते हैं। कोई कोई मक्खनको भी कहते हैं।

(३) अब मैं मुनिप्रिय हरिद्वारमें तप करनेके निमित्त जाता हूं। यह मेरे बेटे पोते सब आपहीके आश्रित हैं एवं आपही इनका प्रतिपालन कीजियेगा।

ममापि कामं ज़ानासि पुरा जाम्बवतो यथा।
निधनं द्विविदस्यापि तदा सर्वं सुरेश्वर॥ ४॥

(४) हे सुरनाथ! मेरा जो अभिप्राय है सो तुम जानतेही हो, आपने अपने पूर्व जन्ममें जाम्बवान और द्विविद नामक बन्दरोंका जो नाश किया था सो भी आपको स्मरणही है।

इत्युक्त्वा गन्तुमुद्युक्तं भार्यया सहितं नृपम्।
लज्जयाधोमुखं कल्किं प्राहुर्भूपाः किमित्युत॥ ५॥

(५) राजा शशिध्वज यह कहकर भार्य्याके सहित गमन करनेको उद्यत हुए और कल्किजीने लज्जासे अपना मुख अवनत कर लिया। राजाओंने इसका कारण जाननेकी अभिलाषासे कहा।

हे नाथ किमनेनोक्तं यच्छ्रुत्वा त्वमधोमुखः।
कथं तद्ब्रूहि कामं नः किं वा नः शाधि संशयात्॥६॥

(६) हे नाथ! राजा शशिध्वजने क्या वाक्य कहा और आपने किस लिये उसे लज्जावनत मुख करके सुना? उसे वर्णन करके हमारा संशय दूर कीजिये।

कल्किरुवाच—अमुं पृच्छत वो भूपा युष्माकं संशयच्छिदम्।
शशिध्वजं महाप्राज्ञं मद्भक्तिकृतनिश्चयम्॥ ७॥

(७) कल्किजीने कहा,—हे राजागण! आपलोग राजा शशिध्वजसेही इसका कारण पूछें, वह आप लोगोंका संशय दूर करेंगे। राजा शशिध्वज उत्तम ज्ञानी हैं और मुझमें इनकी घनिष्ठ भक्ति है।

इति कल्केर्वचः श्रुत्वा ते भूपाः प्रोक्तकारिणः।
राजानं तं पुनः प्राहुः संशयापन्नमानसाः॥ ८॥

(८) कल्किजीके यह वचन सुनकर राजाओंने उनके कथनानुसार संशययुक्त हृदयहो राजा शशिध्वजसे पुनः कहा।

नृपा ऊचुः—किंत्वया कथितं राजञ्छशिध्वज महामते।

कथं कल्किस्तद्वदिदं श्रुत्वैवाभूदधोमुखः ॥ ९ ॥

(९) राजा बोले,—हे शशिध्वज ! आप महामतिमान् राजा हैं। आपने इस समय क्या कहा एवं आपके बचनको सुनकर कल्किजीने किस कारणसे मुख नीचा कर लिया ?

शशिध्वज उवाच—पुरा रामावतारेण लक्ष्मणादिन्द्रजिद्वधम्।
लक्षञ्चालक्ष्य द्विविदो राक्षसत्वात्सदारुणात् ॥ १० ॥

(१०) शशिध्वज बोले,—प्रथम जब रामचन्द्रजीने अवतार लिया था, तब लक्ष्मणजीने इन्द्रजितका वध किया इस कारण दारुण राक्षसभावसे इन्द्रजितकी मुक्ति हुई।

अग्न्यागारे ब्रह्मवीरवधेनैकाहिकोज्वरः ।
मोक्ष्मणस्य शरीरेण प्रविष्टो मोहकारकः ॥ ११ ॥

(११) अग्निशालामें ब्राह्मणबध करनेसे ऐकाहिक ज्वर लक्ष्मणजीके शरीरमें प्रवेशकर गया इस लिये लक्ष्मणजीको मोहादि उपद्रव होने लगे।

तं व्याकुलमभिप्रेक्ष्य द्विविदो भिषजां वरः ।
अश्विवंशेन संजातः स्वापयामास लक्ष्मणम् ॥ १२ ॥

(१२) अश्विनी कुमार वंशोद्भव वैद्य श्रेष्ठ द्विविध नामक बानरने लक्ष्मणजीको व्याकुल देखकर एक मंत्र सुनाया।

लिखित्वा रामभद्रस्य संज्ञापत्रीमतन्द्रितः ।
लक्ष्मणं दर्शयामास ऊर्द्ध्वस्तिष्ठन्महाभुजः ॥ १३ ॥

(१३) और यही मंत्र लिखकर रामचन्द्रजीके सन्मुख ऊंचे स्थानमें रखकर लक्ष्मणजीको दिखलाया।

लक्ष्मणो वीक्ष्य तां पत्रीं विज्वरो बलवानभूत् ।
स ततो द्विविदं प्राह वरं वरय वानर ॥ १४ ॥

(१४) इस पत्रको देखकर लक्ष्मणजी ज्वर रहित एवं बलवान हुए। पुनः लक्ष्मणजीने द्विविध नामक बानरसे कहा,—हे बानर ! तुम बर मांगो।

द्विविदस्तद्वचः श्रुत्वा लक्ष्मणं प्राह हृष्टवत् ।

त्वत्तो मे मरणं प्रार्थ्यं वानरत्वाच्च मोचनम् ॥ १५ ॥

(१५) द्विविधने यह सुन हर्षित होकर लक्ष्मणजीसे कहा:—मैं प्रार्थना करता हूं कि आपके हाथसे मेरी मृत्यु हो और वानरभावसे छूट जाऊं ।

पुनस्तं लक्ष्मणः प्राह मम जन्मान्तरे तव ।
मोचनं भविता कीश बलरामशरीरिणः ॥ १६ ॥

(१६) पुनः लक्ष्मणजीने कहा,—मैं दूसरे जन्ममें बलदेव रूपसे अवतार लूंगा उस समय हमारे हाथसे तुम्हारा वानर भाव छूट जायगा ।

समुद्रस्योत्तरे तीरे द्विविदो नाम वानरः ।
ऐकाहिकं ज्वरं हन्ति लिखनं यस्तु पश्यति ॥ १७ ॥

(१७) "समुद्रस्योत्तरे तीर द्विविदो नाम वानर." इस मंत्रको लिखकर देखनेसे इकतरे ज्वरका नाश हो जाता है ।

इति मन्त्राक्षरं द्वारि लिखित्वा तालपत्रके ।
यस्तु पश्यति तस्यापि नश्यत्यैकाहिकज्वरः ॥ १८ ॥

(१८) यह मंत्र द्वार एवं तालपत्रपर लिखकर देखनेसे भी इकतरा ज्वर छूट जाता है ।

इति तस्य वरं लब्ध्वा चिरायुः सुस्थवानरः ।
बलरामास्त्रभिन्नात्मा मोक्षमापाकुतोभयम् ॥ १९ ॥

(१९) इस प्रकार लक्ष्मणजीसे वर पाकर द्विविद वानर आरोग्य शरीरसे अनेक दिनोंतक जीवित रहा । बहुत कालके अनन्तर बलदेवजीके अस्त्रसे निडर हो वह प्राण त्यागकर मोक्ष पदको प्राप्त हुआ ।

तथा क्षेत्रे सूतपुत्रो निहतो लोमहर्षणः ।
बलरामास्त्रयुक्तात्मा नैमिषेऽभूत्तववाञ्छया ॥ २० ॥

(२०) ऐसेही आपकी इच्छानुसार सूतपुत्र लोमहर्षण नैमिषारण्यमें बलदेवजीके अस्त्रसे मृतक हुए थे ।

जाम्बवांश्च पुरा भूपा वामनत्वं गते हरौ ।

तस्याप्यूदूर्ध्वगतं पादं तत्र चक्रे प्रदक्षिणम् ॥ २१ ॥

(२१) हे नृपतिगण ! बामनावतारके समय जब वामनजीने तीन पग भूमिसे समस्त लोकोंको नाप लिया था, उस समय जाम्ववानने उनके उदूर्ध्व लोकस्थित चरणकी प्रदक्षिणाकी।

मनोजवं तं निरीक्ष्य वामनः प्राह विस्मितः।
मत्तो वृणु वरं काममृक्षाधीश महाबल ॥ २२ ॥

(२२) वामनजी जाम्ववानको मनके समान शीघ्रगामी देखकर विस्मयापन्न हो बोले,-"हे ऋक्षपते ! तुम महाबली और पराक्रमी हो, हमसे वर मांगो।"

इति तं हृष्टवदनो ब्रह्मांशो जाम्बवान्मुदा।
प्राह भो चक्रदहनान्मम मृत्युर्भविष्यति ॥ २३ ॥

(२३) वामनजीके यह बचन सुन ब्रह्मांशसे उत्पन्न जाम्बवानने प्रसन्न मुखसे कहा,-"हमको यह वर दीजिये कि आपके चक्रसे हमारी मृत्यु हो।

इत्युक्ते वामनः प्राह कृष्णजन्मनि मे तव।
मोक्षश्चक्रेण संभिन्नशिरसः संभविष्यति ॥ २४ ॥

(२४) यह सुनकर वामनजीने कहा कि, जब मैं कृष्णरूपसे अवतार लूंगा तब हमारे चक्रसे तुम्हारा शिर भिन्न होगा। उस समय तुम मुक्ति प्राप्त होगे।

मम कृष्णावतारे तु सूर्य्यभक्तस्य भूपतेः।
सत्राजितस्तु मण्यर्थे दुर्वादः समजायत ॥ २५ ॥

(२५) फिर जब कृष्ण अवतार हुआ था, तब मैं सत्राजित नामक राजा था। मैं सूर्य्यकी आराधना किया करता था। उस समय मुझसे मणिके निमित्त कृष्णजीका एक कलंक हुआ।

प्रसेनस्य मम भ्रातुर्वधस्तु मणिहेतुकः।
सिंहात्तस्यापि मण्यर्थे वधो जाम्बवता कृतः ॥ २६ ॥

(२६) हमारे छोटे भ्राताका नाम प्रसेन था, एक सिंहने मणिके लिये मेरे छोटे भ्राताको मारडाला। आगे सिंहभी इस मणिके निमित्तही जाम्ववान द्वारा हत हुआ।

दुर्वादभयभीतस्य कृष्णस्यामिततेजसः।
मण्यन्वेषणचित्तस्य ऋक्षेणाभूद्रणो विले ॥ २७ ॥

(२७) असीम तेजस्वी कृष्णजी कलंक भयसे भीतहो मणि ढूढ़ने लगे। आगे एक गुफामें जाम्ववानके साथ उनका संग्राम हुआ।

स निजेशं परिज्ञाय तच्चक्रग्रस्तबन्धनम्।
मुक्तो बभूव सहसा कृष्णं पश्यन्सलक्ष्मणम् ॥ २८ ॥

(२८) जाम्ववानने अपने प्रभुको पहिचाना। कृष्णजीके चक्रसे उनका मस्तक काटा गया। लक्ष्मणयुक्त श्रीकृष्णजीका दर्शन कर जाम्ववानने प्राण त्याग किया।

नवदूर्वादलश्यामं दृष्ट्वा प्रादान्निजात्मजाम्।
तदा जाम्बवतीं कन्यां प्रगृह्य मणिना सह ॥ २९ ॥

(२९) ऋक्षराजने, नवदूर्वादलकी समान श्रीकृष्णजीकी श्याममूर्त्तिका दर्शन करके उनको मणिके साथ अपनी जाम्ववतीनामक कन्या दान कर दी।

द्वारकां पुरमागत्य सभायां मामुपाहूयत्।
आहूय मह्यं प्रददौ मणिं मुनिगणार्च्चितम् ॥ ३० ॥

(३०) तदन्तर श्रीकृष्णजीने द्वारकापुरीमें आकर सभामें मुझको बुलाया और उस समय वह मणि जो कि महर्षियोंको भी दुर्लभ है उन्होंने मुझको दे दी।

सोऽहं तां लज्जया तेन मणिना कन्यकां स्वकाम्।
विवाहेन ददावस्मै लावण्याज्जगृहे मणिम् ॥ ३१ ॥

(३१) उस समय मैंने अत्यन्त लज्जित हो वह मणि और सत्यभामा नामक कन्या कृष्णजी को दान कर दी। कृष्णजीने दोनोंका लावण्य देखकर दोनोंको ग्रहण किया।

ता सत्यभामामादाय मणिं मय्यर्प्य स प्रभुः।
द्वारकामागत्य पुनर्गजाह्वयमगाद्विभुः ॥ ३२ ॥

(३२) कुछ दिन पीछे कृष्णजी मेरे पास मणि रखकर सत्यभामाको साथले हस्तिनापुर गये।

गते कृष्णे मां निहत्य शतधन्वाग्रहीन्मणिम् ।
अतोऽहमिह जानामि पूर्वजन्मनि यत्कृतम् ॥ ३३ ॥

(३३) जब कृष्णजी हस्तिनापुर चले गये तब शतधन्वानामक राजाने मेरा संहार करके मणिको ग्रहणकर लिया। इस प्रकार पूर्व्व जन्ममें कल्किजीने जो कुछ किया था, वह मैं जानता हूं।

मिथ्याभिशापात्कृष्णस्य नैवाभून्मोचनं मम ।
अतोऽहं कल्किरूपाय कृष्णाय परमात्मने ।
दत्त्वा रमां सत्यभामारूपिणीं यामि सद्गतिम् ॥ ३४ ॥

(३४) मैंने कृष्णजीको मिथ्या कलङ्क लगाया इसलिये उस जन्ममें मेरी मुक्ति नहीं हुई। इसी कारण इस जन्ममें कल्किरूप परमात्मा कृष्णजीको सत्यभामा रूपिणी रमा नामकी कन्या देकर श्रेष्ठगतिको प्राप्त करता हूं।

सुदर्शनास्त्रघातेन मरणं मम काङ्क्षितम् ।
मरणोऽभूदिति ज्ञात्वा रणे वाञ्छामि मोचनम् ॥ ३५ ॥

[३५] संग्राममें मृत्यु होनेसे मुक्ति होगी इसीलिये मैंने कामनाकीथी कि सुदर्शन चक्रके प्रहारसे मेरी मृत्यु हो।

इत्यसौ जगतामीशः कल्किः श्वशुरघातनम् ।
श्रुत्वैवाधोमुखस्तस्थौ ह्रिया धर्म्मभिया प्रभुः ॥ ३६ ॥

(३६) संसारके अधिपति प्रभु कल्किजीने इस प्रकार श्वसुरका वध स्मरण करके धर्म्म भय और लज्जासे मुखको अवनत कर लिया।

अत्याश्चर्य्यमपूर्वमुत्तममिदं श्रुत्वा नृपा विस्मिता
लोकाः संसदि हर्षिता मुनिगणाः कल्केर्गुणाकर्षिताः ।
आख्यानं परमादरेण सुखदं धन्यं यशस्यं परं
श्रीमद्भूपशशिध्वजेरितवजो मोक्षप्रदं चाभवन् ॥ ३७ ॥

(३७) अति आश्चर्य्यपूर्ण, अपूर्व्व मनोहर, इस उपाख्यानको सुनकर सभास्थित राजागण विस्मित हुए। सभासदोंको आनन्द प्राप्त हुआ। महर्षिगण कल्कि गुणोंसे मोहित होगये। श्रीमान् राजा शशिध्वज द्वारा कथित इस उपाख्यानको

जो श्रवण करता है, वह सुखी, धन्य, परम यशवान् एवं मोक्षको प्राप्त होता है और पुनः उसको जन्म मृत्युकी घोर यातना नहीं सहना पड़ती ।

इति श्रीकल्किपुराणे सानुवादेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे शशिध्वजं-रितचक्रमरणाख्यानं नाम त्रयोदश अध्याय ॥ १३ ॥

तृतीयांशः ।

चतुर्दश-अध्याय ।

सूतउवाच ।

ततः कल्किर्महातेजाः श्वशुरं तं शशिध्वजम् ।
समामन्त्र्य वचश्चित्रैः सह भूपैर्ययौ हरिः ॥ १ ॥

(१) सूतजी बोले,—"तदनन्तर महातेजस्वी कल्किजी विचित्र वचन सम्भाषण द्वारा अपने श्वसुर शशिध्वजको संतुष्ट करके चले गये ।

शशिध्वजो वरं लब्धा यथाकामं महेश्वरीम् ।
स्तुत्वा मायां त्यक्तमायः सप्रियः प्रययौ वनम् ॥ २ ॥

(२) राजा शशिध्वजने कल्किजीसे इच्छानुसार वर पा महेश्वरी मायाका स्तोत्र कहकर मोह बन्धनसे छूट भार्य्या सहित बनको गमन किया ।

कल्किः सेनागणैः सार्द्धं प्रययौ काञ्चनीं पुरीम् ।
गिरिदुर्गावृतां गुप्तां भोगिभिर्विषवर्षिभिः ॥ ३ ॥

(३) कल्किजीने सेना सहित काञ्चीपुरीको प्रस्थान किया । इस पुरीके चारों ओर पहाडियोंका कोट है। विष वर्षाने वाले सापोंसे इसकी रक्षा होती है ।

विदार्य्य दुर्गं सगणः कल्किः परपुरञ्जयः ।
छित्त्वा विषायुधान्बाणैस्तां पुरीं ददृशेऽच्युतः ॥ ४ ॥

(४) शत्रुपुरके जीतनेवाले अच्युत कल्किजीने अपनी सेनाके साथ उस कठिन कोटको भेद एवं बाणों द्वारा विषधारी सर्पोंका संहार करके पुरीमें प्रवेश किया ।

मणिकाञ्चनचित्राढ्यां नागकन्यागणावृताम् ।
हरिचन्दनवृक्षाढ्यां मनुजैः परिवर्जिताम् ॥ ५ ॥

(५) कल्किजीने देखा कि, वह पुरी अनेक मणियों और काञ्चन राशिसे सुसज्जित है, उसके स्थान स्थान में नागकन्याएं शोभायमान हैं। मध्य मध्यमें कल्पवृक्ष सुशोभित हैं, परन्तु वहां मनुष्य एक भी नहीं है।

विलोक्य कल्किः प्रहसन्प्राह भूपान्किमित्यहो ।
सर्पस्येयं पुरी रम्या नराणां भयदायिनी ।
नागनारीगणाकीर्णा किं यास्यमो वदन्त्विह ॥ ६ ॥

(६) इन अद्भुत दृश्योंको देख कल्किजीने मुस्कुराकर राजाओंसे कहा,—"देखो ! कैसा आश्चर्य्य है ! ! यह सर्पोंकी पुरी है ! ! ! मनुष्योंके लिये यह स्थान अत्यन्त भयानक है। इसमें केवल नाग कन्याएं निवास करती हैं। बतलाइये इसमें प्रवेश करना चाहिये कि नहीं ?

इतिकर्त्तव्यताव्यग्रं रमानाथं हरिं प्रभुम् ।
भूपांस्तदनुरूपांश्च खे वागाहाशरीरिणि ॥ ७ ॥

(७) रामनाथ प्रभु हरि और राजागण उस स्थानमें कुछ कर्त्तव्य निश्चय नहीं कर सके। वह लोग चिन्ता करने लगे। इसी समय आकाशवाणी हुई।

विलोक्य नेमां सेनाभिः प्रवेष्टुं भोस्त्वमर्हसि ।
त्वां विनान्ये मरिष्यन्ति विषकन्यादृशादपि ॥ ८ ॥

(८) इस पुरीमें सेना सहित आपको प्रवेश करना उचित नहीं है। इस पुरीके भीतर रहनेवाली विष कन्याओंकी दृष्टि पड़नेसे आपके अतिरिक्त और सबही कालके गालमें पतित होंगे।

आकाशवाणीमाकर्ण्य कल्किः शुकसहायकृत् ।
ययावेकः खड्गधरस्तुरगेण त्वरान्वितः ॥ ९ ॥

(९) आकाशवाणी सुन कल्किजीने शीघ्रता पूर्व्वक खड्ग लेकर अकेलेही अश्वारोहित हो शुक पक्षीके सहित गमन किया।

गत्वा तां ददृशे वीरो धीराणां धैर्य्यनाशिनीम् ।

रूपेणालक्ष्य लक्ष्मीशं प्राह प्रहसितानना ॥ १० ॥

(१०) कुछ दूर जाकर कल्किजीने एक अपूर्व्व कन्याको देखा। इस कन्याको देखनेसे ज्ञानी लोगोंका धैर्य्य भी जाता रहता है। अपूर्व्व रूपवाले कल्किजीको देखकर कन्या मुस्कुराकर बोली।

विषकन्येवाच—संसारेऽस्मिन्मम नयनोर्वीक्षणक्षीणदेहा
लोका भूपाः कति कति गता मृत्युमत्युग्रवीर्य्याः।
साहं दीनासुरसुरनप्रेक्षणप्रेमहीना
ते नेत्राब्जद्वयरससुधाप्लाविता त्वां नमामि ॥ ११ ॥

(११) विष कन्या बोली,—"इस जगत्में महावीर्य्यशाली सैकड़ों राजा एवं दूसरे मनुष्य अपनी देह नाश कराके कालके कलेवर हुए हैं। अतएव मैं अत्यन्त दुःखिनी हूं। सुर, असुर, मनुष्य किसीके साथ भी मेरे प्रेमकी सम्भावना नहीं है। इस समय आपके दृष्टिपात रूप अमृत प्रवाहमें प्रवाहित होकर मैं आपको नमस्कार करती हूं।

क्वाहं विषेक्षणादीना क्वामृतेक्षणसङ्गमः।
भवेऽस्मिन्भाग्यहीनायाः केनाहो तपसा कृतः ॥ १२ ॥

(१२) मैं इस संसारमें विष दृष्टिवाली दीन और अत्यन्त अभागिनी हूं। आपकी दृष्टि अमृत मय है। मैंने ऐसी कौनसी तपस्या की थी जो आपके साथ समागम हुआ।

कल्किरुवाच—कासि कन्यासि सुश्रोणि कस्मादेषा गतिस्तव।
ब्रूहि मां कर्म्मणा केन विषनेत्रं तवाभवत् ॥ १३ ॥

(१३) कल्किजी बोले,—हे सुश्रोणि ! तुम कौन हो ? किसकी कन्या हो ? तुह्मारी ऐसी अवस्था क्योंकर हुई। तुमने ऐसा कौनसा कर्म्म किया था, कि जिससे विषदृष्टि प्राप्त हुई हो ?

विषकन्येवाच—चित्रग्रीवस्य भार्य्याहं गन्धर्व्वस्य महामते।
सुलोचनेति विख्याता पत्युरत्यन्तकामदा ॥ १४ ॥

(१४) विष कन्या बोली,—हे महामते ! मैं चित्रग्रीव नामक गन्धर्वकी भार्य्या हूं। मेरा नाम सुलोचना है। मैं अपने पतिके मनको आनन्द देती थी।

एकदाहं विमानेन पत्या पीठेन सङ्गता ।
गन्धमादनकुञ्जेषु रेमे कामकलाकुला ॥ १५ ॥

(१५) एक समय मैं स्वामीके साथ विमानमें सवार हो गन्धमादन पर्व्वतके कुञ्जमें जाकर किसी शिलापर बैठी हुई विहारादि कर रही थी ।

तत्र यक्षमुनिं दृष्ट्वा विकृताकारमातुरम् ।
रूपयौवनगर्वेण कटाक्षेणाहसं मदात् ॥ १६ ॥

(१६) मैं उस समय मदनमदसे उन्मत्त थी । वहांपर यक्षमुनिका विकटाकार रूप देखकर यौवनगर्वसे अन्धी हो उनपर कटाक्ष कर हँसने लगी ।

सोपालम्भं मुनिः श्रुत्वा वचनं च ममाप्रियम् ।
शशाप मां क्रुधा तत्र तेनाहं विषदर्शना ॥ १७ ॥

(१७) मेरे मुखसे निरादर सूचक उपहास वाक्य सुनकर मुनिने क्रोधित हो मुझे शाप दिया । उस शापसेही मैं विषदृष्टिको प्राप्त हुई हूं ।

निक्षिप्ताहं सर्पपुरे काञ्चन्यां नागिनीगणे ।
पतिहीना दैवहीना चरामि विषवर्षिणी ॥ १८ ॥

(१८) तदनन्तर मैं काञ्चनी नामक सर्पोंकी इस पुरीके मध्य नागनियोंमें डाली गई । मैं दृष्टि द्वारा विष वर्षाया करती हूं । मैं अत्यन्त भाग्यहीन पतिहीन हो यहांपर अकेली घूमा करती हूं ।

न जाने केन तपसा भवद्दृष्टिपथं गता ।
त्यक्तशापामृताक्षाहं पतिलोकं व्रजाम्यतः ॥ १९ ॥

(१९) मै नहीं जानती कि, मैंने ऐसी कौनसी तपस्याकी थी कि जिससे आपकी दृष्टिके सन्मुख पड़ी । आपके दर्शनसे मेरा शाप छूट गया । इस समय मेरी दृष्टि अमृत वर्षाने वाली हुई है । अब मैं पतिके निकट जाती हूं ।

अहो तेषामस्तु शापः प्रसादो मा सतामिह ।
पत्युः शापाद्विमोक्षात्तव पादाब्जदर्शनम् ॥ २० ॥

(२०) कैसा आश्चर्य्य है ! साधुओंकी प्रसन्नतासे शापही अच्छा है । ऋषि शाप होनेसेही शाप छटनेके समय आपके चरण कमलका दर्शन प्राप्त हुआ ।

इत्युक्त्वा सा ययौ स्वर्गं विमानेनार्कवर्च्चसा ।
कल्किस्तु तत्पुराधीशं नृपं चक्रे महामतिम् ॥ २१ ॥

(२१) यह कहकर विषकन्या सूर्य्यके समान विमानपर आरोहित हो स्वर्गको चली गई । कल्किजीने महामति नामक राजाको उस पुरीका महाराजा बनाया ।

अमर्षस्तत्सुतो धीमान् सहस्रो नाम तत्सुतः ।
सहस्रतः सुतश्चासीद्राजा विश्रुतवानसि ॥ २२ ॥

(२२) महामतिके पुत्र अमर्ष, अमर्षके पुत्र धीमान् सहस्र और सहस्रसे असि नामक विख्यात राजाने जन्म ग्रहण किया ।

बृहन्नलानां भूपानां संभूता यस्य वंशजाः ।
तं मनुं भूपशार्दूलं नानामुनिगणैर्वृतः ॥ २३ ॥
अयोध्यायां चाभिषिच्य मथुरामगमद्धरिः ।
तस्यां भूपं सूर्य्यकेतुमभिषिच्य महाप्रभम् ॥ २४ ॥

(२३-२४) जिनके वंशमें बृहन्नल राजाओंकी उत्पत्ति हुई है, राजाओंमें शार्दूल उन मनुको अयोध्याके राज्यपर अभिषेकितकर नारायणजी मुनियोंके साथ मथुराको गये । मथुराके राज्यपर महाप्रभावाले सूर्य्यकेतुको अभिषेकित किया ।

भूपं चक्रे ततो गत्वा देवापिं वारणावते ।
अरिस्थलं वृकस्थलं माकन्दञ्च गजाह्वयम् ॥ २५ ॥
पञ्चदेशेश्वरं कृत्वा हरिः शम्भलमाययौ ।
शौम्भं पौण्ड्रं पुलिन्दञ्च सुराष्ट्रं मगधन्तथा ।
कविप्राज्ञसुमन्तेभ्यः प्रददौ भ्रातृवत्सलः ॥ २६ ॥

(२५-२६) नारायणजी वारणावतमें यात्रा करते हुए देवापिको राज्य दे उसको अरिस्थल, वृकस्थल, माकन्द, हस्तिनापुर, वारणात इन पांच देशोंका स्वामी करके शम्भल देशको गमन किया । आगे भ्राताओंके प्रिय नारायणजीने कवि, प्राज्ञ और सुमन्त्रको शौम्भ, पौण्ड, पुलिन्द और मगधदेश दान किया ।

कीकटं मध्यकर्णाटन्ध्रमोड्रं कलिङ्गकम् ।

अङ्गं वङ्गं स्वगोत्रेभ्यः प्रददौ जगदीश्वरः ॥ २७ ॥

(२७) पुनः जगदीश्वरने अपने जातिवालोंको कीकट, मध्यकर्णाटक, आन्ध्र, उड्र, अङ्ग, वङ्ग इत्यादि समस्त देशोंको दिया ।

स्वयं शम्भलमध्यस्थः कङ्केन कलापकान् ।
देशं विशाखयूपाय प्रादात्कल्किः प्रतापवान् ॥ २८ ॥

(२८) तदनन्तर कल्किजीने स्वयं शम्भल देशमें स्थित होकर राजा विशाख-यूपको कङ्कक और कपाल देश प्रदान किया ।

चोलबर्बरकर्वाख्यान्द्वारकादेशमध्यगान् ।
पुत्रेभ्यः प्रददौ कल्किः कृतवर्म्मपुरस्कृतान् ॥ २९ ॥

(२९) अनन्तर कल्किजीने कृतवर्म्म आदि पुत्रोंको द्वारकान्तर्गत चोल, बर्बर कर्वादि देशोंको प्रदान किया ।

पित्रे धनानि रत्नानि ददौ परमभक्तितः ।
प्रजाः समाश्वास्य हरिः शम्भलग्रामवासिनः ॥ ३० ॥
पद्मया रमया कल्किर्गृहस्थो मुमुदे भृशम् ।
धर्मश्चतुष्पादभवत्कृतपूर्णं जगत्त्रयम् ॥ ३१ ॥

(३०-३१) आगे हरिभगवान परम भक्ति सहित पिताजीको धन रत्न एवं शम्भ-लवासियोंको धैर्य देकर, गृहस्थाश्रममें स्थित हो, रमा और पद्माके साथ परमानन्दसे समय व्यतीत करने लगे । त्रिलोकी धर्मके चारों चरण संपन्न सत्ययुगसे पूर्ण होगई ।

देवा यथोक्तफलदाश्चरन्ति भुवि सर्वतः ।
सर्वशस्या वसुमती हृष्टपुष्टजनावृता ।
शाठ्यचौर्य्यानृतैर्हीना आधिव्याधिविवर्ज्जिता ॥ ३२ ॥

(३२) देवगण भक्तोंको अभिलषित फल देकर समस्त भूमण्डलपर विचरण करने लगे । सर्व धान्योंसे पृथ्वी परिपूर्ण होगई । समस्तजन हृष्ट पुष्ट होगये । शठता, चोरी, मिथ्या भाषण, मिथ्या व्यवहार, आधि व्याधि प्रभृति समस्त उपद्रव पृथ्वीसे दूर होगये ।

विप्रा वेदविदः सुमङ्गलयुता नार्य्यस्तु चार्य्याव्रतैः

पूजाहोमपराः पतिव्रतधरा यागोद्यता क्षत्त्रियाः।
वैश्या वस्तुषु धर्मतो विनिमयैः श्रीविष्णुपूजापराः
शूद्रास्तु द्विजसेवनाद्धरिकथालापाः सपर्य्यापराः॥३३॥

(३३) ब्राह्मण वेद पाठ करने लगे। स्त्रियां मंगल कार्य्य एवं व्रतादि पुण्यकर्म्मोंका अनुष्ठान करने लगी। पूजा होमादि होने लगा। स्त्रियां पतिव्रता हुई। क्षात्रिय याग यज्ञमें तत्पर हुए। वैश्य विष्णु पूजा में रत रहकर द्रव्यादि क्रय विक्रयसे जीवन यात्रा निर्वाह करने लगे। शूद्र ब्राह्मणोंकी सेवा करने लगे। लोग श्रीनारायणजीका गुण कीर्त्तन एवं श्रवण करने लगे। योंही सब लोग उपासना करते हुए जीवन यात्रा निर्वाह करने लगे।

इति श्रीकल्किपुराणे सानुवादेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे विषकन्यामोक्षकृतधर्म्मप्रवृत्तिकथनं नाम चतुर्दश अध्याय॥१४॥

तृतीयांशः।

पञ्चदश-अध्याय।

शौनक उवाच।

शशिध्वजो महाराजः स्तुतत्त्वा मायां गतःकुतः।
का वा मायास्तुतिः सूत वद तत्त्वविदां वर।
या त्वत्कथा विष्णुकथा वक्तव्या सा विशुद्धये॥१॥

(१) शौनकजीने कहा,—हे सूत! महाराज शशिध्वज मायास्तव करके कहां गये? तुमको ब्रह्मज्ञान होगया है। मायास्तुति कैसी है? उसको वर्णन कीजिये। माया और विष्णुजीकी कथामें भेद नहीं है अतएव पापमोचनके अर्थ तुम उस मायाके स्तुति वाक्य कहो।

सूत उवाच—शृणुध्वं मुनयः सर्वे मार्कण्डेयाय पृच्छते।
शुकः प्राह विशुद्धात्मा मायास्तवमनुत्तमम्॥२॥

(२) सूतजी बोले,—हे मुनिगण ! महर्षि मार्कण्डेयजीसे जिज्ञासा करनेपर विशुद्धात्मा शुकदेवजीने अति उत्तम मायास्तव कहा था। मैं इस समय वही मायास्तव कहता हूं,—"श्रवण करो !"

तच्छृणुध्वं प्रवक्ष्यामि यथाधीतं यथाश्रुतम् ।
सर्वकामप्रदं नृणां पापतापविनाशनम् ॥ ३ ॥

(३) मैंने जिसको पठन श्रवण किया है, जिसके श्रवण करनेसे मनुष्योंकी समस्त कामनाएं पूर्ण होती हैं और जिससे समस्त पापताप दूर होजाते हैं, उस मायास्तवको कहता हूं,—" श्रवण कीजिये !"

शुक उवाच—भल्लाटनगरं त्यक्त्वा विष्णुभक्तः शशिध्वजः।
आत्मसंसारमोक्षाय मायास्तवमलं जगौ ॥ ४ ॥

(४) शुकदेवजी बोले,—विष्णुजीके भक्त राजाशशिध्वजने भल्लाटनगर परित्यागकर संसारसे मुक्त होनेके निमित्त मायास्तव करना आरंभ किया।

शशिध्वज उवाच ।

ॐ ह्रींकारां सत्वसारां विशुद्धां ब्रह्मादीनां मातरं वेदबोध्याम्
तन्वीं स्वाहां भूततन्मात्रकक्षां वन्दे वन्द्यां देवगन्धर्वसिद्धैः ॥५॥

(५) शशिध्वजने कहा,—हे माया ! तुम शुद्धसत्वगुणमयी, विशुद्ध रूपिणी एवं ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजीकी माता हो। वेदमें तुम्हाराही महिमा प्रतिपादित हुई है। तुम्हारी कुक्षिमें भूतगण और पञ्चतन्मात्रा स्थित हैं। देव, गन्धर्व सिद्ध और विद्याधरगण तुम्हारी वन्दना करते हैं। तुम सूक्ष्म, स्वाहारूपिणी और ह्रीं बीज रूपिणी हो। मैं तुम्हारी वन्दना करता हूं।

लोकातीतां द्वैतभूतां समीडे भूतैर्भव्यां व्याससामासिकाद्यैः
विद्वद्गीतां कालकल्लोललोलां लीलापाङ्गक्षिप्तसंसारदुर्गाम् ॥६॥

(६) तुम लोकसे परे हो, तुम्हारे स्वरूपमें द्वैत भाव लगाया गया है। व्यास शातातपादि महर्षिगण तुम्हारी वन्दना करते हैं। विष्णुजी तुम्हारा स्तवसंगीत गान करते हैं, तुम कलिरूपी समुद्रकी कल्लोलमें लहराती हो, तुम्हारे कुटिल कटाक्षकी विलासलीलामें समस्त प्राणी संसार प्रपञ्चमें पड़ते हैं। मैं तुम्हरी वन्दना करता हूं।

पूर्णां प्राप्यां द्वैतलभ्यां शरण्यामाद्ये शेषे मध्यतो या विभाति

नानारूपैर्देवतिर्य्यङ्मनुष्यैस्तामाधारां ब्रह्मरूपां नमामि॥७॥

(७) सृष्टिके आदि मध्य और अन्तमें तुम विराजमान हो। तुम सर्व प्राणियोंको आश्रय प्रदान करती हो। पूर्ण अथवा द्वैतभावसे उपासना करनेपर तुमको प्राप्त किया जाता है। तुम देवता, तिर्यक और मनुष्य जातिमें अनेक प्रकारसे विभक्त हो रही हो। तुम सारे संसारकी आधार हो। तुम ब्रह्म स्वरूपिणी हो। तुमको नमस्कार है।

यस्या भासा त्रिजगद्भाति भूतैर्न भात्येतत्तदभावे विधातुः।
कालोदैवंकर्म्म चोपाधयो ये तस्यां भाषा तां विशिष्टां नमामि

(८) तुम्हारे प्रभावसे त्रिजगत् भूतपंचक करके प्रकाशमान होरहा है, तुम्हारे प्रकाशके विना काल, दैव, कर्म्म, उपाधि आदि विधाताका नियत किया हुआ कोई भाव प्रकाशित नहीं होता, तुम उसी प्रभासे प्रभावती होरही हो, मैं तुमको नमस्कार करता हूं।

भूमौ गन्धो रसताप्सु प्रतिष्ठा रूपं तेजस्येव वायौ स्पृशत्वम्।
खे शब्दो वा यच्चिदाभास्ति नाना मताभ्येषां विश्वरूपां नमामि

(९) तुम चिदाभासरूपसे भूमिमें गन्ध, जलमें रस, तेजमें रूप, पवनमें स्पर्श और आकाशमें शब्द इस प्रकार अनेक रूपोंसे विराजमान होकर संसारमें प्रवेश कर रही हो अतएव तुम विश्वरूपिणी हो। तुमको नमस्कार है।

सावित्री त्वं ब्रह्मरूपा भवानी भूतेशस्य श्रीपतेः श्रीस्वरूपा।
शची शक्रस्यापि नाकेश्वरस्य पत्नी श्रेष्ठा भासि माये जगत्सु

(१०) तुम ब्रह्मरूपिणी सावित्री हो, भूतेश्वरकी भवानी हो, नारायणकी लक्ष्मी हो, स्वर्गपति इन्द्रकी पटरानी इन्द्राणी हो। हे माया! समस्त जगत्में तुम इसी प्रकारसे भासमान होरही हो।

बाल्ये बाला युवती यौवने त्वंवार्द्धक्ये या स्थविरा कालकल्पा
नानाकारैर्य्यागयोगैरुपास्या ज्ञानातीता कामरूपा विभासि ११

(११) तुम्ही स्त्रियोंको शैशवावस्थामें बाला, यौवन कालमें युवती और वृद्धावस्थामें वर्षीयसी रूपमें परिणत करती हो। तुम कालसे कल्पित हो, ज्ञानसे परे और काम रूपिणी हो एवं अनेक प्रकारकी मूर्त्तियां धारण करके प्रकाशमान हो रही हो। यज्ञ और योगसे तुम्हारी पूजाकी जाती है। मैं तुम्हारी वन्दना करता हूं।

वरेण्या त्वं वरदा लोकसिद्धया साध्वीधन्या लोकमान्या सुकन्या
चण्डी दुर्गा कालिका कालिकाख्या नानादेशे रूपवेशैर्विभासि

(१२) तुम बरणीय हो । तुम उपासकोंको वर और अभीष्ट प्रदान करती हो । तुम साध्वी और धन्यवादके योग्य हो । लोग तुम्हारा सम्मान करते हैं । तुम्हीं चण्डी, दुर्गा, कालिका आदि नाम धारण करके समयानुसार अनेक रूप और वर्षसे अनेक देशोंमें प्रकाशित होती हो ।

तव चरणसरोजं देवि ! देवादिवन्द्यं यदि हृदयसरोजे॥
भावयन्तीह भक्तया श्रुतियुगकुहरे वा संश्रुतं
धर्म्मसम्पज्जनयति जगदाद्ये सर्वसिद्धिञ्च तेषाम् ॥१३॥

(१३) हे जगदाद्ये देवि ! यदि कोई अपने हृदयकमलमें तुम्हारे देवादि वन्दित चरणोंका ध्यान करे, भक्ति सहित भावना करे एवं कर्ण कुहरमें तुम्हारा नाम श्रवण करे तो, उसको धर्म सम्पत्ति प्राप्त होती है और वह समस्त सिद्धि प्राप्त कर सकता है ।

मायास्तवमिदं पुण्यं शुकदेवेन भाषितम् ।
मार्कण्डेयादवाप्यापि सिद्धिं लेभे शशिध्वजः ॥ १४ ॥

(१४) इस पवित्र मायास्तोत्रको शुकदेवजीने कहा था । महर्षि मार्कण्डेयजीसे इस माया स्तोत्रको पाकर राजा शशिध्वजने सिद्धि प्राप्त की ।

कोकामुखे तपस्तप्त्वा हरिं ध्यात्वा वनान्तरे ।
सुदर्शनेन निहतो वैकुण्ठं शरणं ययौ ॥ १५ ॥

(१५) बनके मध्य कोकामुख नामक स्थानमें तपकर नारायणजीका ध्यान करते हुए राजा शशिध्वज सुदर्शन चक्रसे निहत हो वैकुण्ठधामको चले गये ।

इति श्रीसानुवादे कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे
मायास्तवो नाम पंचदशअध्यायः ॥ ९ ॥

तृतीयांशः।

षोडश-अध्याय।

सूतउवाच।

एतद्वः कथितं विप्राः शशिध्वजविमोक्षणम्।
कल्केः कथामप्रतिमां शृण्वन्तु विबुधर्षभाः॥ १॥

(१) सूतजी बोले,—हे ब्राह्मणगण! मैंने आपसे राजा शशिध्वजकी मुक्तिका वृत्तान्त कहा। हे विबुधगण! अब कल्किजीका अद्भुत उपाख्यान करता हूं,—"श्रवण करो।"

वेदो धर्म्मः कृतयुगं देवालोकाश्चराचराः।
हृष्टाः पुष्टाः सुसंतुष्टाः कल्कौ राजनि चाभवन्॥ २॥

(२) कल्किजी राजसिंहासनपर उपविष्ट हुए। वेद, धर्म, सत्ययुग, देवता, एवं स्थावर, जङ्गमादि समस्त जीव हृष्ट पुष्ट और सन्तुष्ट हुए।

नानादेवादिलिङ्गेषु भूषणैर्भूषितेषु च।
इन्द्रजालिकवद्वृत्तिकल्पकाः पूजका जनाः॥ ३॥

(३) पहिले युगमें पुजारी लोग अनेक भूषणोंसे भूषितकर देवमूर्त्तियोंमें इन्द्रजालके समान वृत्ति कल्पित करते थे।

न सन्ति मायामोहाढ्याः पाखण्डाः साधुवञ्चकाः।
तिलकाचितसर्वाङ्गाः कल्कौ राजनि कुत्रचित्॥ ४॥

(४) इस समय माया मोहसे वञ्चक साधुओंको धोखा देनेवाला पाखण्ड नहीं रहा। कल्किजीके राजा होने पर सभी लोग सर्वाङ्गमें तिलक धारण करने लगे।

शम्भले वसतस्तस्य पद्मया रमया सह।
प्राह विष्णुयशाः पुत्रं देवान्यष्टुं जगद्धितान्॥ ५॥

(५) इस प्रकार कल्किजी पद्मा और रमाके साथ शम्भलग्राममें बास करने

लगे। एक समय कल्किजीके पिताने स्वपुत्रसे जगत हितकारी देवतागणके निमित्त यज्ञ करनेको कहा।

तच्छ्रुत्वा प्राह पितरं कल्किः परमहर्षितः।
विनयावनतो भूत्वा धर्मकामार्थसिद्धये ॥ ६ ॥
राजसूयैर्वाजपेयैरश्वमेधैर्महामखैः।
नानायागैः कर्म्मतन्त्रैरीजे क्रतुपतिं हरिम् ॥ ७ ॥

(६-७)पिताजीके वचन सुन परमानन्दित हो विनय सहित कल्किजी बोले,-"मैं धर्म काम और अर्थ सिद्धिके लिये कर्मकाण्डके अन्तर्गत राजसूय, अश्वमेध एवं अन्यान्य यज्ञोंका अनुष्ठानकर यज्ञनाथ नारायणजीकी पूजा करूंगा।

कृपरामवसिष्ठाद्यै र्व्यासधौम्यकृतव्रणैः।
अश्वत्थाममधुच्छन्दोमन्दपालैर्महात्मनः ॥ ८ ॥
गंगायमुनयोर्मध्ये स्नात्वावभृथमादरात्।
दक्षिणाभिः समभ्यचर्य ब्राह्मणान्वेदपारगान् ॥ ९ ॥

(८-९) पुनः कल्किजीने कृपाचार्य्य, परशुराम, वसिष्ठ, व्यास, धौम्य, अकृतव्रण, अश्वत्थामा, मधुच्छन्द और मन्दपालादि महर्षि एवं वेदपारग ब्राह्मणोंकी पूजाकी। आगे गङ्गा यमुनाके मध्यस्थित यज्ञमें दीक्षित हुए एवं स्नानकर सबको दक्षिणा दी।

चर्व्यैश्चोष्यैश्च पेयैश्च पूगशष्कुलियावकैः।
मधुमांसैर्मूलफलैरन्यैश्च विविधैर्द्विजान् ॥ १० ॥
भोजयामास विधिवत्सर्वकर्मसमृद्धिभिः।
यत्र वह्निर्वृतः पाके वरुणो जलदो मरुत् ॥ ११ ॥
परिवेष्टा द्विजान्कामैः सदन्नाद्यै रतोषयत्।
वाद्यै र्नृत्यैश्च गीतैश्च पितृयज्ञमहोत्सवैः ॥ १२ ॥
कल्किःकमलपत्राक्षः प्रहर्षः प्रददौ वसु।
स्त्रीबालस्थविरादिभ्यः सर्वेभ्यश्च यथोचितम् ॥ १३ ॥

(१०-११-१२-१३) पुनः उन्होंने अनेक प्रकारके चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय, पूय, शष्कुलि, यावक, बहुरी, ताजा मांस, फल, मूल, एवं अनेक प्रकारके द्रव्य ब्राह्मणोंको विधिवत भोजन कराये । यज्ञ सर्वांग भलीभांति परिपूर्ण हुआ । अग्निने भोजन रांधा । वरुणने जल दिया । पवन परोसने लगा । कमलनेत्र कल्किजीने इस प्रकार उत्तम अन्नादि भोजन नृत्य, गीत और वाद्यादि उत्सवोंसे सबके आनन्दको वर्द्धन किया । आपने बालकसे लेकर वृद्ध स्त्री सभीको यथोचित धन दान दिया ।

रम्भा तालधरा नन्दी हूहूर्गायति नृत्यति ।
दत्त्वा दानानि पात्रेभ्योब्राह्मणेभ्यः स ईश्वरः ॥ १४ ॥
उवास तीरे गंगायाः पितृवाक्यानुमोदितः ।
सभायां विष्णुयशसः पूर्वराजकथाः प्रियाः ॥ १५ ॥
कथयन्तो हसन्तश्च हर्षयन्तो द्विजा बुधाः ।
तत्रागतस्तुम्बुरुणानारदः सुरपूजितः ॥ १६ ॥

(१४-१५-१६) रंभा अप्सरा नांचने लगी । नन्दी तालसे बाजा बजाने लगे । हूहू नामक गन्धर्वने गाना आरंभ किया । जगदीश्वर कल्किजी ब्राह्मण और सत्पात्रोंको धन बांटकर पिताजीकी अनुमति ले गंगातटपर वास करने लगे । विष्णुयशाकी सभामें ब्राह्मण और पण्डितगण पूर्व्व राजाओंके सन्तोषदायक श्रुति मधुर चरित्र कीर्त्तन कर रहे हैं । इसी समय देवर्षि नारदजी और तुंवरू महाराज पहुंचे ।

तं पूजयामास मुदा पित्रा सह यथाविधि ।
तौ संपूज्य विष्णुयशाः प्रोवाच विनयान्वितः ।
नारदं वैष्णवं प्रीत्या वीणापाणिं महामुनिम् ॥ १७ ॥

(१७) महायशवान् विष्णुयशाने प्रसन्नहृदय उन दोनों महर्षियोंकी विधिवत् पूजा की । उत्तम प्रकार उनकी पूजाकर विनयपूर्वक विष्णु भक्त वीणापाणि महामुनि नारदजीसे प्रीति सहित पूछा ।

विष्णुयशा उवाच-अहो भाग्यमहो भाग्यं मम जन्मशतार्जितम् ।
भवद्विधानां पूर्णानां यन्मे मोक्षाय दर्शनम् ॥ १८ ॥

(१८) विष्णुयशाने कहा,- हमारा कैसा सौभाग्य है ! शत जन्मोंका एकत्रित:

किया हुआ मेरा भाग्य कैसा अद्भुत है! आप लोग पूर्ण हैं। हमारी मुक्तिके लिये ही आप लोगोंके दर्शन प्राप्त हुए हैं।

अद्याग्नयश्च सुहुतास्तृप्ताश्च पितरः परम्।
देवाश्च परिसन्तुष्टास्तवावेक्षणपूजनात्॥ १९॥

(१९) आज आपके दर्शन एवं पूजनसे हमारे पितृगण तृप्त हुए। हमारी अग्न्याहुति सफल हुई। देवतागण सन्तुष्ट हुए।

यत्पूजायां भवेत्पूज्यो विष्णुर्यन्मम दर्शनम्।
पापसंघं स्पर्शनाच्च किमहो साधुसंगमः॥ २०॥

(२०) जिसकी पूजा करनेसे विष्णुजी पूजित होते हैं, उनका दर्शन करनेसे पुनः जन्म नहीं होता, उनके स्पर्शसे पापपुञ्जका क्षय होता है, ऐसे साधुओंका समागम क्याही अद्भुत है।

साधूनां हृदयं धर्म्मो वाचो देवाः सनातनाः।
कर्मक्षयाणि कर्माणि यतः साधुर्हरिः स्वयम्॥ २१॥

(२१) साधुओंका हृदयही धर्म है, साधुओंका वाक्यही सनातनदेव हैं, साधुओंके कर्म्मही कर्मक्षय होनेके कारण हैं, अतएव साधुगण स्वयंही नारायणजीकी मूर्त्ति हैं।

मन्ये न भौतिको देहो वैष्णवस्य जगत्त्रये।
यथावतारे कृष्णस्य सतो दुष्टविनिग्रहे॥ २२॥

(२२) दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये कृष्णावतारमें श्रीकृष्णजीका नित्य शरीर जिस प्रकार भौतिक नहीं है उसी प्रकार इस त्रिलोकीमें वैष्णव शरीर भी पञ्चभूतसे संगठित ज्ञात नहीं होता।

पृच्छामि त्वामतो ब्रह्मन्मायासंसारवारिधौ।
नौकायां विष्णुभक्त्या च कर्णधारोऽसि पारकृत्॥२३॥

(२३) हे ब्रह्मन्! मायामय संसारमें आप विष्णुभक्ति रूप नावके पार करनेवाले हैं। आपसे कुछ प्रश्न करता हूं।

केनाहं यातनागारान्निर्वाणपदमुत्तमम्।
लप्स्यामीह जगद्बन्धो कर्म्मणा शर्म्म तद्वद॥ २४॥

(२४) हे जगद्बन्धो ! मैं किस कर्म द्वारा ऐसे संसाररूप पीड़ा स्थानसे छुटकारा पाकर श्रेष्ठता साधन और उत्तम निर्वाण पद प्राप्त कर सकूंगा ? आप वर्णन करें ।

नारद उवाच—अहो बलवती माया सर्वाश्चर्यमयी शुभा
पितरं मातरं विष्णुर्नैव मुञ्चति कर्हिचित् ॥ २५ ॥

(२५) नारदजी बोले,—माया कैसी शोभायमान है, कैसी बलवती है, समस्त प्राणियोंको कैसा विस्मित करती है । क्या आश्चर्य्य है, कि विष्णुजी अपने पिता माताको भी इस मायासे नहीं छुटाते ।

पूर्णो नारायणो यस्य सुतः कल्किर्जगत्पतिः ।
तं विहाय विष्णुयशा मत्तो मुक्तिमभीप्सति ॥ २६ ॥

(२६) साक्षात् सनातन भगवान नारायणजी जिनके पुत्र हैं, वह विष्णुयशा मुझसे मुक्तिकी कामना करते हैं ।

विविच्येत्थं ब्रह्मसुतः प्राह ब्रह्मयशःसुतम् ।
विविक्ते विष्णुयशसं ब्रह्मसंपद्विवर्द्धनम् ॥ २७ ॥

(२७) ब्रह्मसुत नारजीने यह सोच विचारकर ब्रह्मयशापुत्र विष्णुयशासे निर्जनमें ब्रह्मज्ञान देनेको यह वाक्य कहा ।

नारद उवाच—देहावसाने जीवं सा दृष्ट्वा देहावलम्बनम् ।
मायाह कर्त्तुमिच्छन्तं यन्मे तच्छृणु मोक्षदम् ॥ २८ ॥

(२८) नारदजी बोले,—देहध्वंस होनपर जीवने पुनः देह आश्रय करनेकी इच्छा की । उस समय मायाने जो कुछ कहा था, सो मैं कहता हूं,—श्रवण करो । इसके श्रवण करनेसे मुक्ति प्राप्त होती है ।

विन्ध्याद्रौ रमणी भूत्वा मायोवाच यथेच्छया ॥ २९ ॥

(२९) अपनी इच्छानुसार विन्ध्य पर्वतपर स्त्री रूप धारणकर मायाने कहा ।

मायोवाच-अहं माया मया त्यक्तः कथं जीवितुमिच्छसि

(३०) माया बोली,—मैं माया हूं । तुमको त्याग दिया है । तुम किस प्रकारसे जीवन धारण करनेकी इच्छा करते हो ।

जीवउ वाच-नाहं जीवाम्यहं माये कायेऽस्मिञ्जीवनाश्रये
अहमित्यन्यथाबुद्धिर्विना देहं कथं भवेत् ॥ ३१ ॥

(३१) जीवने कहा,-हे माये ! मैं नहीं जीवित रहूंगा। शरीरही जीवनका आश्रय है। "अहं" इस अभिमानसे भेद ज्ञानके बिना किस प्रकार देह धारण हो सकती है।

मायोवाच-देहबन्धे यथाश्लेषास्तथा बुद्धिः कथं तव ।
मायाधीनां विना चेष्टां विशिष्टां ते कुतो वद ॥ ३२ ॥

(३२) माया बोली,—"देह धारण करने पर जो भेद ज्ञाव होता है तो तुम्हारी बुद्धि इस समय वैसी क्यों होती है ? चेष्टा मायाके आधीन है। अब मायाके बिना तुम्हारी चेष्टा कैसे होती है ?

जीव उवाच-मां विना प्राज्ञता माये प्रकाशविषयस्पृहा

(३३) जीवने कहा,—हे माये ! मेरे बिना तुम्हारी प्राज्ञताका प्रकाश नहीं हो सकता और न विषयमें स्पृहा हो सकती है।

मायोवाच-मायया जीवति नरश्चेष्टते हतचेतनः ।
निःसारः सारवद्भाति गजभुक्तकपित्थवत् ॥ ३४ ॥

(३४) मायाने कहा,—जीव मायासेही जीवन धारण करता है। मायाके बिना जीव हाथीके खाये हुए कपित्थफलकी भांति निःसार जान पड़ता है।

जीव उवाच-मम संसर्गजाता त्वं नानानामस्वरूपिणी।
मां विनिन्दसि किं मूढे स्वैरिणी स्वामिनं यथा ॥३५॥

(३५) जीवने कहा,—हे मूढ़े ! तुमने हमारे संसर्गसे उत्पन्न होकर अनेक नाम और रूप धारण किये हैं। जैसे स्वैरिणी स्त्री स्वामीकी निन्दा करती है, वैसेही तू किस कारणसे हमारी निन्दा करती है।

ममाभावे तवाभावः प्रोद्यत्सूर्य्ये तमो यथा ।
मामावर्य्य विभासि त्वं रविंनवघनो यथा ॥ ३६ ॥

(३६) जैसे दिनमणिके उदय होनेपर अन्धकार नहीं रहता, वैसेही हमारे अभावसे तुम्हारा भी अभाव होता है। जैसे नव नीरद सूर्य्यको ढककर प्रकाशमान होता है, वैसेही तुम भी हमको ढककर शोभायमान होती हो।

लीलाबीजकुशूलासि मम माये जगन्मये।
नाद्यन्ते मध्यतो भासि नानात्वादिन्द्रजालवत् ॥ ३७ ॥

(३७) हे माये! तुम लीलामय बीजकी भुस्सी रूप हो। तुम नानात्व होनेका कारण, जगत्की आदि अन्त एवं मध्यमें इन्द्रजालकी समान शोभायमान हो।

एवं निर्विषयं नित्यं मनोव्यापारवर्ज्जितम्।
अभौतिकमजीवञ्च शरीरं वीक्ष्य सा त्यजत् ॥ ३८ ॥

(३८) इस प्रकार विषय, मानसिक व्यापार एवं अभौतिक जीवनरहित शरी, रको देखकर मायाने उसको त्याग दिया।

त्यक्त्वा मां सा ददौ शापमिति लोके तवाप्रिय।
न स्थितिर्भविता काष्ठकुड्योपम कथञ्चन ॥ ३८ ॥

(३९) मायाने मुझको त्यागकर इस प्रकार शाप दिया, कि हे अप्रिय! तू काष्ठ-भित्तिकी समान अत्यन्त चेष्टाहीन होगा। इस पृथ्वीपर कभी किसी रूपमें तेरी स्थिति नहीं होगी।

सा माया तव पुत्रस्य कल्केर्विश्वात्मनः प्रभोः।
तां विज्ञाय यथाकामं चर गां हरिभावनः ॥ ४० ॥

(४०) नारदजी विष्णुयशसे बोले,—"हे देव! विश्वरूप, परम देवता तुम्हारे पुत्र कल्किजीसे इस मायाकी उत्पत्ति हुई है। तुम उस मायाका तत्त्व जानो एवं नारायणजीका ध्यान करते हुए इच्छानुसार पृथ्वीपर विचरण करो।

निराशो निर्ममः शान्तः सर्व्वभोगेषु निस्पृहः।
विष्णौ जगदिदं ज्ञात्वा विष्णुर्जगति वासकृत्।
आत्मनात्मानमावेश्य सर्व्वतो विरतो भव ॥ ४१ ॥

(४१) जब तुम आशा, ममताको त्याग दोगे, विषय भोगकी वासनाको जला-ञ्जलि देकर शान्तिरसमें अभिषेकित होओगे, तब जान सकोगे कि यह जगत् विष्णुजीके विराट् प्रभावसे स्थित है एवं भगवान विष्णुजी इस प्रत्यक्ष परिदृश्य-मान जगत्में प्रविष्ट हुए हैं। इस प्रकार ज्ञानका उदय होनेपर जीवात्माको पर-मात्मामें संयुक्तकर समस्त कामनाओंसे विरत होना उचित है।

एवं तं विष्णुयशसमामन्त्रय च मुनीश्वरौ ।
कल्किं प्रदक्षिणीकृत्य जग्मतुः कपिलाश्रमम् ॥ ४२ ॥

(४२) इस प्रकार विष्णुयशासे सम्भाषणकर कल्किजीकी प्रदक्षिणाकर दोनों महर्षि कपिलाश्रमको चले गये।

नारदेरितमाकर्ण्य कल्किं सुतमनुत्तमम् ।
नारायणं जगन्नाथं वनं विष्णुयशा ययौ ॥ ४३ ॥

(४३) नारदके मुखसे विष्णुयशने सुनाकि मेरे पुत्र कल्किजी जगन्नाथ नारायण हैं। पुत्रको नारायण सुनकर आप वनको चले गये।

गत्वा बदरिकारण्यं तपस्तप्त्वा सुदारुणम् ।
जीवं बृहति संयोज्य पूर्णस्तत्याज भौतिकम् ॥ ४४ ॥

(४४) विष्णुयशाजी आगे बदरिकाश्रम गये। वहां दारुण तपकर आत्माको परब्रह्ममें सम्मिलित किया। आगे पूर्ण स्वरूप हो पञ्चभूत सङ्गठित शरीरको त्याग किया।

मृतं स्वामिनमालिङ्ग्य सुमतिः स्नेहविक्लवा ।
विवेश दहनं साध्वी सुवेशैर्दिवि संस्तुता ॥ ४५ ॥

(४५) मुनियोंके मुखसे पिता माताके स्वर्गवासका सम्वाद सुनकर कल्किजीके नेत्र स्नेहजल पूर्ण होगये। आपनेउनकी श्राद्धादि क्रिया की।

कल्किः श्रुत्वा मुनिमुखात्पित्रोर्निर्याणमीश्वरः ।
सबाष्पनयनं स्नेहात्तयोः समकरोत्क्रियाम् ॥ ४६॥

(४६) स्वामि प्रेमसे विवश पतिव्रता सुमतिने मृतक पतिको हृदयमें लगा-अग्निमें प्रवेश किया। देवलोकमें देवतागण श्रेष्ठवस्त्र धारणकर उनकी स्तुति करने लगे।

पद्मया रमया कल्किः शम्भले सुरवाञ्छिते ।
चकार राज्यं धर्म्मात्मा लोकवेदपुरस्कृतः ॥ ४७ ॥

(४७) लोकाचार एवं वेदाचार करनेवाले धर्म्मात्मा कल्किजी देव सुपूजित शम्भलग्राममें रमा और पद्माके साथ राज्य पालन करने लगे।

महेन्द्रशिखराद्रामस्तीर्थपर्य्यटनाहृतः ।
प्रायात्कल्केर्दर्शनार्थं शम्भलं तीर्थतीर्थकृत् ॥ ४८ ॥

(४८) तीर्थं पवित्र करनेवाले परशुरामजी तीर्थं पर्य्यटन करते हुए महेन्द्र पर्व्वतं शिखरसे उतरकर कल्किजीके दर्शन करनेको शम्भलग्राम आये।

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय पद्मया रमया सह ।
कल्किः प्रहर्षो विधिवत्पूजाञ्चक्रे विधानवित् ॥ ४९ ॥

(४९) परशुरामजीको देखतेही विधानवित् कल्किजीने आनन्द पूर्व्वक पद्मा और रमा सहित सिंहासनसे उठकर उनकी विधिवत् उपासना की ।

नानारसैर्गुणमयैर्भोजयित्वा विचित्रिते ।
पर्य्यङ्केऽनर्कवस्त्राढ्ये शाययित्वा मुदं ययौ ॥ ५० ॥

(५०) आपने परशुरामजीको उत्तम गुणकारी अनेक रसीले द्रव्योंसे भोजन कराकर अमूल्य वस्त्रवाले विचित्र पर्य्यङ्क पर शयन कराया ।

तं भुक्तवन्तं विश्रान्तं पादसंवाहनैर्गुरुम् ।
संतोष्य विनयापन्नः कल्किर्मधुरमब्रवीत् ॥ ५१ ॥

(५१) गुरु परशुरामजी भोजन करके विश्राम करते हैं। इसी समय कल्किजी पांवपलोट उन्हें सन्तुष्टकर विनय पूर्ण नम्रतासे मधुर वचन बोले ।

तव प्रसादात्सिद्धं मे गुरौ त्रैवर्गिकञ्च यत् ।
शशिध्वजसुतायास्तु शृणु राम निवेदितम् ॥ ५२ ॥

(५२) हे गुरो ! आपके प्रसादसे हमारे अर्थ, धर्म्म, काम तीनों वर्ग सिद्ध हो गये हैं । इस समय शशिध्वज तनया रमाका एक निवेदन है,—श्रवण कीजिये ।

इति पतिवचनं निशम्य राम निजहृदयेप्सितपुत्रलाभमिष्टम् ।
व्रतजपनियमैर्यमैश्च कैर्वा मम भवतीह मुदाह जामदग्न्यम् ५३

(५३) पतिके यह वचन सुनकर रमाने हर्षित चित्त हो परशुरामजीसे पूंछा— किस प्रकारसे यम, नियम, जप एवं व्रतादिका अनुष्ठान करनेसे मैं अपनी इच्छानुसार पुत्र प्राप्तकर सकती हूं ।

इति श्रीसानुवादे कल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे विष्णुयशसो मोक्षे रामदर्शनं नाम षोडस अध्याय ।

तृतीयांशः ।

सप्तदश-अध्याय ।

सूतउवाच ।

जामदग्न्यः समाकर्ण्य रमां तां पुत्रगर्द्धिनीम् ।
कल्केरभिमतं बुद्ध्वाकारयद्रुक्मिणीव्रतम् ॥ १ ॥

(१) सूतजी बोले,—रमाकी पुत्रअभिलाषा देख एवं कल्किजीके अभिप्रायको जानकर परशुरामजीने इसे रुक्मिणी-व्रत कराया ।

व्रतेन तेन च रमा पुत्राढ्या सुभगा सती ॥
सर्व्वभोगेन संयुक्ता बभूव स्थिरयौवना ॥ २ ॥

(२) उस व्रतके प्रभावसे सती रमा पुत्रवती, सौभाग्यवती, सर्व भोग युक्त एवं स्थिर यौवना हुई ।

शौनक उवाच—विधानं ब्रूहि मे सूत व्रतस्यास्य च यत्फलम्
पुरा केन कृतं धर्म्यं रुक्मिणीव्रतमुत्तमम् ॥ ३ ॥

(३) शौनक बोले,—हे सूत ! इस रुक्मिणी व्रतका विधान कैसा है ? फल कैसा है ? एवं किसने इस परम श्रेष्ठ व्रतको किया था ? आप वर्णन करें ।

सूत उवाच—शृणु ब्रह्मन्राजपुत्री शर्म्मिष्ठा वार्षपर्वणी ।
अवगाह्य सरोनीरं सोमं हरमपश्यत ॥ ४ ॥

(४) सूतजी बोले,—हे ब्रह्मन् ! मैं कहता हूं, श्रवण कीजिये । वृषपर्वा नामक दानवनाथकी एक शर्म्मिष्ठा नामक कन्या थी । एक समय वह सरोवरके जलमें प्रवेशकर विहार करती थी । इसी समय उमा सहित भगवान महेश्वरको देखा ।

सा सखीभिः परिवृता देवयान्या च संगता ।
शम्भुभीतया समुत्थाय पर्य्यधुर्वसनं द्रुतम् ॥ ५ ॥

(५) शर्म्मिष्ठा, उसकी सखियां एवं देवयानी उनको देखकर भयभीत हुई । सब सरोवरसे निकल तटपर अपने अपने वस्त्र पहिनने लगीं ।

तत्र शुक्रस्य कन्याया वस्त्रवत्ययमात्मनः ।
संलक्ष्य कुपिता प्राह वसनं त्यज भिक्षुकि ॥ ६ ॥

(६) उस समय शीघ्रताके कारण देवताओंके गुरु शुक्राचार्य्यकी कन्या देवयानीने अपने वस्त्रोंके धोखेसे शर्म्मिष्ठाके वस्त्र पहिन लिये। वस्त्रका परिवर्त्तन देखकर शर्म्मिष्ठाने कुपित होकर कहा,—हे देवयानी ! हे भिक्षुकि ! ! हमारे वस्त्र त्याग।

इति दानवकन्या सा दासीभिः परिवारिता ।
तां तस्या वाससा बद्ध्वा कूपे क्षिप्त्वा गता गृहम् ॥ ७ ॥

(७) आगे दानव राज तनया शर्म्मिष्ठा दासियोंके साथ देवयानीको वस्त्रोंसे बांध निकटके कूपमें डालकर घरको चली गई।

तां मग्नां रुदतीं कूपे जलार्थी नहुषात्मजः ।
करे स्पृश्य समुद्धृत्य प्राह का त्वं वरानने ॥ ८ ॥

(८) देवयानी कूपमें गिरकर रोने लगी। इसी समय नहुषके पुत्र राजा ययाति जल पीनेके लिये वहां पहुंचे। देवायानीको हाथसे पकड़ उठाकर आपने कहा "हे वरानने ! तुम कौन हो ?"

सा शुक्रपुत्री वसनं परिधाय ह्रिया भिया ।
शर्म्मिष्ठायाः कृतं सर्वं प्राह राजानमीक्षती ॥ ९ ॥

(९) शुक्र तनयाने वस्त्र पहनकर लज्जा एवं भयसे राजाकी ओर देख शर्म्मिष्ठाकी सारी करतूत कह सुनाई।

ययातिस्तदभिप्रायं ज्ञात्वानुव्रज्य शोभनम् ।
आश्वास्य तां ययौ गेहं तस्याः परिणयाहृतः ॥ १० ॥

(१०) पुनः उसके अभिप्रायको जान राजा ययातिने देवयानीके पाणिग्रहण करनेकी अभिलाष की। कुछ दूरतक साथ जाकर भली भांति उसको समझा बुझा आप अपने गृहको चले गये।

सा गत्वा भवनं शुक्रं प्राह शर्म्मिष्ठया कृतम् ।

तच्छ्रुत्वा कुपितं विप्रं वृषपर्वाह सान्त्वयन् ॥ ११ ॥

(११) देवयानीने घरपर पहुंचकर अपने पिता शुक्राचार्य्यसे शर्म्मिष्ठाका समस्त व्यवहार कहा। वे इस वृत्तान्तको सुनकर कुपित हुए। उस समय दैत्योंके राजा वृषपर्वाने उनको समझाया।

दण्डयं मां दण्डय विभो कोपो यद्यस्ति ते मयि।
शर्म्मिष्ठां वाऽप्यपकृतां कुरु यन्मनसेप्सितम् ॥ १२ ॥

(१२) हे विभो! यदि मुझपर आपका क्रोध हुआ हो, और मैं दण्डके योग्य होऊं, एवं आप अपकारिणी शर्म्मिष्ठापर क्रोधित हों तो इच्छानुसार दण्ड देवें।

राजानं प्रणतं पादे पितुर्दृष्ट्वा रुषाब्रवीत्।
देवयानी त्वियं कन्या मम दासी भवत्विति ॥ १३ ॥

(१३) अपने पिता शुक्राचार्य्यके चरणोंमें दैत्यराजको गिरे हुये देख देवयानीने क्रोधित होकर कहा,—आपकी यह कन्या हमारी दासी हो जाय।

समानीय तदा राजा दास्ये तां विनियुज्य सः।
ययौ निजगृहं ज्ञानी दैवं परमकं स्मरन् ॥ १४ ॥

(१४) ज्ञानी राजाने दैवगतिको परम बलवान जान शर्म्मिष्ठाको ला देवयानीकी दासी बना दिया। आप अपने गृहको चला गये।

ततः शुक्रस्तमानीय ययातिं प्रतिलोमकम्।
तस्मै ददौ तां विधिवद्देवयानीं तया सह ॥ १५ ॥

(१५) पुनः शुक्राचार्य्यने राजा ययातिको बुला प्रतिलोम विवाहके अनुसार विधि विधानसे देवयानीको दान किया। देवयानीके साथ उसकी दासी शर्म्मिष्ठा भी दीगई।

दत्त्वा प्राह नृपं विप्रोऽप्येनां राजसुतां यदि।
शयने ह्वयसे सद्यो जरा त्वामुपभोक्ष्यति ॥ १६ ॥

(१६) राजकुमारी शर्म्मिष्ठाको समर्पण करनेके समय शुक्राचार्य्यने राजासे कहा,—यदि तुम इस कन्याको शयन भवनमें बुलाओगे तो तत्काल तुम जरावस्थाको प्राप्त होगे।

शुक्रस्यैतद्वचः श्रुत्वा राजा तां वरवर्णिनीम्।
अदृश्यां स्थापयामास देवयान्यनुगां प्रिया ॥ १७ ॥

(१७) शुक्राचार्य्यके यह वचन सुन राजा ययातिने भयभीत हो देवयानीकी सहेली परम रूपवती शर्मिष्ठाको ऐसे स्थानमें रखा जहां उसपर अपनी दृष्टि न पड़े।

सा शर्म्मिष्ठा राजपुत्री दुःखशोकभयाकुला।
नित्यं दासीशताकीर्णा देवयानीन्तु सेवते ॥ १८ ॥

(१८) दुःखित, शोकसे सन्तापित, भयसे आकुल वह राजकुमारी शर्मिष्ठा प्रतिदिन शत दासियोंके साथ देवयानीकी सेवा करने लगी।

एकदा सा वनगता रुदती जाह्नवीतटे।
विश्वामित्रं मुनिं सा तं ददृशे स्त्रीभिरावृतम् ॥ १९ ॥

(१९) एक समय गंगातटपर वनमें बैठी हुई शर्मिष्ठा रुदन कर रही थी। इतनेमें स्त्रियोंसे घिरे हुए महर्षि विश्वामित्रजीको देखा।

व्रतिनं पुण्यगन्धाभिः सुरूपाभिः सुवासितम्।
कारयन्तं व्रतं माल्यधूपदीपोपहारकैः ॥ २० ॥

(२०) महर्षिजी स्वयं व्रतधारी एवं सुगन्धित पदार्थोंसे भूषित हैं। पवित्र गन्ध वाली परम रूपवती स्त्रियां उनके चारों ओर बैठी हैं। महर्षि विश्वामित्रजी धूप, दीप, माल्य एवं अनेक प्रकारके उपहारोंसे इन स्त्रियोंको व्रत करा रहे हैं।

निर्म्मायाष्टदलं पद्मं वेदिकायां सुचिह्नितम्।
रम्भापोतैश्चतुर्भिस्तु चतुष्कोणं विराजितम् ॥ २१ ॥

(२१) विश्वामित्रजीने वेदिकाके ऊपर अष्टदलका पद्म बनाया है। वेदीके चार कोणोंमें चार कदलीके वृक्ष लगे हैं।

वाससा निर्मितगृहे स्वर्णपट्टैर्विचित्रिते।
निर्मितं श्रीवासुदेवं नानारत्नविघट्टितम् ॥ २२ ॥

(२२) वस्त्र निर्मित गृहके भीतर सुवर्णके बने हुए चौकीपर मणि जटित एवं सुघटित वासुदेवजीकी मनोहर मूर्त्ति विराजमान थी।

पौरुषेण च सूक्तेन नानागन्धोदकैः शुभैः।
पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैर्यथामन्त्रैर्द्विजेरितैः ॥ २३ ॥
स्नापयित्वा भद्रपीठे कर्णिकायां प्रपूजयेत्।
पञ्चभिर्दशभिर्वापि षोडशैरुपचारकैः ॥ २४ ॥

(२३-२४) पुरुष सूक्त पढ़कर अनेक मनोहर सुगन्धित जल, पञ्चामृत, पञ्चगव्य एवं ब्राह्मण द्वारा उच्चारित यथोक्त मंत्रसे भद्रपीठमें कर्णिकाके ऊपर श्रीवासुदेवजीको स्थापित कराके सोलह, पन्द्रह अथवा दश उपचारोंसे पूजा की।

पाद्यमध्वश्रमहरं शीतलं सुमनोहरम्।
परमानन्दजनकं गृहाण परमेश्वर ॥ २५ ॥

(२५) हे परमेश्वर! तुम्हारी मार्ग थकावटको दूर करनेके लिये यह परम प्रीतिकारी शीतल एवं सुन्दर पाद्य है, इसको ग्रहण करो।

दूर्वाचन्दनगन्धाढ्यमर्घ्यं युक्तं प्रयत्नतः।
गृहाण रुक्मिणीनाथ प्रसन्नस्य मम प्रभो ॥ २६ ॥

(२६) हे रुक्मिणी वल्लभ! हे वासुदेव!! यत्न सहित इस दुर्वायुक्त चन्दन चर्चित अर्घ्यको स्थापित किया है। हे प्रभो! प्रसन्न होकर इसे ग्रहण कीजिये।

नानातीर्थोद्भवं वारि सुगन्धि सुमनोहरम्।
गृहाणाचमनीयं त्वं श्रीनिवास श्रिया सह ॥ २७ ॥

(२७) हे कमलापते! अनेक तीर्थोंका पवित्रजल संग्रह किया है। लक्ष्मीसह इस मनोहर सुगन्धित जलको अपने आचमनीय स्वरूपसे ग्रहण कीजिये।

नानाकुसुमगन्धाढ्यं सूत्रग्रथितमुत्तमम्।
वक्षःशोभाकरं चारु माल्यं नय सुरेश्वर ॥ २८ ॥

(२८) हे सुरेश्वर! अनेक प्रकारके सुगन्धित फूलोंकी माला गूंथी है। यह माला तुम्हारे वक्षःस्थलकी शोभा बढ़ावेगी। हे देव! इस शोभायमान मालाको ग्रहण करो!

तन्तुसन्तानसन्धानरचितं बन्धनं हरे।

गृहाणावरणं शुद्धं निरावरण सप्रिय ॥ २९ ॥

(२९) हे हरे! आपको कोई नहीं ढक सकता। तथापि आप अपनी प्यारी लक्ष्मी सह सूक्ष्म सन्धानसे रचित इन शुद्ध आवरण वस्त्रको ग्रहण करें।

यज्ञसूत्रमिदं देव! प्रजापतिविनिर्मितम्।
गृहाण वासुदेव त्वं रुक्मिण्या रमया सह ॥ ३० ॥

(३०) हे देव! प्रजापतिने इस यज्ञ सूत्रको बनाया है। आप और आपकी भार्य्या रुक्मिणी एवं लक्ष्मीजी इस यज्ञोपवीतको ग्रहण करें।

नानारत्नसमायुक्तं स्वर्णमुक्ताविघट्टितम्।
प्रियया सह देवेश गृहाणाभरणं मम ॥ ३१ ॥

(३१) हे देवताओंके स्वामी! यह मोतियोंसे जटित, सुवर्ण निर्म्मित, रत्नमय आभरणोंको भार्य्यासह ग्रहण कीजिये।

दधिक्षीरगुडान्नादिपूपलड्डुकखण्डकान्।
गृहाण रुक्मिणीनाथ सनाथं कुरु मां प्रभो ॥ ३२ ॥

(३२) हे रुक्मिणी वल्लभ! दधि, दूध, गुड़, अन्न, पुआ, लड्डू एवं खांड आदि ग्रहण करके मुझ अनाथको सनाथ कीजिये।

कर्पूरागुरुगन्धाढ्यं परमानन्ददायकम्।
धूपं गृहाण वरद वैदर्भ्या प्रियया सह ॥ ३३ ॥

(३३) हे वरद परमानन्द देनेवाली, कपूर एवं अगर गन्धयुक्त इस धूपको रुक्मिणी सह ग्रहण कीजिये।

भक्तानां गेहशक्तानां संसारध्वान्तनाशनम्।
दीपमालोकय विभो! जगदालोकनादर ॥ ३४ ॥

(३४) हे भगवान्! तुम संसार विलासी भक्तोंके संसारी अन्धकारको दूर करने वाले हो। तुम समस्त संसारको आदर सहित आलोकित कर रहे हो। इस दीपकपर नेत्रोंका सञ्चार करो।

श्यामसुन्दर! पद्माक्ष! पीताम्बर! चतुर्भुज!।

प्रपन्नं पाहि देवेश रुक्मिण्या सहिताच्युत ॥ ३५ ॥

(३५) हे पद्म पलाश लोंचन ! हे श्यामसुन्दर ! हे पीताम्बर ! हे देव देव ! हे चतुर्भुज आप और भगवती रूक्मिणीजी हमपर प्रसन्न होवें । हमारी रक्षा करें ।

इति तासां व्रतं दृष्ट्वा मुनि नत्वा सुदुःखिता ।
शर्म्मिष्ठा मिष्टवचना कृताञ्जलिरुवाच ताः ॥ ३६ ॥

(३६) स्त्रियोंके इस व्रतको देखकर दुःखित शर्म्मिष्ठाने महर्षिजीको प्रणाम किया । आगे हाथ जोड़ मीठे वचनोंसे बोली ।

शर्म्मिष्ठोवाच-राजपुत्रीं दुर्भगां मां स्वामिना परिवर्ज्जिताम्
त्रातुमर्हथ हे देव्यो व्रतेनानेन कर्म्मणा ॥ ३७ ॥

(३७) शर्म्मिष्ठा बोली,—"हे देवियों ! मैं अत्यन्त अभागिनी हूं । मैं राजकुमारी थी । भाग्य दोषसे पति संगसे वर्जित हूं । इस व्रतका अनुष्ठान किस प्रकार होता है ? आप सब उपदेश करके हमारी रक्षा करें ।

श्रुत्वा तु ता वचस्तस्याः कारुण्याच्च कियत्कियत् ।
पूजोपकरणं दत्त्वा कारयामासुरादरात् ॥ ३८ ॥

(३८) शर्मिष्ठाके यह वचन सुनकर स्त्रियोंने दयावश कुछ कुछ पूजाकी सामग्री दे आदर सहित उससे वह व्रत कराया ।

व्रतं कृत्वा तु शर्मिष्ठा लब्ध्वा स्वामिनमीश्वरम् ।
सूत्वा पुत्रान्सुसन्तुष्टा समभूत्स्थिरयौवना ॥ ३९ ॥

(३९) शर्म्मिष्ठा व्रत कर अपने प्यारे पतिको पा पुत्रवती और स्थिर यौवना हुई ।

सीता चाशोकवनिकामध्ये सरमया सह ।
व्रतं कृत्वा पतिं लेभेरामं राक्षसनाशनम् ॥ ४० ॥

(४०) सीता और सरमानें अशोकवनमें इस व्रतको किया था । उसी पुण्य फलसे पुनः जानकीजी राक्षसोंके विनाश करनेवाले रामचन्द्रजीसे मिली थीं ।

वृहदश्वप्रसादेन कृत्वेमं द्रौपदी व्रतम् ।

पतियुक्ता दुःखमुक्ता बभूव स्थिरयौवना ॥ ४१ ॥

(४१) बृहदश्वके प्रसादसे द्रौपदी इस व्रतको कर पतियुक्त हो दुःखसे छूट स्थिरयौवना हुई थी।

तथा रमा सिते पक्षे वैशाखे द्वादशीदिने।
जामदग्न्याद्व्रतं चक्रे पूर्णं वर्षचतुष्टयम् ॥ ४२ ॥

(४२) रमाने वैशाखमास शुक्लपक्ष द्वादसी तिथिके दिन परशुरामजीको पुरोहित बनाकर रुक्मिणी व्रतको आरम्भ किया। चार वर्ष व्यतीत होनेपर रमाका रुक्मिणी व्रत पूर्ण होगया।

पट्टसूत्रं करे बद्ध्वा भोजयित्वा द्विजान्बहून्।
भुक्त्वा हविष्यं क्षीराक्तं सुमृष्टं स्वामिना सह ॥ ४३ ॥
बुभुजे पृथिवीं सर्वामपूर्वां स्वजनैर्वृता।
सा पुत्रौ सुषुवे साध्वी मेघमालबलाहकौ ॥ ४४ ॥

(४३-४४) रमाने हाथमें रेशम सूत्र बांधकर अनेक ब्राह्मणोंको भोजन कराया। अनन्तर उत्तम बना हुआ क्षीरयुक्त हविष्यान स्वामीके साथ भोजन कर निज जनोंसे युक्त हो अखण्ड पृथ्वीको भोगने लगी। आगे पतिव्रता रमाके दो पुत्र उत्पन्न हुए। एक पुत्रका नाम मेघमाल और दूसरे पुत्रका नाम बलाहक था।

देवानामुपकर्त्तारौ यज्ञदानतपोव्रतैः।
महोत्साहौ महावीर्य्यौ सुभगौ कल्किसम्मतौ ॥ ४५ ॥

(४५) यह दोनों सौभाग्यवान्, महापुरुष, दान, धर्म्म याग, यज्ञ, एवं तपादिका अनुष्ठान करके देवताओंका उपकार करते थे। इन अत्यन्त उत्साही दोनों पुत्रोंपर कल्किजी अति प्रसन्न थे।

व्रतवरमिति कृत्वा सर्वसम्पत्समृद्ध्या भवति विदितत्त्वा पूजिता पूर्णकामा। हरिचरणसरोजद्वन्द्वभक्त्यैकताना व्रजति गतिमपूर्वां ब्रह्मविद्भिरगम्याम् ॥४६॥

(४६) जो लोग इस व्रतका अनुष्ठान करते हैं, वे सब प्रकारसे सुख सम्पत्ति एवं समृद्धिको प्राप्त होते हैं। उनके सब प्रकारके अभीष्ठ सिद्ध होते हैं। ब्रह्म

ज्ञानका उदय होता है। हरि चरण कमलमें एकान्त मनसे भक्ति होती है। महर्षियोंकी अगम्य अपूर्व एवं श्रेष्ठगति को पाते हैं।

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे रुक्मिणीव्रतं नाम सप्तदश अध्याय ॥ १७ ॥

तृतीयांशः ।

अष्टदश-अध्याय ।

सूतउवाच ।

एतद्वः कथितं विप्रा व्रतं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
अतःपरं कल्किकृतं कर्म्म यच्छृणुत द्विजाः ॥ १ ॥

(१) सूतजी बोले,—"हे ब्राह्मणगण ! यह त्रिलोकी विख्यात रुक्मिणी व्रत मैंने आप लोगोंसे कहा। तदनन्तर कल्किजीने जो कर्म्म किये थे सो कहता हूं। श्रवण कीजिये।

शम्भले वसतस्तस्य सहस्रपरिवत्सराः ।
व्यतीता भ्रातृपुत्रस्वज्ञातिसम्बन्धिभिः सह ॥ २ ॥

(२) इस प्रकार कल्किजीने भ्राता, पुत्र, जाति, सम्बन्धी एवं स्वजनोंके सहित एक सहस्र वर्षतक शम्भल ग्राममें वास किया।

शम्भले शुशुभे श्रेणी सभापणकचत्वरैः ।
पताकाध्वजचित्राढ्यैर्यथेन्द्रस्यामरावती ॥ ३ ॥

(३) ध्वजा पताका विभूषित शम्भल नगरी अपने चौराहोंकी शोभासे इन्द्रकी अमरावतीके समान सुशोभित हुई।

यत्राष्टषष्टितीर्थानां सम्भवः शम्भलेऽभवत् ।
मृत्योर्मोक्षः क्षितौ कल्केरकल्कस्य पदाश्रयात् ॥ ४ ॥

(४) इस शम्भल ग्राममें अड़सठ तीर्थोंका निवास हुआ। अकलंक कल्किजीके प्रभावसे शम्भल नगरमें मृत्यु होनेपर मोक्षकी प्राप्ति होने लगी।

वनोपवनसन्ताननानाकुसुमसंकुलैः।
शोभितं शम्भलं ग्रामं मन्ये मोक्षपदं भुवि ॥ ५ ॥

(५) बन उपवनादि अनेक प्रकारके कमनीय पुष्पोंसे सुसज्जित हुए। रमणीय शम्भल नगरी पृथ्वीमें मोक्षप्रद गिनी गई।

तत्र कल्किः पुरस्त्रीणां नयनानन्दवर्द्धनः।
पद्मया रमया कामं रराम जगतीपतिः ॥ ६ ॥

(६) पुरस्त्रियोंके नेत्रोंके आनन्ददाता जगन्नाथ कल्किजी इस शम्भलग्राममें पद्मा और रमाके साथ अभिलाषानुसार क्रीडा करने लगे।

सुराधिपप्रदत्तेन कामगेन रथेन वै।
नदीपर्व्वतकुञ्जेषु द्वीपेषु परया मुदा ॥ ७ ॥
रममाणो विशन्पद्मारमाद्याभीरमापतिः।
दिवानिशं न बुबुधे स्त्रैणश्च कामलम्पटः ॥ ८ ॥

(७-८) परम प्रसन्न हृदय कल्किजी इन्द्र प्रदत्त कामगामी रथपर आरोहित हो नदी, पर्व्वत, कुंज और द्वीपोंमें रमा पद्मा आदि कामिनियोंके साथ विहार करने लगे। काम लम्पट स्त्रैण रमापतिको दिन रात्रिका विचार न रहा।

पद्मामुखामोदसरोजशीधुवासोपभोगी सुविलासवासः।
प्रभूतनीलेन्द्रमणिप्रकाशे गुहाविशेषे प्रविवेश कल्किः ॥९॥

(९) एक समय पद्माके मुखामोद कमल मधु गन्ध भोग करने वाले कल्किजीने एक पार्वती गुहामें प्रवेश किया। गुहा अनेक नीलेन्द्र मणियोंसे सुशोभित थी।

पद्मा तु पद्माशतरूतरूपा रमा च पीयूषकलाविलासा।
प्रति प्रविष्टं गिरिगह्वरे ते नारीसहस्राकुलिते त्वगाताम् ।१०।

(१०) कमलके समान सुवर्ण रंगवाली पद्मा एवं अमृत पात्ररूपा रमा दोनों स्त्रियोंने सहस्र दासियोंके साथ उसी गुहामें प्रवेश किया।

पद्मा पतिं प्रेक्ष्य गुहानिविष्टं रन्तुं मनोज्ञा प्रविवेश पश्चात्
रमाबलायूथसमन्विता तत्पश्चाद्गता कल्किमहोग्रकामा

(११) मनोहारिणी पद्मा अपने पतिको गुहामें प्रवेश करते हुए देख विहार करनेकी अभिलाषासे पतिके पीछे पीछे गुफामें गई। कल्किजीके साथ अधिक विहार करनेकी अभिलाषासे रमाने भी स्त्रियोंके साथ उनके पीछे पीछे प्रवेश किया।

तत्रेन्द्रनीलोत्पलगह्वरान्ते कान्ताभिरात्मप्रतिमाभिरीशम्।
कल्किञ्च दृष्ट्वा नवनीरदाभं ततः स्थितं प्रस्तरवन्मुमोह ॥१२॥

(१२) भीतर जाकर पद्मावतीने देखा कि इन्द्र नीलेन्द्र मणिमय गुहाके बीच नवीन नीरदकी भांति कान्तिमान ईश्वर कल्किजी अपनी समान रूपवती स्त्रियोंके साथ विराजमान हैं। यह कौतुक देख पद्मा मोहसे चेष्टाहीन पत्थरकी भांति पृथ्वीपर गिर पड़ी।

रमा सखीभिः प्रमदाभिरार्त्ता विलोकयन्ती दिशमाकुलाक्षी
पद्मापि पद्माशतशोभमाना विषण्णचित्ता न बभौ स्म चार्त्ता

(१३) रमा कातर हृदय व्याकुल सखियोंके साथ चारों ओर देखने लगी। पद्मा भी शत पद्माकी समान शोभायमान स्त्रियोंको देख शोकित और कातर हृदय हो एक बारही प्रभाहीन होगई।

भूमौ लिखन्ती निजकज्जलेन कल्किं शुकं तं कुचकुंकुमेन।
कस्तूरिकाभिस्तु तदग्रमग्रे निर्म्माय चालिङ्ग्य ननाम भावात्

(१४) पद्मा अपने नेत्रोंके काजलसे भूमिको अंकित करने लगी। वह कल्किजी और शुकको कुच कुंकुमसे एवं निकटकी भूमिको कस्तूरीसे धूसरित करके उसपर गिर पड़ी।

रमा कलालापपरा स्तुवन्ती कामार्द्दिता तं हृदये निधाय
ध्यात्वा निजालङ्करणैः प्रपूज्य तस्थौ विषण्णा करुणावसन्ना

(१५) मधुरालापिनी मदन-भारसे दुःखित रमाने हृदयमें कल्किजीका ध्यान किया, अन्तःकरण रूपी पुष्पोंसे पूजन किया, आगे दुःखभारसे संतप्त और शोकित हो गिर पड़ी।

क्षणात्समुत्थाय रुरोद रामा कलापिनः कण्ठनिभं स्वनाधम्।
हृदोपगूढं न पुनः प्रलभ्य कामाद्धितेत्याह हरे प्रसीद ॥१६॥

(१६) क्षण भरके पश्चात उठकर रमाने ऊंचे स्वरसे रुदन करना आरम्भ किया। कल्किजीका आलिङ्गन अपने हृदयमें नहीं पाकर कामातुर हो वह कहने लगी,—हे नारायण प्रसन्न हो!

पद्मापि निर्मुच्य निजाङ्गभूषाश्चकार धूलीपटले विलासम्।
कण्ठञ्च कस्तूरिकयापि नीलं कामं निहन्तुं शिवतामुपेत्य १७

(१७) पद्मा भी अपने अंगके शृङ्गारको त्यागकर धूलमें लोटने लगी। पद्माका कण्ठ कस्तूरीसे नीलवर्ण होकर ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानो उसने कामदेवको विनाश करनेके निमित्त शिवरूप धारण किया है।

कलावतीनां कलयाकलय्य क्षीणेक्षणानां हरिरार्त्तबन्धुः।
कामप्रपूराय ससार मध्ये कल्किः प्रियाणां सुरतोत्सवाय १८

(१८) कातर लोचना प्यारी विलासिनियोंकी विहार वासनाको पूर्ण करने एवं सुरति उत्सवके निमित्त दीनबन्धु नारायणजी उनके मध्य प्रगट होगये।

ताः सादरेणात्मपतिं मनोज्ञाः करेणवो यूथपतिं यथेयुः।
सानन्दभावा विषदानुवृत्ता वनेषु रामाः परिपूर्णकामा॥१९

(१९) जिस प्रकार हथिनियां यूथपति हाथीके समीप गमन करती हैं, उसी प्रकार वह स्त्रियां अत्यन्त प्रसन्न हो आनन्दित हृदय कल्किजीके निकट आईं। उनका शोक सन्ताप दूर होगया। बनमें रामा परिपूर्णकाम हुई।

वैभ्राजके चैत्ररथे सुपुष्पे सुनन्दने मन्दरकन्दरान्ते।
रेमे स रामाभिरुदारतेजा रथेन भास्वत्खगमेन कल्किः॥२०॥

(२०) उदार चरित्र परम तेजस्वी कल्किजी, विमल प्रभावशाली आकाशगामी प्रकाशमान् रथपर आरोहित हो पद्मा, रमा आदि स्त्रियों केसाथ पुष्प शोभा शृङ्गारित वैभ्राजक, चैत्ररथ एवं नन्दन काननमें जाकर विहार करने लगे।

पद्मामुखाब्जामृतपानमत्तो रमासमालिङ्गनवासरङ्गी।
वरांगनानां कुचकुंकुमाक्तो रतिप्रसंगे विपरीतयुक्तः।

मुखे विदष्टा रसनावशिष्टामोदः स कल्किर्नहि वेद देहम् ॥२१॥

(२१) पद्माके कमलमुख मधुपानसे मत्त, रमाके आलिङ्गन वासनासे लालायित, कल्किजी वारांगनाओंके कुच कुङ्कुमसे लिपटकर विपरीत रति प्रसंगमें लिप्त हुए। स्त्रियां उनके मुखको काटने लगीं। आप प्यारियोंके अधरामृतको पान करके इतना विह्वल हुए कि शरीर बशमें न रहा।

रमाः समानाः पुरुषोत्तमं तं वक्षोजमध्ये विनिधाय धीराः।
परस्पराश्लेषणजातहासा रेमुर्मुकुन्दं विलसच्छरीराः॥ २२॥

(२२) समान रूपवाली धीर स्त्रियोंने पुरुषोत्तम मुकुन्दको अपने स्तनोंमें धारण कर क्रीड़ा करना आरम्भ किया। उनका पुलकित शरीर परस्पर श्लेष होनेसे सब हास्य करने लगीं।

ततः सरोवरं त्वरा स्त्रियो ययुः क्लमज्वराः।
प्रियेण तेन कल्किना वनान्तरे विहारिणा॥
सरः प्रविश्य पद्मया विमोह रूपया तया।
जलं ददुर्वराङ्गनाः करेणवो यथा गजम्॥ २३॥

(२३) श्रमसे थकी हुई स्त्रियां दूसरे वनमें विहार करनेवाले प्रिय कल्किजीके साथ शीघ्र सरोवर तीर गईं। जिस प्रकार हथनियां यूथपतिके अंगपर जल छिड़कती हैं, उसी प्रकार वे श्रेष्ठ स्त्रियां अनुपम रूपवती पद्माके साथ सरोवरमें स्नानकर कल्किजीके शरीरपर जल वर्षाने लगीं।

इति ह युवतिलीला लोकनाथः स कल्किः।
प्रिययुवतिपरीतः पद्मया रामयाद्यः।
निजरमणविनोदैः शिक्षयँल्लोकवर्गान्
जयति विबुधभर्त्ता शम्भले वासुदेवः॥ २४॥

(२४) जो युवतियोंके साथ लीलाकरनेवाले हैं, जो प्यारी रमा एवं अन्यान्य स्त्रियोंके साथ मिलकर अपने विहारादि विनोदसे समस्त लोगोंको उपदेश देनेवाले हैं, जो देवताओंके स्वामी हैं, जो आदिनाथ, लोकनाथ हैं, उन शम्भलग्रामके कल्किजी महाराजकी जयहो!

ये शृण्वन्ति वदन्ति भावचतुरा ध्यायन्ति सन्तः सदा

कल्केः श्रीपुरुषोत्तमस्य चरितं कर्णामृतं सादराः ।
तेषां नो सुखयत्ययं मुररिपोर्दास्याभिलाषं विना
संसारः परिमोचनञ्च परमानन्दामृताम्भोनिधेः ॥ २५ ॥

(२५) जो विचारवान् साधुगण श्रुति मार्गके अमृत स्वरूप भगवान् कल्कि-जीका यह चरितामृत आदर सहित श्रवण, कीर्तन एवं ध्यान करते हैं, उनके हृदयमें दास्यभाव मुरारि भगवानकी सेवाके अतिरिक्त अन्य किसी प्रीतिका संचार एवं सुखोदय नहीं होता, उनको ऐसा ज्ञात होता है कि, परम प्रिय अमृतमय संसारमुक्तिकी अपेक्षा अन्य कोई अधिक सुख नहीं है।

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे कल्किवर्णनं
नाम अष्टादश अध्याय ॥ १८ ॥

तृतीयांशः ।

ऊनविंश-अध्याय ।

सूतउवाच ।

ततो देवगणाः सर्वे ब्रह्मणा सहिता रथैः ।
स्वैः स्वैर्गणैः परिवृताः कल्किं द्रष्टुमुपाययुः ॥ १ ॥

(१) सूतजी बोले,—तदनन्तर देवता और ब्राह्मण सब मिलकर अपने अपने अनुचरों सहित रथारोहित हो कल्किजीके दर्शनके निमित्त आये।

महर्षयः सगन्धर्वाः किन्नराश्चाप्सरोगणाः ।
समाजग्मुः प्रमुदिताः शम्भलं सुरपूजितम् ॥ २ ॥

(२) महर्षि, गन्धर्व, किन्नर एवं अप्सरावृन्द सब हृदयमें आनन्दित हो देवता-ओंसे पूजित शम्भलग्राम आये।

तत्र गत्वा सभामध्ये कल्किं कमललोचनम् ।

तेजोनिधिं प्रपन्नानां जनानामभयप्रदम् ॥ ३ ॥

(३) सबने सभामें प्रवेशकर देखा कि तेजपुंज कमलनयन कल्किजी शरणागत जनोंको अभय प्रदान कर रहे हैं।

नीलजीमूतसंकाशं दीर्घपीवरबाहुकम्।
किरीटेनार्कवर्णेन स्थिरविद्युन्निभेन तम् ॥ ४ ॥

(४) कल्किजीकी कान्ति नीलनीरदकी समान है। बाहें दीर्घ और पुष्ट हैं। मस्तक, स्थिर सौदामिनी एवं सूर्य्यकी समान तेजपुञ्ज किरीटसे शोभायमान होरहा है।

शोभमानं द्युमणिना कुण्डलेनाभिशोभिना।
सहर्षालापविकसद्वदनं स्मितशोभिनम् ॥ ५ ॥

(५) सूर्यवत् प्रकाशमान कुण्डलोंसे: उनका वदनमण्डल विराजमान हो रहा है। हर्षकी वार्त्तासे मुख कमल प्रफुल्लित एवं मधुर मुस्कानसे शोभायमान हो रहा है।

कृपाकटाक्षविक्षेपपरिक्षिप्तविपक्षकम्।
तारहारोल्लसद्वक्षश्चन्द्रकान्तमणिश्रिया ॥ ६ ॥
कुमुद्वतीमोदवहं स्फुरच्छक्रायुधाम्बरम्।
सर्वदानन्दसन्दोहरसोल्लसितविग्रहम् ॥ ७ ॥

(६-७) आपकी कृपा कटाक्ष सञ्चालनसे शत्रु लोग अनुग्रहीत हो रहे हैं। वक्षमें मनोहर हारके बीच चन्द्रकान्त मणिकी कान्तिसे कुमुदनी प्रसन्न हो रही हैं। वस्त्र इन्द्र धनुषकी समान शोभा विस्तार कर रहे हैं। शरीर सदा आनन्द रससे हर्षित होरहा है।

नानामणिगणोद्योतदीपितं रूपमद्भुतम्।
ददृशुर्देवगन्धर्वा ये चान्ये समुपागताः ॥ ८ ॥

(८) देवता, गन्धर्व एवं अन्य समस्त आगन्तुकोंने कल्किजीका अद्भुत रूप अनेक प्रकारकी मणियोंसे प्रकाशमान देखा।

भक्त्या परमया युक्ताः परमानन्दविग्रहम्।
कल्किं कमलपत्राक्षं तुष्टुवुः परमादरात् ॥ ९ ॥

(९) वह सब परम भक्तिसे आदर पूर्व्वक परमानन्दमय कमल दल लोचन कल्किजीकी स्तुति करने लगे ।

देवा ऊचुः—जयाशेषसंक्लेशकक्षप्रकीर्णानलोद्दामसंकीर्णहीश देवेश विश्वेश भूतेश भावः। तवानन्त चान्तःस्थितोऽङ्घ्रिप्ररत्न प्रभाभातपादाजितानन्तशक्ते ॥ १० ॥

(१०) देवतागण बोले,—हे देव देव विश्वेश्वर ! हे भूतनाथ ! तुम अनन्त हो । तुममें समस्त भाव विराजमान हैं। हे भगवन् ! तुम प्रचण्ड अग्नि रूप हो। तुम्हारे कण मात्र स्पर्शसे इस संसारकी क्लेश राशि भस्म हो जाती है। तुम्हारे चरण कमलमें कान्ति जाल भासमान हो रहा है। तुम्हारे चरणोंसे अनन्तकी प्रबल शक्ति दब गई है । हे देव ! तुम्हारी जय हो ।

प्रकाशीकृताशेषलोकत्रयात्र वक्षःस्थले भास्वत्कौस्तुभ श्याम । मेघौघराजच्छरीरद्विजाधीशपुञ्जानन त्राहि विष्णो स दाराः वयं त्वां प्रसन्ना सशेषः ॥ ११ ॥

(११) हे जगदीश ! तुम्हारी श्यामवर्ण छातीमें प्रकाशमान् कौस्तुभ मणि विराजमान है। मणिकी किरण मालासे त्रिलोकी उज्वल होकर प्रकाशित हो रही है। ऐसा जान पड़ता है कि मानो पूर्ण चन्द्र मेघमालाके भीतर विराजमान हो रहा है। हे देव ! विपत्तिमें पड़कर स्त्री पुत्र और परिजनोंके सहित आपकी शरणमें आये हैं आप हमारी रक्षा करें ।

यद्यस्त्यनुग्रहोऽस्माकं व्रज वैकुण्ठमीश्वर ।
त्यक्त्वा शासितभूखण्डं सत्यधर्माविरोधतः ॥ १२ ॥

(१२) हे ईश्वर ! यदि हमपर आपकी कृपा है, तो सत्य धर्म्मसे अविरोधित शासित भूमण्डलको त्यागकर वैकुण्ठयात्रा कीजिये ।

कल्किस्तेषामिति वचः श्रुत्वा परमहर्षितः ।
पात्रमित्रैः परिवृतश्चकार गमने मतिम् ॥ १३ ॥

(१३) देवताओंका यह निवेदन सुनकर कल्किजी आनन्दित हुए और पात्रमित्रोंके सहित वैकुण्ठ जानेको इच्छुक हुए ।

पुत्रानाहूय चतुरो महाबलपराक्रमान् ।

राज्ये निक्षिप्य सहसा धर्मिष्ठान्प्रकृतिप्रियान् ॥ १४ ॥

(१४) कल्किजीने प्रजाके परम प्यारे, परम धार्म्मिक महाबली प्राक्रमी चारों पुत्रोंको बुलाकर उसी समय राज्यपदपर प्रतिष्ठित कर दिया ।

ततः प्रजाः समाहूय कथयित्वा निजाः कथाः ।
प्राह तान्निजनिर्याणं देवानामुपरोधतः ॥ १५ ॥

(१५) पुनः उन्होंने समस्त प्रजाको बुलाकर अपना वृत्तान्त सुनाया । कहा कि देवताओंके कहनेसे हमको वैकुण्ठ यात्रा करना पड़ेगी ।

तच्छ्रुत्वा ताः प्रजाः सर्वा रुरुदुर्विस्महान्विताः ।
तं प्राहुः प्रणताः पुत्रा यथा पितरमीश्वरम् ॥ १६ ॥

(१६) यह वचन सुन सारी-प्रजा विस्मित हो रूदन करने लगी । जिस प्रकार पुत्र पितासे कहते हैं, उसी प्रकार ईश्वरको प्रणाम करके कहने लगी ।

प्रजा ऊचुः—भो नाथ सर्वधर्मज्ञ नास्मान्त्यक्तुमिहार्हसि
यत्र त्वं तत्र तु वयं यामः प्रणतवत्सल ॥ १७ ॥

(१७) प्रजागण बोले,—हे नाथ ! आप सम्पूर्ण धर्म्म जानते हैं । हम सबको छोड़जाना आपको उचित नहीं हैं । आप प्रणत्वत्सल हैं ! जहां आप जायंगे वहीं हम भी जांयगे ।

प्रिया गृहा धनान्यत्र पुत्राः प्राणास्तवानुगाः ।
परत्रेह विशोकाय ज्ञात्वां त्वां यज्ञपूरुषम् ॥ १८ ॥

(१८) इस संसारमें धन, पुत्र और गृह सबको प्यारा है परन्तु आप यज्ञ पुरुष हैं । आपसे समस्त शोक दुःखकी शान्ति होती है । यह जानकर हमारे प्राण आपके अनुगामी हुआ चाहते हैं ।

इति तद्वचनं श्रुत्वा सान्त्वयित्वा सदुक्तिभिः ।
प्रययौ क्लिन्नहृदयः पत्नीभ्यां सहितो वनम् ॥ १९ ॥

(१९) प्रजाके ऐसे वचन सुनकर कल्किजीने उन्हें सदुपदेश देकर समझाया और आप शोकित मन दोनों भार्य्याओंके साथ वनको चले गये ।

हिमालयं मुनिगणैराकीर्णं जाह्नवीजलैः ।

परिपूर्णं देवगणैः सेवितं मनसः प्रियम् ॥ २० ॥
गत्वा विष्णुः सुरगणैर्वृतश्चारुचतुर्भुजः।
उषित्वा जाह्नवीतीरे सस्माराऽऽत्मानमात्मना ॥ २१ ॥

(२०-२१) पुनः कल्किजी गंगाजल पूर्ण, मुनि देवताओंसे सुसेवित अन्तःकरणको हर्ष देनेवाले हिमालय पर्व्वतपर देवताओंके साथ जाकर बैठे। चतुर्भुज विष्णु रूप धारणकर अपनेको स्मरण करने लगे।

पूर्णज्योतिर्मयः साक्षी परमात्मा पुरातनः।
बभौ सूर्यसहस्राणां तेजोराशिसमद्युतिः ॥ २२ ॥

(२२) सहस्र सूर्य्यकी समान उनका तेज प्रकाशित होने लगा। पूर्ण ज्योतिर्मय साक्षिस्वरूप सनातन परमात्मा दीप्तिमान होने लगे।

शंखचक्रगदापद्मशाङ्गाद्यैः समभिष्टुतः।
नानालङ्करणानाञ्च समलङ्करणाकृतिः ॥ २३ ॥

(२३) उनका आकार अनेक प्रकारके अलंकारोंका अलंकार रूप होगया। वह शंख, चक्र, गदा, पद्म, सारंगादि द्वारा सुपूजित होने लगे।

ववृषुस्तं सुराः पुष्पैः कौस्तुभामुक्तकन्धरम्।
सुगन्धि कुसुमासारैर्देवदुन्दुभिनिःस्वनैः ॥ २४ ॥

(२४) उनके हृदयमें कौस्तुभ मणि शोभायमान होने लगी। देवतागण उनपर सुगन्धित पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। चारों ओर देव दुंदुभि ध्वनि होने लगी।

तुष्टुवुर्मुमुहुः सर्वे लोकाः सस्थाणुजंगमाः।
दृष्ट्वा रूपमरूपस्य निर्याणे वैष्णवं पदम् ॥ २५ ॥

(२५) जब कल्किजीने विष्णुपदमें प्रवेश किया तब उन अरूप विष्णुजीका रूप दर्शनकर स्थावर जङ्गम समस्त प्राणी मोहित हो स्तुति करने लगे।

तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं पत्युः कल्केर्महात्मनः।
रमा पद्मा च दहनं प्रविश्य तमवापतुः ॥ २६ ॥

(२६) अपने स्वामी महात्मा कल्किजीका ऐसा अद्भुत रूप देख रमा और पद्मा अग्निमें प्रवेश कर उनमें लीन होगईं।

धर्मः कृतयुगं कल्केराज्ञया पृथिवीतले ।
निःसपत्नौ सुसुखिनौ भूलोकं चेरतुश्चिरम् ॥ २७ ॥

(२७) कल्किजीकी आज्ञानुसार धर्म्म और सत्ययुग पृथ्वीमें सपत्न रहित परम सुखसे चिरकालतक विचरण करने लगे।

देवापिश्च मरुः कामं कल्केरादेशकारिणौ ।
प्रजाः संपालयन्तौ तु भुवं जुगुपतुः प्रभू ॥ २८ ॥

(२८) प्रभु देवापि और मरू नामक दोनों भूपाल कल्किजीकी आज्ञानुसार प्रजापालनकर भूमण्डलकी रक्षा करने लगे।

विशाखयूपभूपालः कल्केर्निर्याणमीदृशम् ।
श्रुत्वा स्वपुत्रं विषये नृपं कृत्वा गतो वनम् ॥ २९ ॥

(२९) विशाखयूप भूपालने कल्किजीका इस प्रकार जाना सुनकर अपने पुत्रको राज्य दे वनकी यात्राकी।

अन्ये नृपतयो ये च कल्केर्विरहकर्षिताः ।
तंध्यायन्तो जपन्तश्च विरक्ताः स्युर्नृपासने ॥ ३० ॥

(३०) कल्किजीके विरहसे अन्यान्य राजागण भी कातर हुए वे भी राज-सिंहासनसे विरक्त हो केवल कल्किजीका नाम जपने लगे एवं उनकी मूर्त्तिका ध्यान करने लगे।

इति कल्केरनन्तस्य कथां भुवनपावनीम् ।
कथयित्वा शुकः प्रायान्नरनारायणाश्रमम् ॥ ३१ ॥

(३१) इसी प्रकार अनन्त कल्किजीकी जगत्पावन कथाको वर्णनकर शुक-देवजी नरनारायणाश्रमको चले गये।

मार्कण्डेयादयो ये च मुनयः प्रशमायनाः ।
श्रुत्वानुभावं कल्केस्ते तं ध्यायन्तो जगुर्यशः ॥ ३२ ॥

(३२) शान्ति गुणावलम्वी मार्कण्डेय आदि ऋषिगण कल्किजीका माहत्म्य सुन उनका ध्यानकर यशगान करने लगे ।

यस्यानुशासनाद्भूमौ नाधर्मिष्ठाः प्रजाजनाः ।
नाल्पायुषो दरिद्राश्च न पाखण्डा न हैतुकाः ॥ ३३ ॥
नाधयो व्याधयः क्लेशा देवभूतात्मसम्भवाः ।
निर्मत्सराः सदानन्दा बभूवुर्जीवजातयः ॥ ३४ ॥
इत्येतत्कथितं कल्केरवतारं महोदयम् ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं स्वस्त्ययनं परम् ॥ ३५ ॥

(३३-३४-३५) जिन कल्किजीके शासनकालमें पृथ्वीके बीच कोई भी प्रजा अधर्मी, अल्पायु, दरिद्र, पाखण्डी और कपटाचारी नहीं रहा; जिनके राज्यमें सब जीव आधि व्याधि शून्य, क्लेशरहित, मत्सरताहीन देवताओंके समान सदानन्दमय हुए थे; उन्हीं महोदय कल्किजीके अवतारकी कथा यह कही गई है । इस कथाको श्रवण करनेसे धन, यश और आयु वृद्धि होकर परम मङ्गल होता है और अन्तमें स्वर्ग प्राप्ति होती है ।

शोकसन्तापपापघ्नं कलिव्याकुलनाशनम् ।
सुखदं मोक्षदं लोके वांछितार्थफलप्रदम् ॥ ३६ ॥

(३६) इस कथाको श्रवण करनेसे शोक, सन्ताप, पाप दूर होता है, कलिकालसे उत्पन्न उद्वेगका नाश होता है एवं सुख, मोक्ष और वांछितफल प्राप्त होता है ।

तावच्छास्त्रप्रदीपानां प्रकाशो भुवि रोचते ।
भाति भानुः पुराणाख्यो यावल्लोकेऽति कामधुक् ॥३७॥

(३७) जब तक लोकमें इच्छितफल देनेवाले पुराणरूप सूर्य्यका उदय नहीं होता तभीतक इस पृथ्वीपर अन्याय शास्त्ररूप दीपमालाका प्रकाश हुआ करता है ।

श्रुत्वैतद्भृगुवंशजो मुनिगणैः साकं सहर्षो वशी
ज्ञात्वा सूतममेयबोधविदितं श्रीलोमहर्षात्मजम् ।
श्रीकल्केरवतारवाक्यममलं भक्तिप्रदं श्रीहरेः
शुश्रूषुः पुनराह साधुवचसा गंगास्तवं सत्कृतः ॥ ३८ ॥

(३८) भृगुवंशोद्भव परमजितेन्द्रिय महर्षि शौनक एवं अन्यान्य ऋषिगण इस परम प्रीतिकारी भक्ति रसाश्रम श्रीकल्कि अवतारकी कथा सुन अति प्रसन्न हुए। उन्हें भलीभांति विदित हुआ कि लोमहर्षण पुत्र सूतजी ज्ञानगौरवमें इस प्रकार प्रसिद्ध है। महार्षिगणके हृदयमें पुन नारायणजीकी कथा श्रवण करनेकी अभिलाषा उत्पन्न हुई, अतएव उन्होंने सूतजीसे कल्किकृत गंगा स्तोत्रको पूंछा।

इति श्रीकल्किपुराणेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे कल्किनिर्याणो नाम ऊनविंश तितमोऽध्यायः ॥ १९ ॥

तृतीयांशः ।

विंश-अध्याय ।

शौनक उवाच ।

हेसूत ! सर्वधर्मज्ञ यत्त्वया कथितं पुरा ।
गंगां स्तुत्वा समायाता मुनयः कल्किसन्निधिम् ॥ १ ॥
स्तवं तं वद गंगायाः सर्वपापप्रणाशनम् ।
मोक्षदं शुभदं भक्त्या शृण्वतां पठता मिह ॥ २ ॥

(१-२) शौनक बोले,—हे सूत ! तुम समस्त धर्म्मोंके ज्ञाता हो । आपने प्रथममें कहा "मुनिजन गंगाजकी स्तुति कर कल्किजीके निकट गये।" वह स्तुति क्या है ? आप कृपाकर कहिये ! जिसको भक्तिपूर्व्वक पठन श्रवणसे कल्याण एवं मोक्षकी प्राप्ति होती है और समस्त पापसमूह नाश हो जाते हैं।

सूतउवाच शृणुध्वमृषयः सर्वे गंगास्तव मनुत्तमम् ।
शोकमोहहरं पुंसामृषिभिः परिकीर्त्तितम् ॥ ३ ॥

(३) सूतजी बोले,—हे मुनिगण ! शोक मोह नाश करनेवाले ऋषि प्रणीत परम श्रेष्ठ गंगा स्तोत्रोंको कहता हूं। श्रवण कीजिये।

ऋषय ऊचुः—इयं सुरतरंगिणी भवनवारिधेस्तारिणी

स्तुता हरिपदाम्बुजादुपगता जगत्संसदः।
सुमेरुशिखरामरप्रियजला मलक्षालनी
प्रसन्नवदना शुभा भवभयस्य विद्राविणी ॥ ४ ॥

(४) ऋषिगण बोले,—यह सुरतरंगिणी भववारिधिसे उद्धार करनेवाली भगवान् कमलापतिके चरण कमलसे उत्पन्न होकर पृथ्वीपर प्रवाहित हुई है। यह सुमेरु शिखर निवासिनी, अमर प्रियजला, पापध्वंसिनी, भव भय हारिणी, प्रसन्न वदना शुभ प्रदायिनी भगवती भागीरथी समस्त जीवोंसे आराधित है।

भगीरथमथानुगा सुरकरींद्रदर्पापहा
महेशमुकुटप्रभा गिरिशिरःपताकासिता।
सुरासुरनरोरगैरजभवाच्युतैः संस्तुता
विमुक्तिफलशालिनी कलुषनाशिनी राजते ॥ ५ ॥

(५) यह देवीजी भगीरथके पीछे पृथ्वी धाममें आई थीं। इन्होंने ऐरावतका दर्प चूर्ण किया था। यह महादेवजीके मुकुटकी प्रभा रूपिणी हैं। हिमालय शिखरकी श्वेत पताका हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, देव, दानव, मनुष्य एवं सर्प आदि सभी इनका स्तव गान किया करते हैं। गंगाजी मुक्ति प्रदायिनी और पाप राशि विनाशिनी हैं।

पितामहकमन्डलुप्रभवमुक्तिबीजालता
श्रुतिस्मृतिगणस्तुता द्विजकुलालवालावृता।
सुमेरुशिखराभिदा निपतिता त्रिलोकावृता।
सुधर्मफलशालिनी सुखपलाशिनी राजते ॥ ६ ॥

(६) ब्रह्माजीके कमण्डलसे इस गंगा रूपी लताकी उत्पत्ति हुई थी। इस लताका बीज मुक्ति है। ब्राह्मणगण इसके आलवाल रूप हैं। सुधर्म्म रूप फलवाली इस लतामें सुखरूप पत्रावली शोभायमान हो रही है। यह लता सुमेरु शिखरको भेद-कर प्रकट हुई है। इस त्रिलोकी व्याप्त गंगाजीकी स्तुति श्रुति स्मृति आदि समस्त धर्म्म ग्रन्थोंमें गाई गई है।

चरद्विहगमालिनी सगरवंशमुक्तिप्रदा
मुनींद्रवरनन्दिनी दिवि मता च मन्दाकिनी।

सदा दुरितनाशिनी विमलवारिसंदर्शन-
प्रणामगुकीर्त्तनादिषु जगत्सु संराजते ॥ ७ ॥

(७) यह सगरवंशको मुक्ति प्रदान करनेवाली, महर्षि जन्हुकी नन्दिनी, देवताओंकी मन्दाकिनी, सदा अमङ्गल नाशिनी हैं। इनको प्रणाम करने, इनका गुण कीर्तन करने एवं इनका निर्मल जल दर्शन करनेसे जगत् आनन्दको प्राप्त होता है।

महाभिधसुताङ्गना हिमगिरीशकूटस्तनी
सफेनजलहासिनी सितमरालसंचारिणी ।
चलल्लहरिसत्करा वरसरोजमालाधरा
रसोल्लसितगामिनी जलधिकामिनी राजते ॥ ८ ॥

(८) जो शान्तनु राजाकी रानी हुई थीं। हिमालय शिखर जिनका स्तन है, फेन समूहसे सुशोभित जल जिनका हास्य है, श्वेत वर्णके हंसगण जिनकी गति हैं, समस्त तरङ्गें जिनके हाथ हैं, प्रफुल्लित कमल पंक्ति जिनकी माला हैं, वह सुरस हर्षित चालसे समुद्रकी कामना कर चली जारही हैं।

क्वचित्कलकलस्वना क्वचिदधीरयादोगणाः
क्वचिन्मुनिगणैः स्तुता क्वचिदनन्तसंपूजिता ।
क्वचिद्रविकरोज्वला क्वचिदुदग्रपाताकुला
क्वचिज्जनविगाहिता जयति भीष्ममातासती ॥ ९ ॥

(९) कहीं मुनिगण स्तुति करते हैं। कहीं अनंत देवता पूजन करते हैं। कहीं कलरव होता है। कहीं घोर उग्र जलजीव विचरण कर रहे हैं। कहीं सूर्य्य भगवानकी किरणोंसे उज्वलता प्रकाशमान है। कहीं भयंकर नाद करता हुआ जल गिर रहा है। कहीं लोग स्नान करते हैं। ऐसी भीष्म माता सती भागीरथीकी जय हो।

स एव कुशलो जनः प्रणमतीह भागीरथीं
स एव तपसां निधिर्जपति जाह्नवीमादरात् ।
स एव पुरुषोत्तमः स्मरति साधु मन्दाकिनीं
स एव विजयी प्रभुः सुरतरंगिणीं सेवते ॥ १० ॥

(१०) जो लोग गंगादेवीको प्रणाम करते हैं वही चतुर हैं। जो सादर गंगा-

जीका नाम जपते हैं, वही यथार्थ तपस्वी हैं। जो मनुष्य गंगाजीके नामका स्मरण करते हैं, वही श्रेष्ठ पुरुष हैं। जो पुरुष इस देव नदींकी सेवा करनेमें समर्थ हैं, वही निःसन्देह विजयी और सबके स्वामी हैं।

तवामल जलाचितं खगसृगालमीनक्षतं
चलल्लहरि लोलितं रुचिर तीर जम्बालितम्।
कदानिजवपुर्मुदा सुरनरोरगैः संस्तुतोऽ-
प्यहं त्रिपथगामिनि ! प्रियमतीव पश्याम्यवो ॥ ११ ॥

(११) हे त्रिपथगामिनि ! हे भगवति ! कब तुम्हारे निर्म्मलजलमें हमारी देह भासमान होगी ? कब पक्षी, सृगालादि इस मृतक शरीरको छिन्न भिन्न करेंगे ? तुम्हारी चञ्चल तरंगमालामें डोलता हुआ तटस्थ शिवारोंसे यह शरीर कब सजेगा ? कब मैं सुरलोकको जाऊंगा एवं कब देवता मनुष्य और सर्पगण मेरी स्तुति पढ़ेंगे ? कब मैं स्वर्गसे अपनी मृतक देहकी ऐसी दशा देखूंगा ?

त्वत्तीरे वसतिं तवामलजलस्नानं तव प्रेक्षणं
त्वन्नामस्मरणं तवोदयकथासंलापनं पावनम्।
गंगे मे तव सेवनैकनिपुणोऽप्यानन्दितश्चाहतः
स्तुत्वा त्वद्गतपातको भुवि कदा शान्तश्चरिष्याम्यहम्

(१२) हे भागीरथि ! कब तुम्हारे तटपर वास करके, तुह्मारे पवित्र जलमें स्नान करके तुह्मारा दर्शन करूंगा ? कब तुह्मारा नाम स्मरण करूंगा ? कब तुह्मारे पृथ्वीमें आनेका शुद्ध उपाख्यान कीर्त्तन करूंगा ? हे देवि ! कब केवल तुम्हारी सेवा करनेसे मेरे अन्तःकरणमें प्रीति रसका उदय होगा ? कब लोग मेरा आदर करेंगे ? कब मेरे किये हुए पापोंका ढेर निःसन्देह दूर हो जायगा एवं कब मैं शान्त चित्तसे पृथ्वीपर विचरण करूंगा ?

इत्येतदृषिभिः प्रोक्तं गंगास्तवमनुत्तमम्।
स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं पठनाच्छ्रवणादपि ॥ १३ ॥

(१३) इस परम मनोहर गंगा स्तोत्रको मुनि लोगोंने पाठ किया था। इसके पठन श्रवणसे स्वर्ग और यशकी प्राप्ति होती है। परमायु बढ़ती है।

सर्वपापहरं पुंसां बलमायुर्विवर्द्धनम्।

प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने गंगासान्निध्यता भवेत् ॥ १४ ॥

(१४) प्रातः मध्याह्न एवं सन्ध्याकालमें इस स्तोत्रका पाठ करनेसे सदा गंगाजीसे सन्निकटता होती है। समस्त पापोंका नाश होता हैं एवं बल और आयुकी वृद्धि होती है।

इत्येतद्भार्गवाख्यानं शुकदेवान्मया श्रुतम् ।
पठितं श्रावितं चात्र पुण्यं धन्यं यशस्करम् ॥ १५ ॥

(१५) मैंने शुकदेवजीसे इस भार्गव आख्यानको सुना था। इसके पठन श्रवणसे पुण्य होती है। धन और यशकी वृद्धि होती है।

अवतारं महाविष्णोः कल्केः परममद्भुतम् ।
पठतां शृण्वतां भक्त्या सर्वाशुभविनाशनम् ॥ १६ ॥

(१६) जो लोग भक्ति पूर्वक भगवान् विष्णुके परम विस्मयकारी कल्कि अवतार उपाख्यानको श्रवण पठन करते हैं, उनके सर्व प्रकार अमंगल दूर हो जाते हैं।

इति श्रीकल्किपुराणे सानुवादेऽनुभागवते भविष्ये तृतीयांशे गंगास्तवो नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

तृतीयांशः ।

एकविंश-अध्याय ।

अत्रापि शुकसम्वादो मार्कण्डेयेन धीमता ।
अधर्मवंशकथनं कलेर्विवरणं ततः ॥ १ ॥
देवानांब्रह्मसदनप्रयाणं गोभुवा सह ।
ब्रह्मणो वचनाद्विष्णोर्जन्म विष्णुयशोगृहे ॥ २ ॥
सुमत्यांस्वांशकैर्भ्रातृचतुर्भिः शम्भले पुरे ।

पितुः पुत्रेण सम्वादस्तथोपनयनं हरेः ॥ ३ ॥

(१-२-३) सूतजी बोले,—इस कल्किपुराणमें प्रथम धीमान मार्कण्डेयजी और शुकजीका सम्वाद है। आगे अधर्मवंश कीर्तन एवं कल्किभगवानकी कथा है। तद्पश्चात देवताओंके साथ साथ गोरूपधारणकर पृथ्वीके ब्रह्मलोकमें जानेकी कथा और ब्रह्मवाक्यानुसार विष्णुयशके घर विष्णुभगवानके जन्मकी कथा है। पश्चात सुमतिके गर्भसे विष्णुके अंशसे चार भ्राताओंके शम्भलग्राममें जन्म ग्रहण करनेकी कथा और पितापुत्र सम्वाद एवं कल्किभगवानके यज्ञोपवीतकी कथा है।

पुत्रेण सह संवासो वेदाध्ययनमुत्तमम् ।
शस्त्रास्त्राणां परिज्ञानं शिवसंदर्शनं ततः ॥ ४ ॥

(४) आगे पितापुत्रके सहनिवास एवं कल्किभगवानके वेदपठन और शस्त्रास्त्र शिक्षा तथा शिवदर्शनकी कथा है।

कल्केः स्तवं शिवपुरो वरलाभः शुकापनम् ।
शम्भलागमनं चक्रे ज्ञातिभ्यो वरकीर्त्तनम् ॥ ५ ॥

(५) पश्चात कल्किभगवानकी शिवस्तुति और शिवजीसे वर पानेकी कथा एवं शिवदत्त शुकसहित शम्भलग्राममें पुनरागनमकी कथा तथा ज्ञातिवालोंसे वर प्राप्त करनेकी कथाका वर्णन है।

विशाखयूपभूपेन निजसर्वात्मवर्णनम् ।
महाभाग्याद्ब्राह्मणानां शुकस्यागमनं ततः ॥ ६ ॥

(६) अनन्तर विशाखयूपराजसे कल्किजीके निजस्वरूप और ब्राह्मण माहात्म्यके वर्णनकी कथा एवं शुकगमनकी कथा वर्णित है।

कल्किना शुकसम्बादः सिंहलाख्यानमुत्तमम् ।
शिवदत्तवरा पद्मा तस्यां भूपस्वयं वरे ॥ ७ ॥
दर्शनाद्भूपसंघानां स्त्रीभावपरिकीर्त्तनम् ।
तस्यां विषादः कल्केस्तु विवाहार्थं समुद्यमः ॥ ८ ॥

(७-८) आगे कल्किभगवान और शुकके सम्वादकी कथा तथा शुकद्वारा सिंहलद्वीप वर्णनकी कथा है। उपरान्त शिवजीसे पद्मावतीके वर पानेकी कथा एवं पद्माके दर्शनसे स्वयंम्वरमें आये हुए राजाओंके स्त्रीत्वभावको प्राप्त होनेकी कथा

है । पश्चात पद्माके विषादकी कथा और विवाहके निमित्त कल्किभगवानके उद्योगकी कथा है ।

शुकप्रस्थापनं द्वीप्ये तया तस्यापि दर्शनम् ।
शुकपद्मापरिचयः श्रीविष्णोः पूजनादिकम् ॥ ९ ॥

(९) फिर शुकजीके दूतकार्यमें प्रस्थानकी कथा, पद्मा शुकदर्शन कथा एवं शुक और पद्माके परिचयकी कथा तथा श्रीविष्णुभगवानकी पूजनादि सम्बन्धी कथाका वर्णन है ।

पादादिदेहध्यानञ्च केशान्तं परिवर्णितम् ।
शुकभूषणदानञ्च पुनः शुकसमागमः ॥ १० ॥

(१०) अनन्तर चरणसे केशपर्यन्त विष्णुभगवानके ध्यान करनेकी कथा एवं शुकको आभूषित करनेकी कथा तथा कल्किभगवानके निकट शुकके पुनरागमनकी कथा है ।

कल्केः पद्माविवाहार्थं गमनं दर्शनं तयोः ।
जलक्रीडाप्रसङ्गेन विवाहस्तदनन्तरम् ॥ ११ ॥

(११) आगे विवाहार्थ कल्किभगवानकी यात्रा कथा जलक्रीडा प्रसंगसे कल्किभगवान तथा पद्माके परिचयकी कथा और फिर कल्किभगवानके साथ पद्माके विवाहकी कथाका वर्णन है ।

पुंस्त्वप्राप्तिश्च भूपानां कल्केर्दर्शनमात्रतः ।
अनन्तागमनं राज्ञा सम्वादस्तेन संसदि ॥ १२ ॥

(१२) तदुपरान्त कल्किभगवानके दर्शनसे पुनः राजा लोगोंके पुरुषत्वभावको प्राप्त होनेकी कथा, अनन्त मुनिके आगमनकी कथा एवं समास्थानमें राजागण और अनन्तके सम्वादकी कथाका वर्णन है ।

षण्डत्वादात्मनो जन्म कर्म चात्र शिवस्तवः ।
मृते पितरि तद्विष्णोः क्षेत्रे माया प्रदर्शनम् ॥ १३ ॥

(१३) पश्चात अनन्त मुनिके खण्डरूपसे जन्म वर्णनकी कथा, शिवस्तुति एवं अनन्तके पिताकी मृत्युके पश्चात विष्णुक्षेत्रमें माया दर्शनकी कथा वर्णित है

अत्राख्यानमनन्तस्य ज्ञानवैराग्यदीपकम् ।

राज्ञां प्रयाणं कल्केश्च पद्मया सह शम्भले ॥ १४ ॥

(१४) आगे अनन्तके आख्यान अनन्तके ज्ञान एवं अनन्तके वैराग्य वैभवकी कथा है । अनन्तर राजागणकी यात्रा तथा पद्माके साथ कल्किभगवानके शम्भल-ग्राम आगमनकी कथा है ।

विश्वकर्मविधानञ्च वसतिः पद्मया सह ।
ज्ञातिभ्रातृसुहृत्पुत्रैः सेनाभिर्बुद्धनिग्रहः ॥ १५ ॥

(१५) उपरान्त विश्वकर्मा द्वारा शम्भलपुरीके निर्मित होनेकी कथा, पद्मा, ज्ञातिवाले, भ्रातृगण, इष्टमित्र एवं उनके पुत्रादि तथा सेनाके साथ कल्किभगवानके विश्वकर्मा रचित पुरीमें वास करनेकी कथा तथा बौद्धोंके दमन करनेकी कथाका वर्णन है ।

कथितश्चात्र तेषाञ्च स्त्रीणां संयोधनाश्रयः ।
ततोऽत्र वालखिल्यानां मुनीनां स्वानिवेदनम् ॥ १६ ॥

(१६) पश्चात बौद्धस्त्रियोंके समराङ्गणमें आगमनकी कथा, वालखिल्य मुनि-योंके आगमनकी कथा तथा वालखिल्य मुनियों द्वारा निज वृत्तान्त वर्णनकी कथा है ।

सपुत्रायाः कुथोदर्या वधश्चात्र प्रकीर्त्तितः ।
हरिद्वारगतस्यापि कल्केर्मुनिसमागमः ॥ १७ ॥

(१७) तदपश्चात पुत्र सहित कुथोदरी राक्षसीके मारेजानेकी कथा एवं हरि-द्वारमें कल्किभगवान और मुनियोंके समागमकी कथा है ।

सूर्यवंशस्य कथनं सोमस्य च विधानतः ।
श्रीरामचरितं चारुसूर्यवंशानुवर्णने ॥ १८ ॥

(१८) फिर सूर्यवंश कथा, चन्द्रवंश कथा तथा सूर्यवंश प्रसंगसे श्रीरामचन्द्र चरित्रकी कथा वर्णित है ।

देवापेश्च मरो संगो युद्धायात्र प्रकीर्त्तितः ।
महाघोरवनेकोक विकोकविनिपातनम् ॥ १९ ॥
भल्लाटगमनं तत्र शय्याकर्णादिभिः सह ।

युद्धं शशिध्वजेनात्र सुशान्ता भक्तिकीर्त्तनम् ॥ २० ॥

(१९-२०) अनन्तर संग्रामार्थ मरू और देवापिके आगमनकी कथा, महाघोर कोक विकोकके वधकी कथा एवं कल्किभगवानके भल्लाटनगर गमनकी कथा है आगे शय्याकर्णादिके संग्रामकी कथा, शशिध्वजके साथ कल्किजीके युद्धकी कथा तथा सुशान्ताभक्ति कीर्तन कथा है।

युद्धे कल्केरानयनं धर्मस्य च कृतस्य च ।
सुशान्तायाः स्तवस्तत्र रमोद्वाहस्तु कल्किना ॥ २१ ॥

(२१) उपरान्त संग्रामभूमिसे कल्किभगवान, धर्म्म तथा सत्ययुगके आगमनकी कथा, सुशान्ता द्वारा कल्किभगवानकी स्तुति एवं कल्किभगवान और रमाके विवाहकी कथा वर्णित है।

सभायां पूर्वकथनं निजगृध्रत्वकारणम् ।
मोक्षः शशिध्वजस्यात्र भक्तिप्रार्थयितुर्विभोः ॥ २२ ॥

(२२) उपरान्त सभामध्य राजा शशिध्वजके पूर्ववृत्तान्त वर्णनकी कथा गृद्ध शरीरपानेकी कथा, कल्किभगवानसे भक्ति प्रार्थनाकी कथा एवं शशिध्वजके मोक्ष पानेकी कथा वर्णित है।

विषकन्यामोचनञ्च नृपाणामभिषेचनम् ।
मायास्तवः शम्भलेषु नानायज्ञादि साधनम् ॥ २३ ॥

(२३) तदुपरान्त विषकन्याके उद्धारकी कथा, राजागणके अभिषेककी कथा, मायास्तुति एवं शम्भलग्राममें अनेक यज्ञोंके अनुष्ठानकी कथा वर्णित है।

नारदाद्विष्णुयशसो मोक्षश्चात्र प्रकीर्त्तितः ।
कृतधर्म प्रवृत्तिश्च रुक्मिणी व्रतकीर्त्तनम् ॥ २४ ॥

(२४) आगे नारदजीसे विष्णुयशाके मोक्ष प्रश्नकी कथा सत्ययुग स्थापित होनेकी कथा तथा रुक्मिणीव्रतकी कथा है।

ततो विहारः कल्केश्च पुत्रपौत्रादि सम्भवः ।
कथितो देवगन्धर्वगणागमनमत्रहि ॥ २५ ॥

(२५) पश्चात कल्किभगवानके विहारकी कथा एवं पुत्रपौत्रादिके उत्पतिकी कथा तथा शम्भलग्राममें देवता और गन्धर्वोंके आगमनकी कथा है।

ततो वैकुण्ठगमनं विष्णोः कल्केरिहोदितम् ।
शुकप्रस्थान मुचितं कथयित्वाकथाः शुभाः ॥ २६ ॥

(२६) तदपश्चात कल्किभगवानके वैकुंठ गमनकी कथा है। आगे इन मधुर कथाको कहकर शुकदेवजीके प्रस्थानकी कथा है।

गंगास्तोत्रमिह प्रोक्तं पुराणे मुनिसंमतम् ।
जगतामानन्दकरं पुराणं पंच लक्षणम् ॥ २७ ॥

(२७) अनन्तर इस पुराणमें मुनियोंसे कही हुई गङ्गाजीकी स्तुति है। यह कल्किपुराण पंचलक्षण युक्त है। यह जगतको आनन्द देनेवाला है।

सकल्कसिद्धिदं लोकैः षट् सहस्रं शताधिकम् ।
सर्व शास्त्रार्थ तत्त्वानां सारं श्रुतिमनोहरम् ॥ २८ ॥

(२८) जो लोग कलिकालके पापोंसे पूर्ण होरहे हैं, उन्हें भी कल्किपुराण श्रवण करनेसे सिद्धि प्राप्त होती है। इस कल्किपुराणमें छः हजार एक सौ श्लोक हैं। कल्किपुराण सर्व शास्त्रार्थके तत्वका सार है। इस कल्किपुराणको श्रवण करतेही मनुष्यका मन मोहित होजाता है।

चतुर्वर्ग प्रदं कल्कि पुराणं परिकीर्त्तितम् ।
प्रलयान्ते हरिमुखान्निःसृतं लोक विस्तृतम् ॥ २९ ॥

(२९) यह बात प्रसिद्ध है, कि कल्किपुराणके श्रवण कीर्तनसे चतुर्वर्गफल प्राप्त होते हैं। यह कल्किपुराण प्रलयके अन्तमें श्रीनारायण भगवानके मुखसे प्रकाशित होकर जगतमें विस्तारित हुआ है।

अहोव्यासेन कथितं द्विजरूपेणभूतले ।
विष्णोः कल्केर्भगवतः प्रभावं परमाद्भुतम् ॥ ३० ॥

(३०) आगे भगवान वेदव्यासजीने ब्रह्माणरूपमें पृथ्वीपर अवतार लेकर इस कल्किपुराणको कहा है। कल्किपुराणमें विष्णुरूप भगवान कल्किजीके अत्यन्त अद्भुत प्रभावका वर्णन है।

पुराणके पञ्च लक्षण। सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित शास्त्रोंमें पुराणोंके यह पांच लक्षण कहे गये हैं (सर्ग अर्थात् स्पष्टि; प्रतिसर्ग प्रलय; वंश सूर्य चन्द्रादि वंशका वर्णन; मन्वन्तर मनुगणका अधिकार; वंशानुचरित अर्थात् अनेक वंशोंमें जन्म लेनेवालोंके चरित्रका वर्णन)

येभक्त्यात्र पुराणसारममलं श्रीविष्णु भावाप्लुतं
श्रृण्वन्तीह वदन्ति साधुसदसि क्षेत्रे सुतीर्थाश्रमे ।
दत्त्वागां तुरगं गजं गजवरं स्वर्णं द्विजायादरात्
बस्त्रालङ्करणैः प्रपूज्यविधिवन्मुक्तास्त एवोत्तमाः ॥ ३१ ॥

(३१) जो लोग साधु आश्रममें, पुण्यक्षेत्रमें, वस्त्र आभूषणादिसे ब्राह्मण पूजाकर आदरके साथ गौ, अश्व, हाथी, सुवर्ण प्रभृति दानकर भक्ति पूर्वक विष्णुभावमें पूर्णहो सब पुराणोंके सार इस शुद्ध कल्किपुराणको कीर्तन श्रवण करेंगे उन श्रेष्ठ पुरुषोंकी मुक्ति निश्चय होगी ।

श्रुत्वा विधानं विधिवद्ब्राह्मणो वेद पारगः ।
क्षत्रियो भूपतिर्वैश्यो धनीशूद्रो महान्भवेत् ॥ ३२ ॥

(३२) कल्किपुराणको विधिवत् श्रवण करनेसे ब्राह्मण वेद विषयमें निपुण होता है, क्षत्रिय राज प्राप्त करता है, वैश्य धनवान होता है और शूद्र महत्वको प्राप्त होता है ।

पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ।
विद्यार्थी लभते विद्यां पठनाच्छ्रवणादपि ॥ ३३ ॥

(३३) कल्किपुराण पठन एवं श्रवण करनेसे पुत्रार्थीको पुत्र, धनार्थीको धन और विद्यार्थीको विद्या प्राप्त होती है ।

इत्येतत्पुण्यमाख्यानं लोमहर्षण जो मुनिः ।
श्रावयित्वामुनीन्भक्त्या ययौ तीर्थाटनाहृतः ॥ ३४ ॥

(३४) लोमहर्षण पुत्र महर्षि सूतजी शौनकादि मुनियोंको भक्तिपूर्वक इस पुण्य आख्यान कल्किपुराणकी कथा श्रवण कराकर तीर्थपर्यटनको चले गये ।

शौनको मुनिभिः सार्द्धं सूतमामन्त्र्यधर्मवित् ।
पुण्यारण्ये हरिं ध्यात्वा ब्रह्मप्राप सहर्षिभिः ॥ ३५ ॥

(३५) योगशास्त्र विशारद धर्म्मज्ञाता महर्षि शौनकजी मुनियोंके सहित उन्नभवाजीका ध्यान करते हुए ब्रह्मको प्राप्त हुए ।

लोमहर्षणजं सर्वपुराणज्ञं यतव्रतम् ।

व्यासशिष्यं मुनिवरं तंसूतं प्रणमाम्यहम् ॥ ३६ ॥

(३६) समस्त पुराणोंके जाननेवाले लोमहर्षण पुत्र व्यासजीके शिष्य व्रतधारी मुनिवर सूतजीको मैं प्रणाम करता हूं।

आलोक्य सर्व शास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः ।
इममेव सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा ॥ ३७ ॥

(३७) समस्त शास्त्रोंकी आलोचना एवं उनपर पुनः पुनः विचार करनेसे यह सिद्धान्त हुआ है कि सर्वदा श्रीनारायणजीका ध्यान करना उचित है ।

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा ।
आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते ॥ ३८ ॥

(३८) वेद पुराण एवं रामायण आदि समस्त शास्त्रोंके प्रारम्भ मध्य और शेष भाग सभी स्थानमें श्रीनारायणजीका नाम और उनकी लीला गाई गई है ।

सजलजलददेहो वातवेगैकवाहः
करधृतकरवालः सर्वलोकैकपालः ।
कलिकुलवनहन्ता सत्यधर्मप्रणेता
कलयतुकुशलंवः कल्किरूपः सभूपः ॥ ३९ ॥

(३९) जो पवनके समान वेगगामी घोड़ेपर सवार हैं, जिनके हाथमें कराल करवाल विराजमान हैं, जिन्होंनें कालिकुल ध्वंस करके सत्य धर्मको स्थापित किया है, वह सजल बादलके समान कान्तिमान समस्त लोकोंके स्वामी श्रीकल्कि भगवान नारायणजी मंगल करें ।

कल्किपुराणं भाषाटीकासमेतं सम्पूर्णम् ।